

आचार्य राजशेखर

डॉ० श्यामा वर्मा



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

आचार्य रागशेखर

प्रकाशक :
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल.

© मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रथम संस्करण :
१९७१

मूल्य :
दस रुपये

मुद्रक :
चन्द्रा प्रिन्टर्स, मुल्तानिया रोड,
भोपाल.

प्राक्कथन

इस बात पर सभी शिक्षा-शास्त्री एकमत हैं कि मातृभाषा के माध्यम से दी-गयी शिक्षा छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं मौलिक चिन्तन की अभिवृद्धि में अधिक सहायक होती है। इसी कारण स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय एवं उसके पूर्व से ही स्वामी श्रद्धानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी जैसे मान्य नेताओं ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने की दृष्टि से आदर्श शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित कीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी देश में शिक्षा-सम्बन्धी जो कमोशन या समितियाँ नियुक्त की गयीं, उन्होंने एकमत से इस सिद्धांत का अनुमोदन किया।

इस दिशा में सबसे बड़ी बाधा थी—श्रेष्ठ पाठ्य-ग्रन्थों का अभाव। हम सब जानते हैं कि न केवल विज्ञान और तकनीक, अपितु मानविकी के क्षेत्र में भी विश्व में इतनी तीव्रता से नये अनुसन्धानों और चिन्तनों का आगमन हो रहा है कि यदि उसे ठीक ढंग से गृहीत न किया गया तो मातृभाषा से शिक्षा पाने वाले प्रचलों के पिछड़ जाने की आशंका है। भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने इस बात का अनुभव किया और भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में विश्व-विद्यालयीन स्तर पर उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने के लिए समुचित आर्थिक दायित्व स्वीकार किया। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय की यह योजना उसके सत-प्रतिशत अनुदान से राज्य अकादमियों द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। मध्य-प्रदेश में 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है।

अकादमी विश्वविद्यालयीन स्तर की मौलिक पुस्तकों के निर्माण के साथ, विश्व की विभिन्न भाषाओं में बिलखे हुए ज्ञान को हिन्दी के माध्यम से प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को उपलब्ध करेगी। इस योजना के साथ राज्य के सभी महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय सम्बद्ध हैं। मेरा विश्वास है कि सभी शिक्षा-शास्त्री एवं शिक्षा-प्रेमी इस योजना को प्रोत्साहित करेंगे। प्राध्यापकों से मेरा अनुरोध है कि वे अकादमी के ग्रन्थों को छात्रों तक पहुँचाने में हमें सहयोग प्रदान करें जिससे विना और विलम्ब के विश्वविद्यालयों में सभी विषयों के शिक्षण वा माध्यम हिन्दी बन सके।

जगदीशनारायण अवस्थी

शिक्षा-मन्त्री

अध्यक्ष : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रस्तावना

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन संस्कृत साहित्य-समीक्षा की आचार्य-माला के अन्तर्गत किया जा रहा है। इसके पूर्व आचार्य मम्मट और आचार्य हेमचन्द्र के सम्बन्ध में दो समीक्षा-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. श्यामा वर्मा की प्रस्तुत कृति इस माला का तृतीय पुष्प है।

काव्य-शास्त्रियों और नाटककारों में आचार्य राजेश्वर का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे एक प्रकार से मध्यप्रदेशीय कहे जा सकते हैं। दक्षिण भारत में जन्म लेकर और सम्भवतः वहाँ विवाहित होकर उन्होंने महोदय (कन्नौज) को अपना साधना-क्षेत्र बनाया किन्तु उनके अन्तिम दिन काश्चुरि के घातक केयूरचर्प के साथ उनकी राजधानी त्रिपुरी में बीते। अनुमान है कि उनका बाल्यकाल भी यहीं बीता होगा। उनकी लेखनी से प्रसूत त्रिपुरी तथा माहिदमती आदि मध्यप्रदेशीय नगरों के वर्णन ने इस राज्य की गौरवामित किया है। सम्भवतः वे संस्कृत के एकमात्र भाष्यवान् नाटककार हुए जिनकी कृति का रामचीय प्रयोग उनकी पत्नी ने किया। अवन्तिमुन्दरी के व्यक्तित्व का उत्कर्ष राजेश्वर की पत्नी होने के कारण ही नहीं, उनकी अपनी विद्वत्ता और कला-मर्मज्ञता के कारण विद्वत्-समाज में बहुत अधिक है। वे चौहान-राष्ट्रिय कुल की थीं और लगता है कि राजेश्वर से उनका परिणय पारस्परिक अनु-राग का परिणाम था। 'काव्यमीमांसा' में अवन्तिमुन्दरी के विभिन्न मतों का उल्लेख मिलता है।

राजेश्वर की नाट्य कृतियाँ—'वाल्मीकीय', 'बाल भारत', 'वर्णरामज्जरी' और 'विद्वत्पालमञ्जिका' प्रसिद्ध हैं। इन सबका काव्य की दृष्टि में भी बहुत अधिक महत्व है। राजेश्वर सरल-श्रुति के प्रति पूर्ण निष्ठावान् थे। वे इसे ही काव्य की आस्था मानते थे। यतः उनकी रचनायें सरल श्रुतियों में भरी गयी हैं। 'वर्णरामज्जरी' एकमात्र उपलब्ध सट्टक है जिसका महत्त्व प्राप्त की दृष्टि से भी घट्टीय है। इसमें तथा 'विद्वत्पालमञ्जिका' में उनके नाट्य-कौशल के दर्शन होने हैं। बाल-रामायण को भी नाटक की दृष्टि में नहीं तो काव्य की दृष्टि से घट्टीय जगह पर रखा जा सकता है।

राजशेखर को आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित करने वाला उनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' है। यदि यह ग्रन्थ पूरा हो गया होता तो संस्कृत साहित्य का सागर होता। फिर भी जो भाग उपलब्ध है, उसका विशेष महत्व है। इसमें राजशेखर ने सम्पूर्ण पूर्ववर्ती चिन्तन का सार सङ्गृहीत कर दिया है। साहित्यिक क्षेत्र में शायद ही कोई भाग्यवान् व्यक्ति राजशेखर के समान पर-वर्ती लेखकों द्वारा उद्धृत किया गया हो। भाषा, व्याकरण, दर्शन आदि समस्त ब्रह्ममीन अङ्गों पर राजशेखर का व्यापक अधिकार है। उनकी शैली अत्यन्त सधुर, प्रवाहमयी एवं प्रभावोत्पादक है। राजशेखर की प्रत्येक सूक्ति हृदय और बुद्धि दोनों को समान रूप से प्रभावित करती है। राजशेखर की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी राष्ट्र-भक्ति है। कालिदास के बाद अन्य किसी कवि या आचार्य ने भारत के समस्त जनपदों, नदियों, पर्वतों तथा रहन-सहन, खान-पान वेष-भूषण और सस्कार आदि के प्रति न इतना प्रेम दिखाया और न उनका इतना विशद वर्णन किया जितना राजशेखर ने किया है। राजशेखर के ग्रन्थ वस्तुतः सम्पूर्ण भारत के सांस्कृतिक कोष है। इसलिए स्वयं-पूर्ण, आत्म-नुष्ट एवं श्री और सरस्वती दोनों के कृपापात्र आचार्य कवि के चरणों में यह पुष्प समर्पित करते हुए अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा है।

हिन्दी-टकण में कुछ वर्णों की कमी के कारण संस्कृत उद्धरणों में सन्धि के कुछ नियमों, विशेषतः परसवर्णता का पातन पूर्णतः नहीं हो सका है, इस कारण कई स्थानों पर 'पञ्च' के लिए पच या 'अङ्क' के लिए अक और जहाँ के लिए 'जहा' जैसे प्रयोग मिलेंगे। आशा है सुधी पाठक संस्कृत-भुवण की कठिनाई समझ कर तदर्थ उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

भगवान् करे, डॉ श्यामा वर्मा की यह कृति राजशेखर की काव्य-माधुरी से जन-जन को आप्तायित कर साफल्य-लाभ करे और उनकी ही कृति का यह वाक्य सफल हो -

'फुल्ल कीर्ति भ्रमति सुखे दिशु मायावरस्य'

भोपाल :

१५ जून, १९७१

५.६. ७१ न.दे.न

संचालक

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

चतुर्थ खण्ड

राजशेखरकालीन भारत

२२८

राजशेखर और परवर्ती साहित्य

२३४

नाटककारों एवं आचार्यों में राजशेखर का स्थान

२४०

परिशिष्टियाँ

१. राजशेखर की पुनरुक्तियाँ	२४५
२. अन्य ग्रन्थों में राजशेखर का उल्लेख तथा उद्धरण	२४६
३. राजशेखर द्वारा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण	२५३
४. राजशेखर के नाटकों के सुभाषित	२५४
५. राजशेखर की नाट्यकृतियों में प्रयुक्त छन्द	२५७
६. राजशेखर की सूक्तियाँ (सुभाषित ग्रन्थों में)	२६२
७. राजशेखर की पूर्वकवियों की श्रद्धाञ्जलि	२८२
८. राजशेखर-प्रशस्तय	२८७
सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची	२८८

संकेत-सूची

का० म०
का० सी०
शा० भा०
बा० रा०
दि० भ०
ए० बी० ओ० आई०

आई० ए०
ई० आई०
जी० ओ० एम०
एच० ओ० एम०
मा० द०
ददा०
शृ० प्र०

वर्धूरमञ्जरी
काव्यमीमामा
यात्र-भारत
बालरामायण
विद्वन्मालभञ्जिका
Annals of the Bhandarkar
Oriental Institute
Indian Antiquary
Epigraphica Indica
Gackwad's Oriental Series
Harward's Oriental Series
माहिन्य दर्पण
दशरूपक
शृ गार-प्रकाश

प्रथम खण्ड

वभूव वल्मीकभवः कविपुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तुमेष्टताम् ।
स्थितः पुनर्वो भवभूतिरेषया स राजते सम्प्रति राजदोषर ॥

—श्री० नारायण राम आचार्य,
श्री० एन० जी० सुर, डॉ० पी०वी०
काणे, डॉ० मिराणी

५. ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध —श्री० बिन्सन
एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

६ ईसा की चौदहवीं शताब्दी —डॉ० मैकममूलर

उक्त विद्वानों के द्वारा अपने मत के समर्थन में दिये गये तर्कों की परीक्षा करने पर हम राजशेखर के रचना-काल के विषय में सही निर्णय के निकट पहुँच सकते हैं।

ईसा की सातवीं शताब्दी ईसा की सातवीं शताब्दी को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले श्री० बरो अपने समर्थन में कवि के नाटक बानरामायण एवं बाणभारत के इस श्लोक को उद्धृत करते हैं—

बभ्रुव बल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेष्ठताम् ।
स्थितः पुनर्योभवभूतिरेखया
त वर्तते सम्प्रति राजशेखर १ ॥

अर्थात् पहले बाल्मीकि नामक कवि हुए। फिर वे भर्तृमेष्ठ के नाम से भूमण्डल पर अवतरित हुए। तत्पश्चात् उन्होंने ही भवभूति के नाम से पृथ्वी पर जन्म लिया और अब वे ही राजशेखर के रूप में विद्यमान हैं।

राजशेखर के इस वचन में स्पष्ट है कि उनमें पूर्व भवभूति की मृत्पु हो चुकी थी। श्री० बरो महोदय ने भवभूति को सातवीं शताब्दी का माना है। उनका मत है कि कुछ समय पश्चात् आविर्भूत राजशेखर भी सातवीं शताब्दी में ही हुए होंगे।^१

श्री० बरो महोदय ने इस मत पर श्री० वी० एम० भाषटे का आरोप यह है कि भवभूति अपने युग में सर्वप्रतिष्ठ साहित्यकार नहीं थे। वे स्वयं कहते हैं—

ये नाम केविदिह नः प्रथमन्त्यवतां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैव यतः ।

१. बानरामायण १-१६ एवं बाणभारत १-१२

२. भवभूति ऐण्ड हिज प्लेस इन मध्यम निदेशक पृ० -१७

उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥^१

अर्थात् कभी न कभी, वही तो मेरे ग्रन्थों का सहृदय आलोचक पैदा होगा क्योंकि काल अनन्त है और पृथ्वी विद्यान है। स्पष्ट है कि भवभूति अपने जीवन-काल में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये करुण-कन्दन करने वाले, तथा सम्मान के लिये ओभी फैलाने वाले मनिन-यशा कवि थे। यदि राजशेखर भवभूति के कुछ ही समय पश्चात् हुए होने, तो वे उन्हें कभी अपना आदर्श नहीं मान सकते थे। भवभूति को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कम से कम गौ वपों का समय अवश्य लगा होगा। और तभी राजशेखर ने उन्हें अपना आदर्श मानने में बौद्ध का अनुभव किया होगा। अतः बरो महोदय का मन, श्री० आष्टे की दृष्टि में उचित नहीं है। उन्होंने राजशेखर का काल लगभग आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है।

आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले विद्वान् क्षीरस्वामी द्वारा लिखित 'धम्मरसोप' की टीका को आधार मानते हैं। इस टीका में प्रमथन राजशेखर को 'विद्वज्जालमञ्जिवा' के चार श्लोक उद्धृत हैं।^१ इनके आधार पर श्री पीटमन एव पण्डित दुर्गा प्रसाद क्षीरस्वामी को राजशेखर का समकालीन मानते हैं। उनकी धारणा है कि क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु थे।^२ जयापीड का समय ७५० ई० है। अतः इन विद्वानों ने क्षीरस्वामी को भी आठवीं शताब्दी के मध्य में तथा राजशेखर को उनका समकालीन विद्व बनने का प्रयास किया है। यद्यपि काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु का नाम क्षीरस्वामी अवश्य था, किन्तु उन्होंने धम्मरसोप पर टीका नहीं लिखी। अतः धम्मरसोप पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी का समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। अतः जयापीड के गुरु

१. माननीभाष्य-१-४८

२. इनके आधारित चरण है—

(१) "दरदमित हृदिश्रित्वास्त्रराज्यप्रवर्तन"—धम्मरसोप पृ० १८ वि० प० ३-१३

(२) 'द्विर्धर्मोऽस्मि सुपुत्र-आश्रितवर्तनी'—धम्मरसोप पृ० २२ वि० प० १-११

(३) 'मोतागादिनिमोत्रिणादवदन्'—धम्मरसोप पृ० ३८ वि० प० १-३

(४) 'मदिति कुचपदाशो नमो मम्मयाय'—धम्मरसोप पृ० १८३ वि० प० १-१३

३. इन्द्रोदयन ट्ट कल्पभट्टाचार्य मुद्रावितारणी—पृ० १०१

क्षीरसागर के भ्रान्त नाम के आधार पर राजशेखर को आठवीं शताब्दी का मानना अनुचित है।

आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध : आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले श्री धापटे का कथन है कि—

“Bhavabhuti was not appreciated in his own days. He had to rest with well ground faith on boundless time and extensive time and extensive earth for the appreciation of his works, and it is, I think, quite reasonable to suppose that a period of at least 100 years must have elapsed before the verdict of posterity was unmistakably pronounced in his favour. At such a distance can alone Rajasekhara be reasonably supposed to mention Bhavabhuti in the manner above referred to. From this I conclude that our poet must have not flourished till at least one hundred years after Bhavabhuti. In other words he could not have lived earlier than the end of the 8th Century A. D.,”

भवभूति के गौरव के सम्बन्ध में धापटे महोदय का कथन ठीक भी हो सकता है, किन्तु राजशेखर के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में यह आधार प्रामाणिक है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में अपने आश्रयदाता नरेश महेंद्रपाल का उल्लेख किया है। किन्तु सियदोनी अभिलेख के अनुसार महेंद्रपाल का राज्यकाल ६०३ ई० से ६०७ ई० ठहरता है। अतः श्री० धापटे का मत प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता।

ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध : ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध को राजशेखर का काल मानने वाले विष्णु महोदय ने अपने मत की पुष्टि में कर्पूरमञ्जरी सहक की निम्न प्रस्तावना उद्धृत की है—

बाहुधानकुल मोनिमानिषा राषनेहर बद्ध संदिषी ।
भत्तुणो किहमवतिमुन्दरी सा पडवडमेधमिष्ठ ॥

इसके अनुसार राजशेखर की पत्नी अविनिमुन्दरी नरेन्द्र चौहान कुलोत्पन्न है।

है अपितु वह चौहान कुल का शिरोरत्न भी है। चौहान वंश राजपूतों का था।

१. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग पृ०-१६
२. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १०३।
३. कर्पूरमञ्जरी-१-११।

उत्पत्त्यते च मम कोप्रिय समानधर्मा
कात्तो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥^१

अर्थात् कभी न कभी, कही तो मेरे शब्दों का सहृदय आलोचक पैदा होगा क्योंकि काल अनन्त है और पृथ्वी विशाल है। स्पष्ट है कि भवभूति अपने जीवन-काल में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये कर्ण-अन्दन करने वाले, तथा सम्मान के लिये झोली फँताने वाले मलिन-वशा कवि थे। यदि राजशेखर भवभूति के कुछ ही समय पाचात् हुए होते, तो वे उन्हें कभी अपना आदर्श नहीं मान सकते थे। भवभूति को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त करने में कम से कम सौ वर्षों का समय अवश्य लगा होगा। और तभी राजशेखर ने उन्हें अपना आदर्श मानने में गौरव का अनुभव किया होगा। अतः बरो महोदय का मत, श्री० आष्टे की दृष्टि में उचित नहीं है। उन्होंने राजशेखर का काल लगभग आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है।

आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले विद्वान् क्षीरस्वामी द्वारा लिखित 'अमरकोष' की टीका को आधार मानते हैं। इस टीका में प्रसंगत राजशेखर की 'विद्वद्भालवञ्जिका' के चार श्लोक उद्धृत हैं।^२ इनके आधार पर श्री पीटर्सन एवं पण्डित दुर्गा प्रसाद क्षीरस्वामी को राजशेखर का समकालीन मानते हैं। उनकी धारणा है कि क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु थे।^३ जयापीड का समय ७५० ई० है। अतः इन विद्वानों ने क्षीरस्वामी को भी आठवीं शताब्दी के मध्य में तथा राजशेखर को उनका समकालीन सिद्ध करने का प्रयास किया है। पण्डित काश्मीर के राजा जयापीड के गुरु का नाम क्षीरस्वामी भवश्य था, किन्तु उन्होंने अमरकोष पर टीका नहीं लिखी। अतः अमरकोष पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। अतः जयापीड के गुरु

१. मालतीमाधव-१-४४

२. इनके आरम्भिक चरण हैं—

(१) 'दरदमित हृदिपिञ्जराभ्यामवकानि'—अमरकोष पृ० १८ वि० भ० ३-१७

(२) 'द्विभ्रंज्योमि पुराण-मौलिकवरणैः'—अमरकोष पृ० २२ वि० भ० १-११

(३) 'भोभामाविनियोजिनायनवत्'—अमरकोष पृ० ३८ वि० भ० १-३

(४) 'मर्दिनि मुचनराती नमो मन्मथाय'—अमरकोष पृ० १८७ वि० भ० १-१७

३. इन्द्रोदकान दृक्कणभदेवात्र मुषागितावती—पृ० १०१

क्षीरसागर के भ्रान्त नाम के आधार पर राजशेखर को आठवीं शताब्दी का मानना अनुचित है।

आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध : आठवीं शताब्दी को राजशेखर का काल मानने वाले श्री आप्टे का कथन है कि—

“Bhavabhuti was not appreciated in his own days. He had to rest with well ground faith on boundless time and extensive time and extensive earth for the appreciation of his works, and it is, I think, quite reasonable to suppose that a period of at least 100 years must have elapsed before the verdict of posterity was unmistakably pronounced in his favour. At such a distance can alone Rajasekhara be reasonably supposed to mention Bhavabhuti in the manner above referred to. From this I conclude that our poet must have not flourished till at least one hundred years after Bhavabhuti. In other words he could not have lived earlier than the end of the 8th Century A. D.,¹

भवभूति के गौरव के सम्बन्ध में आप्टे महोदय का कथन ठीक भी हो सकता है, किन्तु राजशेखर के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में यह आधार प्रामाणिक है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में अपने आश्रयदाता नरेश महेन्द्रपाल का उल्लेख किया है। किन्तु सियदोनी अभिलेख के अनुसार महेन्द्रपाल का राज्यपाल ६०३ ई० से ६०७ ई० ठहरता है।^२ मत श्री० आप्टे का मत प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता।

ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध : ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को राजशेखर का रचना-काल मानने वाले विज्ञान महोदय ने अपने मत की पुष्टि में कर्पूरमन्दरी महक की निम्न प्रस्तावना उद्धृत की है—

चाहुमाणकुन मोनिमानिमा राधमेहर कदद गेहिणी ।

भक्तुणो सिद्धमवनिमुन्दरी सा पउजइउमेममिच्छद ॥

इसके अनुसार राजशेखर की पत्नी भवलिमुन्दरी न बंजन चौहान कुतोत्पन्न है भक्तिवद् चौहान कुन का निगोहन भी है। चौहान वंश राजपूतों का था।

१. राजशेखर हिज साइक एण्ड राइटिंग पृ०-१४

२. एशियाटिका इण्डिका जिन्द १ पृ० १०३ ।

३. कर्पूरमन्दरी-१-११ ।

इससे थो विल्लन महोदय ने अनुमान किया है कि राजशेखर किसी राजपूत नरेश के मन्त्री थे तथा वे ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे —

In a verse cited from another work by the writer the (Karpurmanjari) his wife is styled as the chaplet of the crest of the Chauhan Race from which it follows that he belonged to that tribe. We can only conclude, therefore, that Rajshekhar was the minister of some Rajput prince who flourished in the central India, at the end of the eleventh or the beginning of the twelfth century.”^१

परन्तु कर्पूरमञ्जरी के आधार पर थी० विल्लन ने जो अनुमान निकाले हैं वे युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होते^२ । यद्यपि राजशेखर की पत्नी भवन्तिमुन्दरी राजपूत थी, राजशेखर स्वयं जाति से ब्राह्मण थे । अतः पत्नी के आधार पर उन्हें भी राजपूत मानना सगत प्रतीत नहीं होता । दूसरी बात यह है कि, वे महामन्त्री के पुत्र थे,^३ स्वयं मन्त्री नहीं । जो व्यक्ति अपने ग्रन्थों में बार बार स्पष्ट शब्दों में स्वयं को महेन्द्रपाल का पुर^४ एवं महेन्द्रपाल को अपना शिष्य^५ बता रहा है, वह किसी ग्रन्थ क्षत्रिय राजा या मन्त्री कैसे हो सकता है ? अतः दुर्बल प्रमाणों पर आधारित होने के कारण विल्लन महोदय का मत, जो राजशेखर को ग्यारहवीं शताब्दी-उत्तरार्द्ध एवं बारहवीं शताब्दी-पूर्वार्द्ध में निर्धारित करता है, अनुपयुक्त है ।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी को राजशेखर का रचनाकाल माननेवाले प्रमुख विद्वान् डॉ० मेक्समूलर की विचारधारा कुछ नवीन आधार लिए हुए हैं । वे कहते हैं —

१. हिन्दू चिपेटर-एच. एच. विल्लन जिल्ड २ पृ० ३६२
२. बालरामायण-१-८ सुक्तमिद तेनैव हि महामन्त्रिपुत्रेण ।
बालभारत-१-६ ज्वत हि तेनैव महासुमन्त्रिपुत्रेण ।
३. कर्पूरमञ्जरी-१-६ “बालकई करराप्रो निष्कारराजस तहउवग्गामो ।”
४. विद्वशालभजिका-१-६ रघुकुलतिलको महेन्द्रपाल सकलवतानिलयः स यस्य शिष्यः ।
—बालरामायण १-१८ देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुशर्मणो
—बालभारत १-११ वही

Rajasekhara lived in the fourteenth century. He wrote the *Prabandhakosh* in about 1347 A. D. "

उन्होंने राजशेखर को 'प्रबन्धकोष' नामक ग्रन्थ का रचयिता कहा है। चौदहवीं शताब्दी में राजशेखर सूरि नामक जैन साहित्यकार ने 'प्रबन्धकोष' की रचना की थी। किन्तु राजशेखर के जिन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है उनमें प्रबन्धकोष का नाम नहीं है और न ही वे जैन साहित्यकार थे। अतः राजशेखर को चौदहवीं शताब्दी का मानना उचित नहीं है।

ईसा की नववीं शताब्दी को अनेक विद्वान् राजशेखर का रचनाकाल मानते हैं। "देवो यस्य महेन्द्रपाल नृपति शिष्यो रघुग्रामर्णी." के अन्तः साक्ष्य को आधार मानकर वे थोड़े-बहुत अन्तर से नववीं शताब्दी के आस पास राजशेखर का समय निर्धारित करते हैं। विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित कालावधि इस प्रकार है।

१. डॉ० स्टेनकोनो एव प्रो० सॉनमैन ^१	—६०० ई०
२. श्री० सी० डी० दलाल, ^२	
प० भार० ए० शास्त्री	—८८० ई०—९२० ई०
३. श्री० नारायणराम भावाय ^३	—८८४ ई०—९५६ ई०
४. श्री० एन० जी० सुरु ^४	—७५५ ई०—९३० ई०
५. डॉ० पी० वी० काणे ^५	—८७५ ई०—९५० ई०
६. डॉ० वि० वि० मिराशी ^६	—८८५ ई०—९७५ ई०

इन तिथियों के अवलोकन से हमारे आलोच्य कवि के लिए एक सीमा बन जाती है और वह है ८५५ ई० से ९७५ ई० तक का अन्तराल। इसके उचित निर्धारण के पूर्व इन प्रश्नों में उन साहित्यकारों का उल्लेख उपयुक्त होगा, जिन्होंने राजशेखर को अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। इसे हम साहित्यिक साक्ष्य कहेंगे—

-
- १ इण्डिया व्हाट कैन इट टीच अस ?—मैक्समूलर—पृ० ३२८
 - २ कर्पूरमंजरी—हारवर्ड ओरिएण्टल सीरीज, पृ०—१७६
 - ३ काव्यमीमामा (प्रस्तावना) गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज पृ० ३१
 - ४ कर्पूरमंजरी—निर्णयसागर प्रेस—पृ० ५
 - ५ कर्पूरमंजरी—(प्रस्तावना) श्री० एन० जी० सुरु पृ० १०२
 - ६ इन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण—डॉ० पी० वी० काणे पृ० २०७
 - ७ पाठक कमेन्टरीजन् वॉल्फ़म—डॉ० वी० वी० मिराशी पृ० ३६५-३६६

साहित्यिक साक्ष्य

राजशेखर के पश्चात् उनके भावों एवं शब्दों को ग्रहण करने वाले भाषाओं में प्रमुख हैं—धनंजय, धमिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, कुन्तक, भम्मट, वाग्भट, हेमचन्द्र, परिंसाह, भ्रमरचन्द्र, देवेश्वर, केतवामित्र एवं विश्वनाथ । कालक्रम की दृष्टि से धनंजय प्रथम है जिन्होंने राजशेखर के समय से कुछ समय पश्चात् ही उन्हें उद्धृत किया है । दशरूपक में प्रपञ्च के प्रसंग में वे कहते हैं—

“असद्भूतं मिथः स्तोत्र प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः ।

असद्भूतेनार्थेन पारदार्यादिनैगुण्यादिना याऽप्योन्व-

स्तुतिः स प्रपञ्चः । यथा कर्पूरमञ्जया' भैरवानन्द —

रण्डा चण्डा दीसिता धर्मदारा

मद्य मास पीयते खाद्यते च ।

मिस्रा भोज्य चर्मैकच्छं च शय्या

कौलो धर्मं करय मो भाति रम्यः ॥”

इसी प्रकार धनञ्जय ने आयोग की दस धवस्थाधो में से “धानन्द” नामक धवस्था के उदाहरण के लिये ‘विज्ञानभञ्जिका’ के निम्न श्लोक का उल्लेख किया है—

‘धानन्दो यथा विज्ञानभञ्जिकायाम्’

मुधावद्ध—ग्रस्तं रूपवत्—चकोरैरनुसृतं,

किरत् ज्योत्स्नामच्छा नववत्सिपाकप्रणविनीम्”

धनंजय का समय ६७४ ई० से ६६४ ई० के मध्य का है । अतः राजशेखर को ६६४ ईसवी के पूर्व का माना प्रवृत्त न होगा ।

इसी प्रकार सोमदेव ने यशस्तिलकचम्पू में पूर्ववर्ती साहित्यकारों की एक नामावली दी है जिसमें राजशेखर का नाम अन्त में आता है ।

‘यथा उर्वारवि-भवभूति-वर्तुहरि भर्तृमेष्टकम्पुणहृदयव्यास-भासबाण-कालिदास मयूरनारायणकुमारभाषराजशेखरादिमहाकवि काव्येषु’

१. दशरूपक ३-१५

२. दशरूपक ४-५४५५

३. यशस्तिलकचम्पू (चतुर्थ उच्छवाम) २।११३

इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर यशस्तिलककार के समय में जीवित थे या उनसे कुछ दिन पूर्व ही दिवंगत हुए थे। "यशस्तिलकचम्पू" की रचना १५६ ई० में हुई थी। यही राजशेखर की परावधि मानी जा सकती है।

राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में वाल्मीकि से लेकर कवि रत्नाकर तक का उल्लेख किया है। रत्नाकर आनन्दवर्धन के समकालीन थे, तथा वे काश्मीर-नरेश अद्वन्ति वर्मा की विद्वत्समा को मण्डित करते थे। इनका समय ८५५ ई० - ८८३ ई० है। अतः साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर राजशेखर ईस्वी सन् ८८३ में ईस्वी १५६ के बीच रचे जा सकते हैं।

उपरिर्णित बाल-निर्धारक मान्यताओं तथा साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित तिथि का अचिन्त्य एवं अनौचित्य, ऐतिहासिक साक्ष्य से स्पष्ट हो सकता है। क्योंकि राजशेखर द्वारा दी गई आश्रयदाता नरेशों की तिथि में सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है।

ऐतिहासिक साक्ष्य

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना में स्वयं को गुर्जर-प्रतिहारवशी महेन्द्रपाल का उपाध्याय^१ बतलाया है।

"बालकई कहराओ जिवभग्रायस्त तह उवज्जामो"

महेन्द्रपाल की राजधानी कान्यकुब्ज नगरी थी। काठियावाड़ में स्थित ऊना के अभिलेख^२ में इस नरेश की प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति ८६३ ई० की होने के कारण इस शासक की पूर्वावधि भी ८६३ ई० मानी जा सकती है। इस राजा का प्रशस्ति-परक अन्तिम अभिलेख क्षासी जिले के सियदोनी^३ ग्राम में है। जिस पर १०३-१०७ ई० अंकित है। अतः अभिलेखों के आधार पर महेन्द्रपाल का समय ८६० ई० से ११० ई० तक स्थिर किया जा सकता है।

"बालभारत" की प्रस्तावना में गुर्जर-प्रतिहारवशी महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल का उल्लेख है। यह नरेश राजशेखर का आश्रयदाता था।^४ इसके शान्त काल के

१ कर्पूरमञ्जरी १. ६

२ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १, पृ० ६ पादटिप्पणी द्रष्टव्य।

३ एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १ पृ० १७३

४. बालभारत १-अनभितमरलमौलि. पाकलो भेकलाना
रणनलितकनिष. कैलितट् केरलेन्दो।
अजनि जितकुसुतः कुन्तलाना कुठारो
हृत्तरमउथी थी महीपालदेव।

दो महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हैं। एक हडस^१ ग्राम में है, जिस पर महीपाल की तिथि ६१४ ई० उत्कीर्ण है, दूसरा एवं अंतिम प्रतापगढ़^२ में है जिस पर ६४८ ई० अंकित है। दोनों अभिलेखों के आधार पर राजशेखर के आश्रयदाता महीपाल का समय ६१० ई० से ६४८ ई० मानना प्रामाणिक है।

राजशेखर की 'विद्वत्शालाभञ्जिका' त्रिपुरी-नरेश युवराजदेव के प्रीत्यर्थ प्रस्तुत की गई थी। युवराजदेव त्रिपुरी के नरेश थे। विसहरी^३ ग्राम में प्राप्त विलालेख के आधार पर इनका शासनकाल ६१० ई० में ६४८ ई० ज्ञात होता है।

इस प्रकार इन तीन आश्रयदाताओं का कालक्रम है —

- | | |
|--------------------|--------------------|
| १. महेन्द्रपाल | — ८६० ई० से ९० ई० |
| २. महीपाल | — ६१० ई० से ६४८ ई० |
| ३. युवराजदेव प्रथम | — ६१० ई० से ६४८ ई० |

तीनों के आश्रय में रहने के कारण राजशेखर का रचनाकाल भी लगभग ८८० से ९५० तक रहा होगा।

निष्कर्ष

विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचारों एवं अनुमानों के आधार पर राजशेखर का रचनाकाल ईसा की सातवीं शती से चौदहवीं शती के बीच स्थिर करने का प्रयास किया है। किन्तु कहीं महेन्द्रपाल की तिथि और कहीं राजशेखर की कृतियों से उनका साम्य न होने के कारण वे निश्चिन्त अनुपयुक्त हैं। कतिपय विद्वानों ने नवम शताब्दी के आसपास ही राजशेखर का समय निर्धारित किया है किन्तु साहित्यिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार राजशेखर निश्चित ही ८८५ ई० में साहित्य-क्षेत्र में उतर चुके थे। दूसरे, जो विद्वान् राजशेखर को नवम शताब्दी का मानते हैं वे भी उनका काल ८८५ ई० के लगभग ही स्थिर करते हैं।

राजशेखर महेन्द्रपाल के गुरु थे। महेन्द्रपाल के पिता मिहिरभोज की मृत्यु ८८५ ई० में हो चुकी थी। इसी समय महेन्द्रपाल (ई० ८८५ में) राज्य धिष्ठित

१ इडियन एण्टीक्वेरी-जिल्द-१२ पृ० १६३ पादटिप्पणी-ब्रष्टव्य
 २ इडियन एण्टीक्वेरी-जिल्द १४ पृ० १२२ पाद टिप्पणी ब्रष्टव्य
 ३ एग्नापिना इण्डिया जिल्द १ पृ० २५२ पादटिप्पणी ब्रष्टव्य

हुए थे । महेन्द्रपाल के गुरु राजशेखर ने भी अनुमानतः ८८५ ई० में साहित्य-क्षेत्र में यदापेक्ष विद्या होगी ।

उन्होंने युवराजदेव (६१० ई० से ६४८ ई० तक) की सभा को भलकृत किया था । वही उन्होंने 'विद्वत्शालभञ्जिका' का प्रणयन किया होगा । तत्पश्चात् प्रौढ पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने 'काव्यमीमांसा' ग्रन्थ की रूपरेखा निर्धारित की होगी । लगता है कि इसी पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ की रचना करने-करते नब्बे वर्ष की आयु में सन् ६७५ ई० के लगभग वे दिवंगत हो गए ।

उपर्युक्त विवेचन में स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर ८८५ ई० से ६७५ ई० तक साहित्य-जगत को आलोकित करते रहे ।

राजशेखर नामों की अनेकता

राजशेखर नाम के अनेक व्यक्ति मसूह साहित्य में मिलते हैं । किन्तु उनका स्थितिकाल उनके नामों की अनेकता के सम्बन्ध में फैली भ्रान्ति का निराकरण करता है ।

(१) सन् ३२२ में केरल प्रदेश में राजशेखर नाम के एक राजा हुए थे ।^१ उन्होंने 'मुकुन्दमाला' ग्रन्थ की रचना की थी । अभिनव वाणिदास के शिष्य कवि कुञ्जर ने 'राजशेखर-चरित' नामक प्रबन्ध का निर्माण किया जिसमें उस राजा को "कुलशेखर" और "रसिकशेखर" शब्दों में सम्बोधित किया है तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ वर्णित की हैं ।

(२) माधवाचार्य ने अपने "शकरदिग्विजय" में राजशेखर नाम के राजा का उल्लेख किया है तथा उसे भी केरल प्रदेश का राजा बताया है । साथ में यह भी लिखा है कि वे आठवीं शताब्दी के शकराचार्य के समकालीन थे । अतः राजशेखर-चरित में वर्णित केरल क्षितिपति 'राजशेखर' माधवाचार्य वर्णित राजा 'राजशेखर' से भिन्न है । यह तो स्पष्ट है लेकिन 'शकरदिग्विजय' और 'उमके लेख' माधवाचार्य, दोनों की जानकारी सदिग्ध होने के कारण उपर्युक्त विवेचन विश्वमनीय नहीं माना जा सकता ।

१. हिन्दी साहित्य-संश्लेषण मसूह, लिटिचर-एड. कृष्णदासारी-पृ० ५०८ ।

२. वही—, पृ० ६२५

(४) दक्षिण में जंजेरशेरि के समीप तलइनइल्ल गाव में ७५० ई० से ८५० ई० के बीच किसी राजशेखर नामक नरेश^१ के होने की जनश्रुति प्रचलित है। इस जनश्रुति के प्रामाणिक होने में संदेह है।

(४) इतिहास में राजशेखर सूरिनामक एक जैनाचार्य^२ का नाम भी मिलता है। इन्होंने प्रबन्धकोष' या 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' की रचना की थी। इनका समय १३४८ ई० है। डॉ० मैकममूलर ने नाम की भ्रमानता के कारण भ्रान्ति में गया-वरीभ राजशेखर और जैन राजशेखर को अभिन्न माना है।

(५) इन राजशेखरों के अतिरिक्त गोदावरी के किनारे पेशुर में भी एक कोल्लूरिवशज राजशेखर^३ हुए हैं। इनका दूसरा नाम मोमशेखर था। इनकी तीन रचनायें—'साहित्यकरपट्टम' 'शिवशतक' और 'अलकारमकरन्द' हैं। इनका समय १८४० ई० है।

उक्त पाँचों राजशेखर नामक व्यक्तियों में से तीन नरेश, एक कोल्लूरिवशज साहित्यकार और एक जैन साहित्यकार हैं। कवि-आचार्य राजशेखर न तो राजा थे और न जैन। दूसरे राजशेखर का काल ८८५ ई० से ९७५ ई० के मध्य का है। अतः 'काव्यमीमांसाकार' राजशेखर इन सब राजशेखरों में सर्वथा भिन्न हैं।

जन्म-स्थान

यह निर्विवाद है कि राजशेखर, गुर्जर-प्रतिहार महेन्द्रपाल और महीपाल के शासन-काल में 'काव्यकुब्ज' में थे। वे कुछ समय तक कलचुरि नरेश पुष्यराज-देव की राजधानी 'विपुरी' में भी रहे। किन्तु उनके जन्मस्थान का प्रश्न अब भी विचारणीय बना हुआ है।

राजशेखर के पितामह अकालजलद महाराष्ट्र के प्रतिष्ठित जनों के भूषण्य थे।^१ तदामुष्यायनस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थोदोर्दकि।^{१*} किन्तु राज-शेखर का जन्म-स्थान महाराष्ट्र था, यह निश्चित नहीं है। इनके जन्मस्थान का निर्धारण करने वाले विद्वानों के दो वर्ग हैं। पहला यह कहता है कि वे मध्यप्रदेश में उत्पन्न हुए थे। दूसरे वर्ग का कथन है कि उनका जन्म-स्थान दक्षिण प्रदेश था।

- | | | |
|----|---|----------|
| १ | हिन्दी ग्राफ़ कलासिक्ल सस्कृत लिट्रेचर-एन. कृष्णमाचारी- | पृ० ६२६। |
| २. | —वही— | पृ० ४३२। |
| ३ | —वही— | पृ० ५०८। |
४. बालरामायण १-१३।

उनकी पूरी धारणा—जि पाँचाल और कन्नौज के कवियों तथा सुन्दरियों के प्रति उनके प्रशंसात्मक वचन उनका मध्यदेशीय होना सूचित करते हैं—अनुपपुक्त हैं । ऐसे तर्क यदि मान लिये जायें तो साहित्यकारों के स्थान-निर्धारण का काम अत्यन्त सरल हो जायगा किन्तु इसके परिणाम कितने दोषपूर्ण होंगे यह सहज ही कल्पित किया जा सकता है । दक्षिण प्रदेश को राजशेखर का जन्म-स्थान प्रमाणित करने वाले श्री आपटे का कथन है कि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में दक्षिणात्यो के आचरण, उनकी स्थानीय विशेषताओं एवं दक्षिण की नदियों के सौन्दर्य का अत्यन्त सहृदयतापूर्वक वर्णन किया है । अतः आपटे महोदय का अनुमान है कि राजशेखर दक्षिण देशवासी या महाराष्ट्र के निवासी रहे होंगे ।^१ इस अनुमान को वे इस तर्क से पुष्ट करते हैं कि सम्भवतः उनके हृदय पर जन्म-भूमि की प्रकृति तथा लोक-रीति की प्रतिभा का इस प्रकार का प्रकट होना सहज है । श्री आपटे महोदय के कथन में प्रामाणिकता दिखाई देती है । तद्विपरीतता दक्षिणात्यो की एक साहित्यिक विशेषता रही है । राजशेखर के ग्रन्थों के अनुशीलन में ज्ञात होता है कि 'काव्यमीमांसा' में न केवल 'तद्विपरीतता हि दक्षिणात्या' इस महाभाष्य के वाक्य का स्मरण दिलाया गया है प्रत्युत उनकी अपनी रचनाओं में तद्विपरीत-रूपों का बहुलता से प्रयोग भी किया है ।

श्री नारायण दीक्षित ने 'विद्वत्सालमञ्जिका' की टीका में लिखा है कि बाल-रामायणे स्वस्य महाराष्ट्रवर्णनात् महाराष्ट्रः कवि । सोऽयं देशी-प्रायस्त्वदेश-जान् प्रयुक्तवान् । योऽस्माकं मुबोधो बहुधास्ति सः । इस प्रकार श्री दीक्षित ने राजशेखर को स्पष्ट रूप से महाराष्ट्र का कवि कहा है ।

डॉ० मिरासी^१, श्री स्टेनकोनो एवं श्री लॉनमेन^२, श्री एस० के० दे, श्री कृष्णमाचारियर^३, श्री पी० बी० काने^४, श्री दत्ताल एव श्री शास्त्री^५ इसी पक्ष

१. राजशेखर हिज साइफ एण्ड राइटिंग्स—आपटे पृ० २२ ।

२. ए० बी० ओ० गार० आई०—पृ० ३६६ ।

३. कर्पूरमञ्जरी—हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज—पृ० १८०—१८१ ।

४. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—जिन्द १—एस० के० दे पृ० ४२५ ।

५. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—एन० कृष्णमाचार्य—पृ० ६२५ ।

६. इन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण—डॉ० काने—पृ० २०७ ।

७. काव्यमीमांसा—वायकवाङ् ओरियण्टल सीरीज—पृ० ३० (प्रस्तावना) ।

के समर्थक है। राजशेखर का जन्मस्थान महाराष्ट्र मानने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिये। हाँ, इस विज्ञान महाराष्ट्र में किस भू-भाग विशेष को कवि ने अपने जन्म से कृतार्थ किया, यह प्रश्न दुर्गह तो नहीं, किन्तु विवेचनीय है।

राजशेखर ने काव्यमीमामा में काव्य-पुरुष को विदर्भ-देशोत्पन्न बतलाया है और उसे वैदर्भी रीति में ही आकृष्ट भी किया है। उन्होंने साहित्य का जन्म-स्थान, काव्य-पुरुष तथा साहित्य-विद्यावधू का विवाहस्थान इसी विदर्भभूमि को माना है। उनके कर्पूमञ्जरी सट्टक की नायिका भी विदर्भ देश की ही है। उनके ग्रन्थों में इतना गौरवपूर्ण 'विदर्भ'—निश्चित ही कवि का जन्म स्थान होना चाहिये।

विदर्भ का अपना निजी इतिहास है। यत्पुल्लम अकोला जिले में स्थित वाशिम का ही प्राचीन नाम है। चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में इस नगरी को वाकाटक नरेशों की वैभवशाली राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। उन नरेशों के साथ ही यह गौरव भी धाराशायी हो गया। राजशेखर ने पाँच सौ वर्षों के पश्चात् उस वैभव-विहीन नगरी को, साहित्यिक प्रतिष्ठा देकर पुनः गरिमा से मण्डित किया। राजशेखर के आदर्श भवभूति भी विदर्भ देश में पैदा हुए थे। किन्तु उन्होंने विदर्भ को विशेष महत्व नहीं दिया। राजशेखर ने उसे इतनी अधिक प्रतिष्ठा जन्मभूमि के प्रेम के कारण ही प्रदान की है।

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के निर्माण में बच, पूर्वज एवं माता पिता का अत्यधिक महत्व होता है—

वंश

राजशेखर यायावर वंश में उत्पन्न हुए थे। यह यायावरवंश ब्राह्मणों का ही होता है। अतः राजशेखर ब्राह्मण जाति के थे। यायावर शब्द का सामान्य अर्थ है—निरन्तर चलने वाला। प्राचीन काल में धर्मशास्त्रकारों ने यायावर श्रेणी गृहस्थों की बतलाई है। देवना ने गृहस्थों को दो भागों में बाँटा है। १—शालीन तथा २—यायावर। यायावर शालीन से ऊँचे माने जाते हैं। बोधायन ने यायावर के विषय में कहा है कि यायावर गृहस्थ धन्युत्तम जीविका चलाने वाले होते हैं। वे बाटकर घर में जाने समय पृथ्वी पर बिरे धन को ही जीविकार्थ चुनते हैं और संपत्ति का संचय नहीं करने। वे जीवकोपाजंनार्थ

१. यायावन्वयस्मृति १-१२८।

२. बोधायन धर्मसूत्र ३-१-१।

पौरोहित्य, अध्यापकत्व अथवा दान का आश्रय नहीं लेते । वीषायन में निज मन बैखानस-गृह्यसूत्र^१ में उपलब्ध होता है । इस सूत्र में यायावरो के छह कार्य गिनाये हैं । १-हविष एवं सोम यज्ञ का सम्पादन, २-यज्ञ का पौरोहित्य, ३-वेद का अध्ययन अध्यापन, ४-दान एवं प्रतिग्रह, ५-श्रीत एवं स्मार्त धर्म का निरन्तर सेवन तथा अतिथियों की परिचर्या ।

फिर भी सम्पूर्ण विवेचन से ज्ञात होता है कि यायावर बंग अपनी धार्मिकता, नैष्ठिकता तथा सदाचार के लिये मदा से प्रसिद्ध है । राजशेखर ने स्वयं को बारंबार यायावर या यायावरीय कहा है ।

पूर्वज

यह यायावर कुल, कवियों के प्रसव के लिये कल्पतरु था । इस कुल में राजशेखर के पूर्वजों में अकालजलद, सुरानन्द एवं कविराज आदि उल्लेखनीय काव्यकार हुए हैं ।^२

कविराज अकालजलद राजशेखर के प्रपितामह थे । वे महाराष्ट्र के प्रतिष्ठितों में भी मूर्धन्य थे । राजशेखर अकालजलद के विषय में कहते हैं—“जब मूर्ध सरोवर में मेढक अपने बिलों में पड़े मृतप्राय हो रहे थे, तब अकालजलद ने आकर मूर्ध सरोवर में ऐसी वर्षा की कि अब उसी में जगली हावियों के झुंड गले तक डूब कर जल पी रहे हैं ।” कादम्बरीराम नामक नाटककार ने, अकालजलद के श्लोकों को अपनी कृति में इस कुशलता से सविष्ट किया कि वे उसी के प्रतीत होने लगे । अकालजलद की वचन-शक्ति का कवि-चकोर निन्द ही पान करते हैं ।^३ किन्तु वह शक्ति रिक्त नहीं होती । इससे स्पष्ट है कि राजशेखर के प्रपितामह महाराष्ट्र देश के सम्प्रतिष्ठ साहित्यकार थे ।

अकालजलद के समान सुरानन्द भी यायावर वंश के थे तथा राजशेखर के पूर्वज थे । सम्भवतः ये राजशेखर के पितामह होंगे । सुरानन्द चेदिमण्डल के भूषण थे ।^४ राजशेखर ने काव्यमीमांसा में सुरानन्द के “अपहरण” सबधी मत को

१. बैखानस-गृह्यसूत्र १-८ ।

२. बालरामायण १-१३ ।

३. सूक्तिमुक्तावली ४-८४ ।

४. सूक्तिमुक्तावली ४-८३ ।

५. सूक्तिमुक्तावली ४-८७ ।

नदीना मेकलसुता नृपाणां रणविग्रह ।

नदीना च सुरानन्दश्चेदिमण्डल मण्डनम् ॥

आदरपूर्वक ग्रहण किया है। इसमें प्रतीत होना है कि राजशेखर उनकी विद्वत्ता एवं प्रतिष्ठा में अपनी युवावस्था में ही लाभाश्विन्त हुए होंगे।

इसी यायावर वंश में तरल नाम के कवि भी प्रसिद्ध है। मूक्तिमुक्तावली में यायावर कुलधेणी के मण्डनरूप में तरल कवि का परिचय मिलता है।^१ राघवपाण्डवीय काव्य के रचयिता कविराज से हम अवश्य परिचित हैं। किन्तु यह यायावरीय कविराज से भिन्न है। क्योंकि यह कविराज धारानरेश कामदेव (मन् ११८२-११८७) के समकालीन थे। यायावरीय कविराज के विषय में अन्य किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं है।

माता पिता : राजशेखर की माता का नाम शीबमती तथा पिता का नाम दुर्दुक या दुहिक था—“तदामुध्यायस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकाल जलदस्य चतुर्थो दौर्दुकि शीबमती सनुस्थाध्याय श्रीराजशेखर इत्यपर्याप्त बहुमानेन।”^२ नाम को छोड़कर उनकी माता के विषय में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। कवि के पिता किसी राजा के महामंत्री थे^३ किन्तु किम राजदरबार में वे महामंत्री का पद सम्हाल रहे थे इसकी भी विश्वसनीय जानकारी हमें प्राप्त नहीं है। इनके परिवार के अन्य सदस्यों, या भाई बहिनों आदि के विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है। हो सकता है, वे अपने माता पिता के एक मात्र पुत्र रहे हों।

पत्नी : उन्हें थी एव सरस्वती में वरप्राप्ता पत्नी का भी नाम हुआ था। नवम शताब्दी में क्षत्रियों का चौहान कुल प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर हो रहा था। राजशेखर की पत्नी अवन्तिमुन्दरी चौहान वंशीया क्षत्रिया थी। अवन्तिमुन्दरी का कुल अन्य चौहानों में मूर्धन्य माना जाता था।^४ स्पष्ट है कि राजशेखर तथा अवन्तिमुन्दरी का विवाह अन्तर्जातीय या अनुलोभ था। इस अन्तर्जातीय (अनुलोभ) विवाह के लिये राजशेखर को किनने बड़े संघर्ष का सामना करना पड़ा होगा यह अनुमान हम महज ही कर सकते हैं।

१. मूक्तिमुक्तावली —

यायावरकुलधेणेर्हरियष्टेश्व मण्डनम् ।

मुवर्णवन्धवचिरस्तरलस्तरलो यथा ॥

२. बालरामायण—अंक १-१३-१४ ।

३. बालभारत १-८।६ (उक्तं हि तेनैव महामुमन्त्रिपुत्रेण)

बालरामायण-१-८।७ (मूक्तमिद तेनैव महामन्त्रिपुत्रत्वेण)

४. कपूरमजरी १-११

चाहुभाणकुलमोतिमालिभा राउमेहर कइंदगेहिणी ।

भत्तुणो किइमवनिमुन्दरी मा पउजइउमेमिच्छइ ॥

जवन्तिमुन्दरी विदुषी यहिना थी । मसृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं पर उनका प्रभुत्व था । उनके द्वारा रचे गये किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ का नाम नहीं मिलता, फिर भी इतना स्पष्ट है कि वे असकारशास्त्र में निपुण थी । 'काव्यमीमांसा' में जवन्तिमुन्दरी के मतों का तीन बार उल्लेख है । एक में उन्होंने वामन के पाक विषयक मत^१ का खण्डन किया है । दूसरे शब्दहरण के विषय में^२ जवन्तिमुन्दरी का मत महत्वपूर्ण है । तीसरे रस-परिपाक के विषय में^३ भी उनका स्वतन्त्र मतव्य मिलता है । हेमचन्द्र ने देवीनाममाला में^४ जवन्तिमुन्दरी को दो बार उद्धृत किया है जिसमें स्पष्ट है कि वे न केवल संस्कृत और प्राकृत अपितु तत्कालीन जनभाषाओं में भी पारंगत थी । दमवी शताब्दी के तिलक-मजरीकार भगवार्थ धनपाल की छोटी बहन का नाम भी जवन्तिमुन्दरी था । धनपाल ने उसके लिये 'पांडुप्रलच्छी' की रचना की थी । डॉ० बृन्टरह्मी पाश्चात्तर पर 'पांडुप्रलच्छी' की प्रस्तावना में यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि हेमचन्द्र की देवी नाममाला में जिस जवन्तिमुन्दरी का उल्लेख है वह धनपाल की बहन थी, कर्पूरमजरीकार राजशेखर की पत्नी नहीं । बृन्टर महोदय की यह बात कितनी हास्यास्पद लगती है ।

राजशेखर ने कर्पूरमजरी की रचना जवन्तिमुन्दरी के लिये की थी । नाम से जवन्तिमुन्दरी जवन्तिवेश की प्रणीत होती है । संभव है उसका नाम कुछ अन्य हो, परन्तु जवन्तिप्रदेश पर प्रगाढ़ अनुराग होने में उन्होंने प्रेयसी का नाम जवन्तिमुन्दरी रख लिया हो ।

पारिवारिक जीवन

राजशेखर की साहित्यिक प्रणिष्टा को बनाये रखने में इनकी धर्मपत्नी का बहुत बड़ा योगदान प्रणीत होगा है । इसका पारिवारिक जीवन सुखद रहा होगा । क्योंकि "वचिका जैसा स्वभाव होता है वैसा ही उसका भाव्य होता है । जैसा चित्र-कार होता है वैसा ही उसका चित्र होता है" । इस नियम से कवि के साहित्य से

१. काव्यमीमांसा १-११

२. काव्यमीमांसा अ ५० २०

३. वही अ ११५० १७ ।

४. देवीनाममाला ३-७१, ४-१५७ ।

५. पांडुप्रलच्छी-डॉ० बृन्टर (प्रस्तावना) पृ० ७ ।

गंनुष्ट पारिवारिक जीवन का पता चलता है । उनके समस्त ग्रन्थों का सधुक् निरीक्षण करने से मालूम होता है कि वे विनासी तथा विनोदी स्वभाव के थे । उनके जीवन का अधिकांश भाग राजशेखर में ही बीता था । अतः उनकी वाणी में शिष्टता तथा आचार-विचार एवं वेशभूषा में राजमहोचित गरिमा थी । आदर्श कवि की जीवन-चर्चा का वर्णन राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में किया है । अनुमानतः उनका जीवन तदनु रूप रहा होगा । इस दृष्टि से वे वास्तविक वर्णित नागरिकचर्चा के नागरिक थे । वास्तविक के नागरिक भुव ममृद्धि के प्रतीक थे । हमारे काव्य-माधक के विषय में भी यह कथन अति-शयोक्ति न होगी ।

अध्ययन

राजशेखर ने किम सुष्ठुन वा विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण की, इसका निर्देश प्राप्त नहीं है । राजशेखर ने स्वयं कवि के लिये वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या, राजसिद्धान्तप्रणी, सांसारिक या व्यवहारिक वृत्त, धर्मग्रन्थ कवियों की रचनाएँ, दृश्यकाव्य, ध्वन्यकाव्य, प्रकीर्णक (चौगठ बलाये, आयुर्वेद ज्योतिष, वृक्षशास्त्र, अश्व गजलक्षण आदि) का अध्ययन आवश्यक बनता है । वे स्वयं चारों वैश्व और वेदांगों के विद्वान् थे । इन्होंने ऋग्वेद की दो रचनाएँ काव्यमीमांसा में उद्धृत की हैं । काव्यपुरुष की उनकी वर्णना पुरुष-सूक्त पर आधारित है । ऐतरेय, जनपद, तैत्तिरीय ब्राह्मण, मुण्डक, श्वेताश्वतर, ईश और महानारायणोपनिषदों का उन्होंने भवन किया था ।

मरुत व्याकरण का इनका अध्ययन गम्भीर था । कविरहस्य का छठा अध्याय व्याकरण शास्त्र के नियमों से सबन्धित है । प्रकृति और प्रत्यय निष्पन्न सुबन्त एवं तिङ्बन्त शब्द, प्रातिपदिक एवं पद की परिभाषा, सुबन्त, ममाभात तद्धितान्त कृदन्त और निदन्त के पाँच पद-भेद, ममासवृत्ति के छ भेद, तद्धितवृत्ति की अनन्तता, दस लकारों पर आधारित निदन्त के दस भेद, वाक्य, वाक्यभेद, भारत के विभिन्न देशों की प्रियवृत्तियाँ, पातञ्जल महाभाष्य के पञ्चशास्त्रिक का समीक्षण, व्याकरण का काव्यविद्या की दृष्टि से मूल्यांकन, व्याकरणकारपाल्यकीर्ति के मत का उल्लेख, शब्द ब्रह्मवाद का विवेचन आदि से उनकी व्याकरण विषयक पारंगतता सूचित होगी है ।

वायु-पुराण इनका प्रिय पुराण है । काव्यपुरुष के जन्म की कथा प्रसुद्धत, वायु-पुराण के अन्तर्गत पर आधारित है । कविरहस्य अधिकरण के मप्तम अध्याय

मे ब्राह्मवचन उसके पाँच प्रकार-स्वायम्भुव, ऐश्वर्य, आर्प, आर्पिक एवं आर्पिपुत्रव, इन सबका वर्णन राजशेखर ने वायुपुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर किया है। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण और अग्निपुराण में उनकी रुचि दिखाई देती है। भारतवर्ष के वर्णन में जम्बूद्वीप का उल्लेख, कविप्रसिद्धियाँ तथा बाल-रामायण में लिखित अनेक कथाओं का आधार आदर्श पुराण है। इन पुराणों के अध्ययन में राजशेखर की विशेष रुचि थी।

राजशेखर स्मृतियों के भी अध्येता थे। इन्होंने 'विद्वत्कालभजिका' तथा 'काव्यमीमांसा' में मनुस्मृति का श्लोक उद्धृत किया है।

आस्तिक तथा नास्तिक, दोनों दर्शनों पर राजशेखर का अच्छा अधिकार था। इन दर्शनों का परिचय एवं उनमें राजशेखर की विद्वत्ता, कविरहस्य के अर्थव्याप्ति नामक नवम अध्याय में दिखाई देती है। सांख्य, न्याय, योग, वैशेषिक, वेदान्त, पूर्वमीमांसा आदि आस्तिक दर्शन तथा बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि नास्तिक दर्शनों के विषय में इनका ज्ञान अत्यन्त व्यापक था। राजशेखर साम्प्रदायिक विद्याओं से भी सुपरिचित थे। शैव, पाचरात्र (वैष्णव) एवं बौद्ध मित्रातों का भी उन्हें ज्ञान था। इनकी रचनाएँ कौटिलीय अर्थशास्त्र, वात्स्यायनीय कामसूत्र एवं भारतीय नाट्यशास्त्र से प्रभावित हैं। निश्चित ही इन्होंने इन ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा।

राजशेखर ने 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटकों के कथानकों के लिये रामायण और महाभारत का अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त कालिदास की समस्त रचनाएँ-रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय एवं मालविकाग्निमित्र-उन्होंने रुचिपूर्वक पढ़ी थी। भारवि के किरा-तार्जुनीय, माघ के शिशुपालवध, कुमारदास के जानकी हरण, भट्टमेष के हयग्रीववध, मयूर के मूर्यशतक, अमरक के अमरशतक, भट्टनारायण के वेणीसहार, बाणभट्ट की कादम्बरी एवं चण्डीशतक, पुण्यदन्त के शिवमहिम्नस्तोत्र, वासयति-राज के गौडवध, त्रिविक्रमभट्ट के दमयन्तीचम्पू, जीभूतवाहन की व्यवहारमातृका, वात्स्यायन के कामसूत्र, हानसानवाहन की गाथा-मत्तलती, रत्नाकर की सुभा-पितावली, व्यासमुनि के महाभारत, वात्सीकि ऋषि की रामायण, भवभूति के मातलीमाधव एवं महावीरचरित आदि वे अनेक उत्कृष्ट कव्यमीमांसा ग्रन्थ में बिखरे पड़े हैं।

इसी प्रकार काव्यशास्त्र के विषय में उनका पांडित्य प्रगाढ़ था । समस्त प्राचीन आचार्यों का स्थान-स्थान पर उल्लेख उनके व्यापक काव्यशास्त्रीय अध्ययन का सूचक है । भरत, उद्भट, रुद्रट, सुरानन्द श्यामदेव, वाक्यतिराज, मेघा-विहङ्ग, मगल, द्रोहिणि और आनन्दवर्धन के स्पष्ट नामोल्लेख के अतिरिक्त "आचार्याः" नाम से बहुधा भामह, एव दण्डी का संकेत भी काव्यमीमांसा में उपलब्ध है । एक वाक्य में कहा जाय तो इनके अध्ययन की परिधि में सम्पूर्ण वाङ्मय आ जाता है ।

यात्राएँ

राजशेखर ने अस्तगुप्त से कान्यकुब्ज एव कान्यकुब्ज से त्रिपुरी तक तो भ्रमण किया ही था परन्तु उनके अन्य प्रदेशों की पर्यटन विषयक प्रामाणिक जानकारी अनुपलब्ध है । फिर भी स्वदेश के भूगोल का सूक्ष्म ज्ञान उनके ग्रन्थों में दिखाया पड़ा है । राजशेखर ने 'बालरामायण' में मिथिला, लका, कोकण, अयोध्या, सिंहल, कैलास प्राग्ज्योतिष, कामरूप, पाण्ड्य, इक्षिण, माहिष्मती, दशार्ण, सिंहल मयुरा, भवन्ति, कुशस्थली, कयकेशिक, कुन्तल, काची, लाट, म्रौडू, मगध, काम्बोज, सौराष्ट्र, शक, नेपाल, आन्ध्र, हैहय, विदेश, लम्पाक, वाल्व, वाल्हीक, प्रयाग, धित्तकूट तथा 'बालभारत' में मुरल, मेकल, कर्लिंग, रपठ, धकुद आदि और जनपदों का सांस्कृतिक एव प्राकृतिक महत्व वर्णित किया है । 'काव्यमीमांसा' में भौगोलिक आधार पर उनका पाँच खण्डों में विभाजन भी बतलाया है । उनके इस विशाल भौगोलिक ज्ञान तथा उसके सूक्ष्म वर्णन में हम अनुमान करने के लिये बाध्य हैं कि राजशेखर ने अवश्य ही भारत के सुदूर प्रान्तों का अर्थात् हिमालय से कन्याकुमारी एव कच्छ से ब्रह्मदेश तक का प्रवास और प्रकृति निरीक्षण किया होगा । इनके सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण एव शास्त्रों के गहन अध्ययन आँकी की उनकी विभिन्न रचनाओं में दिखाई देती है ।

रचनाएँ

आत्र राजशेखर के नाम से निम्न पाँच रचनाएँ उपलब्ध हैं—'बालरामायण' 'बालभारत', 'कर्पूरभञ्जरी', 'विद्वत्शालमजिका' और 'काव्यमीमांसा' । इनमें 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटक 'कर्पूरभञ्जरी' सटक, 'विद्वत्शालमजिका' नाटिका तथा 'काव्यमीमांसा' काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने राजशेखर की कुछ अन्य कृतियों का भी उल्लेख किया है । जैसे, चौदहवीं शती के आचार्य देगनन्द ने अपने वाङ्मा-

नुशासन में 'स्वनाभाकता यथा राजशेखरस्य हरविनासे, द्वारा इन्हे हरविलास प्रथ का न केवल वर्ता वतया है अपितु अन्य दो श्लोको द्वारा^१ यह भी प्रमाणित किया है कि यह ग्रंथ कभी अस्तित्व में था। आचार्य हेमचन्द्र के पूर्व १३ वीं शताब्दी के वृत्तिकार उज्ज्वलदत्त-त्रिन्होंने उणादि श्रुतों पर वृत्ति लिखी है^२—ने हरविलास प्रथ का तो उल्लेख किया है परन्तु राजशेखर का नहीं। हेमचन्द्राचार्य द्वारा उद्धृत प्रथ से विदित होता है कि इसका प्रचलन चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक था। संभव है किसी समयभावृत प्रदेश में पड़ा यह ग्रंथ किसी अन्वेषक मुन्शी को प्रतीक्षा कर रहा हो।

राजशेखर की सदिग्ध पदावली के कारण उनके नाम पर दो अन्य ग्रन्थों का अस्तित्व भी विवाद का विषय बन गया है। 'बालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होंने प्रथम पदप्रबन्धों का अवलोकन करने का आग्रह किया है।^३ अतः ये पदप्रबन्ध विद्वानों के लिए प्रहेलिका बन गये हैं। इसी प्रकार काव्यमीमांसा में देश विभाग के विवेचन के पश्चात् "मस्तुजिगोपत्यधिक पश्यतु मद्भुवनकोपमसी" कहकर 'भुवनकोप' नामक ग्रन्थ के स्वतंत्र या 'काव्यमीमांसा' के अध्याय विशेष होने की समस्या को हल करने के लिए छोड़ गए हैं। इन दोनों ग्रन्थों के विषय में अनेक मत उपलब्ध हैं।

डॉ० मिराशी 'पदप्रबन्ध' को कवि की प्रथम रचना मानने है।^४ इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थ 'भुवनकोप' के संबंध में डॉ० वि० वि० मिराशी^५ डॉ० एस० के०^६ एवं प्रो० रैनो^७ का कथन है कि वह स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर 'कविरत्नस्य अधिकरण' का अन्तिम अध्याय है।

१. काव्यानुशासन-हेमचन्द्र-पृ० ४३५

आशीयया हरविनासे—

मोमिरवेकाशर ब्रह्मश्रुतीना मुखपथरम् । प्रसीदतु सता स्वान्तेज्वेक त्रिपुष्पीमयम् ॥

मुजनदुर्जनस्वरूप यथा हरविलास—

इतरततो भूपन् भूरि न पतेत् पिशुन.शुन । अवदाततया निश्चन भेदो हसत सत ॥

२. उणादिसूत्रवृत्ति-उज्ज्वलदत्त, २।२८

३. विडि न. पद प्रबन्धान्, बालरामायण १।१२

४. पाठशः कर्ममिराशन बाल्युम पृ० ३६०

५. —वही—

पृ० ३६०

६. हिन्दी आफ मरहम निटरेबर-एस० के० डे०-भाग १ पृ० ४५५।

७. इन्डो-एशियन टू वर्कर्स-जरी-एन० जी० मुह, पेज ixxxvi

श्री एम० कृष्णमाचारिखर ने^१ राजशेखर को "अष्टपत्रदलकमल" ग्रन्थ का तथा प्रो० रैनो ने^२ "रत्नमंजरी नाटिका" का कर्ता बतलाया है । इन दो ग्रन्थों का ग्रन्थ उल्लेख उपलब्ध नहीं है ।

डॉ० शाम्भूरे ने अपने प्रबन्ध में 'षट् प्रबन्धों' को (छैं) छह स्वतन्त्र ग्रन्थ माना है वे बालरामायण, बालभारत, हरबिलास, कर्पूरमंजरी, विद्वशालभजिका, 'भुवनकोप' एवं 'काव्यमीमांसा', को मिलाकर राजशेखर के १३ ग्रन्थों का उल्लेख करते हैं ।

उपर्युक्त विवेचना से पता चलता है कि राजशेखर की उपलब्ध कृतियों की अपेक्षा अनुपलब्ध कृतियाँ ही अधिक हैं । किन्तु विश्वमनीय जानकारी के अभाव में हमें केवल उनका नाम निर्देश करके ही मौनधारण करना होगा ।

ग्रन्थों का रचना क्रम

उपलब्ध ग्रन्थों के रचना-क्रम के सम्बन्धी में विद्वानों में भर्त्तक्य नहीं है । नीचे कतिपय प्रमुख विद्वानों के मत प्रस्तुत हैं—

१-श्री० बी० एस० आपटे एवं डॉ० स्टेनकोनी

१ कर्पूरमंजरी २ विद्वशालभजिका ३ बालरामायण ४ बालभारत

२-डॉ० ए० बी० कीष

१ कर्पूरमंजरी २ बालरामायण ३ विद्वशालभजिका ४ बालभारत

३-श्री० सी० डी० दत्ताल

१ बालरामायण २ बालभारत ३ विद्वशालभजिका ४ कर्पूरमंजरी

४-प्रो० रैनो एवं श्री० शास्त्री

१ कर्पूरमंजरी २ विद्वशालभजिका ३ बालरामायण ४ काव्यमीमांसा

५-डॉ० मिराशी

१ बालरामायण २ बालभारत ३ कर्पूरमंजरी ४ विद्वशालभजिका

५. काव्यमीमांसा

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल साहित्य लिटरेचर-एन० कृष्णमाचारि, पेज ६२७-६२८ ।

२. द्रष्टव्य —वही—पृ० ६२७-६२८ ।

इस रचना-जग से कतिपय तथ्यों की जानकारी मिलती है। पहली बात- १८८६ में जब श्री० बी० एस० आपटे ने “राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग” की रचना की तथा १९०१ ई० में डॉ० स्टेनकोनो ने ‘कर्पूरमञ्जरी’ सद्क की टीका लिखी जब तक ‘काव्यमीमांसा’ ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया था। दूसरी बात यह है कि डॉ० मिराशी और श्री० दलाल को छोड़कर सभी विद्वान ‘बालभारत’ को कवि की अंतिम रचना मानते हैं। इसका कारण वे बालभारत का अपूर्णत्व बतलाते हैं। केवल इन्हीं दो विद्वानों ने ‘बालरामायण’ को कवि की प्रथम रचना माना है। अन्य तीन विद्वान ‘कर्पूरमञ्जरी’ को प्रथम कृति मानने के पक्ष में हैं।

राजशेखर ने ‘बालरामायण’ तथा ‘बालभारत’ में स्वयं को महामन्त्री-भुज कहकर अपने पिता का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि इन ग्रंथों के रचना-काल तक उनके पिता जीवित थे। अन्य तीन कृतियों में पिता का नाम निर्देश नहीं है। अतः ‘बालरामायण’ को प्रथम रचना मानना उचित प्रतीत होता है। ‘काव्यमीमांसा’ ग्रन्थ की सुयोजित रूपरेखा देने के पश्चात् भी उसका अपूर्ण रहना कवि की भृत्य की ओर ही संकेत करता है। अतः ‘काव्यमीमांसा’ अंतिम रचना मानना न्याय्य होगा।

राजशेखर के नाट्यग्रन्थों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि ‘बालरामायण’ ‘बालभारत’ एवं ‘कर्पूरमञ्जरी’ की रचना कान्पकुब्ज में तथा ‘विद्वत्शालभञ्जिका’ की रचना लिपुरी में हुई थी। ‘काव्यमीमांसा’ के विषय में दो मत हैं—डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार यह ग्रन्थ कन्नौज में रचा गया था। डॉ० मिराशी का कथन है कि उसकी रचना लिपुरी में हुई थी।

संस्करण

इन रचनाओं के निम्नलिखित संस्करण उपलब्ध हैं—

बालरामायण : (१) पण्डित ओल्ड सीरीज ३ के अन्तर्गत श्री० गोविन्ददेव शास्त्री द्वारा बनारस से सन् १९६६ में प्रकाशित।

• (२) श्री० जे० विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १८८४ में प्रकाशित।

(३) श्री० लक्ष्मण सूरि द्वारा कलकत्ता से सन् १७६९ में प्रकाशित।

कर्पूरमञ्जरी : (१) ‘पंडित ओल्ड सीरीज ७’ के अन्तर्गत श्री० वामनाचार्य द्वारा सन् १८७२-७३ में बनारस से प्रकाशित।

- (२) 'काव्यमाला सीरीज न० ४' के अन्तर्गत बामुदेव व्याख्या समेत श्री दुर्गाप्रसाद तथा श्री पाण्डुरंग परज द्वारा सन् १८८७ में बम्बई में प्रकाशित ।
- (३) जे० विद्यासागर द्वारा व्याख्या सहित कलकत्ता से १८७६ में प्रकाशित ।
- (४) ग्राम्भ भाषा में 'ए लकी वाइफ' शीर्षक के अन्तर्गत श्री वी० एस० इन्सलामपुरकर द्वारा बम्बई में १८६० में प्रकाशित ।
- (५) श्री स्टैनकोनो तथा श्री सी० आर० लॉनमैन द्वारा 'हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज ४' के अन्तर्गत केम्ब्रिज से १९०१ में प्रकाशित ।
- (६) श्री० मोतीलाल बनारसीदाम द्वारा इसी संस्करण का बनारस से पुनः १९६५ में प्रकाशन ।
- (७) श्री एन० जी० मुख़ा द्वारा अंग्रेजी और मराठी अनुवाद सहित १९६० में पूना में प्रकाशित ।
- (८) चौखम्बा मम्कृत सीरीज से आचार्य रामचन्द्र द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन ।

इन संस्करणों के अतिरिक्त हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि स्वर्गीय श्री० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कर्पूरमञ्जरी' का हिन्दी में अविकल अनुवाद किया है ।

विद्वत्सालभञ्जिका

- (१) श्री० बामनाथार्य द्वारा 'पंडित श्रीरुद्र सीरीज' के अन्तर्गत १८७२-७३ ई० में बनारस में प्रकाशित ।
- (२) श्री जे० विद्यासागर द्वारा सत्यव्रत व्याख्या समेत कलकत्ता से सन् १८७३ में प्रकाशित ।
- (३) इनके द्वारा सन् १८८३ में पुनः प्रकाशित ।
- (४) श्री वी० आर० आरने द्वारा (नारायण दीक्षित की व्याख्या समेत) पूना से सन् १८८६ में प्रकाशित ।
- (५) ग्राम्भ भाषा में प्रथम अनुदिन, जे० ए० ग्रे० एन० डे लुई एच० ग्रे (Louis H. Gray) द्वारा सन् १९०६ में प्रकाशित ।

काव्यमीमांसा

- (१) 'गायदवाड ओरियण्टल सीरीज १' के अन्तर्गत श्री सी० डी० दत्तल एव श्री० आर० ए० माम्बी द्वारा बडौदा में सन् १९१६ में प्रकाशित ।

- (२) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद से सन् १९५४ ई० में श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत द्वारा प्रकाशित ।
- (३) 'हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला १४' के अन्तर्गत वाराणसी से सन् १९५८ में मधुसूदन मिश्र द्वारा प्रकाशित ।
- (४) डॉ० गंगासागर राय द्वारा संपादित ।
- (५) डॉ० गंगानाथ झा ने कवि शिक्षा प्रणाली विषय पर व्याख्यान दिए थे । उन व्याख्यानों का सङ्कलन 'कविरहस्य' रूप में हिन्दुस्तानी भाषादमी ने सन् १९२८-१९२९ में प्रकाशित किया था । यह 'कविरहस्य' पुस्तक बाब्यमीमासा के कविरहस्य का ही अनुवाद है ।

बातभारत

'बालभारत' का स्वतन्त्र संस्करण उपलब्ध नहीं है । 'काव्यमासा सौरीज ४' के अन्तर्गत कर्पूरमजरी के संस्करण से सन्तान इस ग्रंथ का एकमेव संस्करण उपलब्ध है ।

राजशेखर की रचनाओं के इतने अधिक संस्करण उनकी लोकप्रियता के प्रतीक हैं ।

सम्मान-प्रतिष्ठा

राजशेखर के समकालीन कवि मित्र कृष्णशंकर वर्मा की राजशेखर के विषय में यह प्रशस्ति प्रसिद्ध है—

पातु श्रोत्ररमायन रचयितु वाच सतासम्पता
व्युत्पत्ति परमाभवाप्तुमर्वाधि नव्यु रसस्रोतस ।
भोक्तुं स्वादुफल च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुक
तद् भ्रातृ श्रुणु राजशेखरकवे तुल्यो मुधास्यन्दिनोः ॥

भर्मात् यदि कान्ते को रसायनपान कराना चाहते हो, सञ्जन-सम्पन्न बचनों की रचना करने के इच्छुक हो, विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने की साधना रखते हो, रस-स्रोत की पराकाष्ठा चाहते हो, जीवन-रूपी वृक्ष के मधुर फल का आस्वादन करना चाहते हो तो हे भाई, राजशेखर की भ्रमून्वर्षिणी सूक्तियों को श्रुतों ।'

बार-बार उनकी काव्यमाधुरी का पान करने पर भी को रमिकों तृप्ति नहीं होती थी। उनके दूसरे मित्र आपराजित ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

बालकवि, कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः ।

इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमाहूढः ।

सोऽस्य कवि श्रीराजशेखर त्रिभुवनमपि धवलयन्ति

हरिणाकं प्रति पङ्क्तिं सिद्धया निष्कलका गुणा यस्य ॥

अर्थात् बालकवि, कविशिरोमणि, निर्भयराज के उपाध्याय आदि का गौरव इन्होंने पाया है। इनके निष्कलक गुणों में त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है। मृगाक-वधाकार आपराजित के इन वचनों से प्रमाणित होता है कि राजशेखर अपने युग के मूर्धन्य कवि थे। जिनकी कीर्ति उनके समझ ही दिग्दिगन्त में फैल गई थी। अपने जीवन-काल में इतनी अधिक कीर्ति शायद ही किसी कवि को मिली हो। उनकी मृत्यु के पश्चात् साहित्यकारों ने उन्हें स्तुतिकुमुभाञ्जलि अर्पित की है, वह पठनीय है। सोड्डल का कथन है—

यायावर प्राज्ञवरों गुणजैराजसित सूरिसभाज वर्ये ।

नृत्यरमुदार भणिने रमस्वा नटीव यस्पोद्धरमा पदश्री ॥

(अर्थात् रमणीय नटी के नृत्य के समान जिमकी कविता में पदों की शोभा नृत्य करती हुई दिखाई देती है, ऐसे राजशेखर गुणज्ञ सुधीजनों द्वारा प्रशंसित है) तिलक-मञ्जरीरार धनपान का वचन है कि मुनियों की वृत्ति धारण करने वाले यायावर कवि की कविता समाधिगुणशालिनी तथा प्रसादगुण से परिपक्व होती है—

समाधि-गुण-शालिन्य प्रसन्नपरिपक्विमाः ।

यायावर-कवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः ।

राजशेखर ने साहित्यकारों में एवं विद्वत्समाज में जिनकी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उमने वही अधिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान उन्हें राजदरबार में प्राप्त था। राज-शेखर मर्वा शर्मा के अद्भुत पराक्रमों एवं प्रख्यात सम्राट गुर्जर प्रतिहार महेंद्रपाल के राजगुरु थे। यह इतिना भव्य सम्मान था। इस प्रकार इस उभयमुखी प्रतिभा से सम्पन्न वचनार ने द्विविध-साहित्यिक तथा राजकीय-गौरव प्राप्त किया था।

मृत्यु

क्षेमन्द ने राजशेखर के विषय में कहा है कि—

कर्णाटी-दशाक्षित मितमहाराष्ट्री-चटाश्राहतः
 प्रौढान्धोस्तनपीडित प्रणयिनी भूमय वित्तागितः ।
 लाटीबाहुविवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जित
 सोऽय सम्प्रति राजशेखर-कविर्वाराणसी वाञ्छति ॥

(अर्थात् पहले जो कर्नाटक देश की वनिताओं के दन्तकृतों से विह्वित हुआ, फिर महाराष्ट्र की गोरी ललनाओं के कटाक्षनिक्षेप का शिकार हुआ, बाद में भान्प्र की प्रौढ़ मुन्दरियों के स्तनों के भार से दब-सा गया, फिर प्रेयसी की कुटिल भूकुटि से भयभीत हुआ, बाद में लाट देश की कामिनियों के बाहुपाश में घाबड़ा हुआ, और मलय-नितम्बिनी की तर्जनी से तर्जित भी हुआ, वही कविशिरोमणि राजशेखर आज धाराणसी जाने की स्फुहा कर रहा है' ।

क्षेमेन्द्र के इस कथन में सत्यता या प्रागाण्यकता का प्रभाव होने के कारण यह विश्वसनीय नहीं है । राजशेखर ने वत्सयुक्त को धरने जन्म से पुनीत किया था, किन्तु वह क्षेत्त जन्मस्थमी तक ही महत्वपूर्ण रहा । उनकी कर्म भूमि कान्यकुब्ज थी । त्रिपुरी पर भी उनका प्रभाव था । महेन्द्रपाल नरेश के आश्रय में इस तक्षण कवि ने पहले बालरामायण की रचना की और तत्पश्चात् कर्पूरमञ्जरी की । जब वे महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी पुत्र महीपाल की छत्रच्छाया में बालभारत को पूर्ण कर रहे थे, उसी समय उन पर दुर्दिन के बादल मण्डराने लगे । पिता की मृत्यु एवं आश्रयदाता के जगल-जगल में भटकने में कवि पर दौड़री विपत्ति घा पड़ी और वे इसी दशा में कन्नौज से त्रिपुरी पहुँचे । वहाँ 'विद्वत्शालभञ्जिका' की रचना की । पुत्र महीपाल के स्थिर हो जाने पर कन्नौज लौटे । तब तक वे बुढ़ा-वस्था में पदार्पण कर चुके थे और अपने प्रौढ़ पारिदय्य एवं जीवन की सम्पूर्ण-साहित्यिक निधि को काव्यमीमांसा में एकत्र करना चाहते थे किन्तु अराजर्जरित देह उनकी साधना में बाधक हुई । वे काव्यमीमांसा ग्रन्थ को प्रारंभ ही कर पाये कि उनकी मृत्यु हो गई । इस समय वे नब्बे वर्ष के थे । भारत तथा भारती दोनों ही इस महापुरुष के निधन से होने वाली क्षति को आज तक पूर्ण नहीं कर पाये ।

सामयिक परिस्थितियाँ

समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार की रचनाओं में यत्न-तत्न दृष्टिगत होता है । साहित्य पुण्य का निर्माण करता है, और पुण्य साहित्य का । साहित्यिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थितियों से उद्भूत प्रेरणा साहित्यकार को

प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में, सामयिक साहित्य, देश, धर्म, समाज और जीवन ही साहित्य-निर्माता की पृष्ठभूमि होते हैं।

राजशेखर नवम शताब्दी के साहित्यकारों की कोटि में अग्रणी कहे जा सकते हैं। वे साहित्य-नायक थे। जनार्चि के अनुकूल साहित्यिक पृष्ठभूमि तैयार करना ही उनका परम लक्ष्य था। अतः साहित्य की नई दिशा की ओर मोड़ने का इन्होंने प्रशमनीय प्रयास किया। शताब्दियों से चली आने वाली साहित्यशास्त्रीय परम्परा को एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख करने में उनकी वैखरी प्रभावोत्पादक मिश्र हुई। अतः राजशेखर कालीन स्थितियों का अवलोकन, उनकी रचनाओं के अनुशीलन के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

नाटककार राजशेखर के पूर्व विद्यमान नाट्य-परम्परा का प्रभाव उनकी नाट्य-कृतियों में स्पष्ट झलकता है। अतः इस पूर्ववर्ती नाट्यपरम्परा का विहंगावलोकन यहाँ आवश्यक होगा।

नाट्य-परम्परा

सम्पूट साहित्य में नाटकों की सजीव एवं मूर्त परम्परा का प्रवर्तन भ्राम के साथ होता है। भासकृत नाटकों की मध्यांतरह है। ये नाटक हैं—दूतवाक्य, कर्णभार, दूत-पटोत्कच, उरभग, मध्यमव्यायोग, पचरात्र, अभिषेक, बालचरित, भविभारक, प्रतिभा, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता और चारुदत्त। इन रचनाओं का आधार महाभारत, रामायण, उद्दयन कथा एवं काल्पनिक है। दूतवाक्य, कर्ण-भार, दूतपटोत्कच, उरभग, मध्यमव्यायोग, पचरात्र और बालचरित महाभारताभिन है। प्रतिभा और अभिषेक का उपजीव्य रामायण है, और भविभारक एवं चारुदत्त के कथानक काल्पनिक है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं स्वप्नवासवदत्त उद्दयन की जीवन-घटना से सम्बन्धित है।

नाटकों की निर्माण-परम्परा में भ्राम के बाद बालिदास का जन्म आता है। नाटकों के क्षेत्र में इस महाकवि ने (१) मालाविकाग्निमित्र (२) विजयवंशीय एवं (३) अभिज्ञान शाकुन्तल—इन तीन कृतियों का प्रणयन किया है। मालाविकाग्निमित्र की गणना नाटिका-भेद में की जाती है, विजयवंशीय को वोटक एवं अभिज्ञान शाकुन्तल की नाटक में।

बालिदास के बाद अश्वघोष का नाम उल्लेखनीय है। अश्वघोष के नाटक का नाम 'शारिपुत्र प्रवर्णन' है। अश्वघोष के परवान् शूद्रक उल्लेखनीय हैं। इन्होंने धुष्टराट्टि की रचना की थी। राखनीति एवं सामाजिक दृष्टि से यह

राजशेखर को उत्तराधिवार के रूप में माम से मुरारि तक की नाट्य परम्परा उपलब्ध थी। इन सम्पूर्ण कृतियों को हम कथानक की दृष्टि से तीन भागों में बाँट सकते हैं—(१) रामायण पर आश्रित-प्रतिमा, अभिषेक, उत्तररामचरित, महावीरचरित एवं अनर्घराघवं (२) महाभारत पर आश्रित—दशवाक्य, कर्ण-भार, दूतपटोत्कच, उरुभंग, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र, वानचरित एवं श्रेणीसंहार, (३) कल्पित या उत्पाद्य—मालविकाग्निमित्र, अविमारक, चाक्षुतः रत्नावली, प्रियदर्शिका, मान्तीमाधव आदि। कल्पित कथावस्तु का मुख्य उद्देश्य रामायण और महाभारताश्रित नाटकों से भिन्न था। स्वाभाविक है कि उत्पाद्य कथावस्तु पर आश्रित नाट्यकृतियाँ जनमत के अधिक समीप रही होंगी। पिसौपिटी कथावस्तु में लाख प्रयत्न करने पर भी नये प्राण उठाना कठिन था। "जनसामर्थ्य के लिए इन कथाओं में तब तक कोई विशेष रुचि नहीं हो सकती थी, जब तक कि उनमें कोई विशेष कलाप्रयोग न किया गया हो। भवभूति को इसी कारण, नवीनरस मार्ग का वर्णन करना पड़ा। दूसरी ओर कल्पित कथाओं छोटे-छोटे राजपरिवारों के भ्रन्तरण स्नेह संबंधों का उद्घाटन करती, और प्रकारान्तर में लोगों की अपरि-तुष्ट शृंगार भावना की पुष्टि में सहायक होती थी। इनमें दर्शक की उत्सुकता बनी रहती थी, क्योंकि वे उनके कथानक में पूर्वपरिचित न होने थे। अपने दर्शकों के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए, उत्पाद्य वस्तु के नाटककारों ने अपनी कृतियों में प्राकृत को अधिक महत्व दिया था।

राजशेखर ने समर्थ कलाकार की भाँति अपने पूर्व से बनी आती हुई चारों शैलियों का वर्णन किया और अपनी प्रतिभा के सस्पर्श से उनमें नवीन प्राणों का संचरण किया। उन्होंने रामायणीय कथानक पर नवीन प्रयोग करते हुए, बाल-रामायण लिखा, और महाभारत के आधार पर बालभारत की रचना की। शिष्ट, अधीत, मध्यवर्ग के लिए विद्वज्ज्ञानभञ्जिका का निर्माण किया, तो सामान्य समाज को कर्पूरमन्त्री के नावन्ध कौशल से चमत्कृत करने का प्रयास किया। राजशेखर का वैशिष्ट्य उनकी समग्र ग्रहणशीलता में है। इन कृतियों के सम्बन्ध में उनके नवीन कला-प्रयोगों की चर्चा हम विशेष प्रसंग पर करेंगे।

शास्त्र-परम्परा

जिस प्रकार राजशेखर को उत्तराधिवार में माम से मुरारि तक की नाट्य-परम्परा प्राप्त थी उसी प्रकार उन्हें आपायें भामह से आपायें आनन्दवर्धन तक शास्त्रशास्त्र की विविध ग्रन्थों की पृष्ठभूमि के रूप में उपलब्ध थी। उन्होंने

काव्यमीमामा ग्रन्थ में प्रायः सभी पूर्ववर्ती आचार्यों—(भरत, वामन, उद्भट, लोल्लट, धानन्दवर्धन) के मतों का उल्लेख किया है। साथ ही उन पूर्वगामी आचार्यों की नामावली भी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है, जिनसे पूर्ववर्ती आचार्य नितान्त अपरिचित थे। इन पूर्वगामी आचार्यों में घमर^१, उक्तिमम^२, उतघट^३, उपमन्यु^४, भवर्ष^५, प्रचेतायन^६, भगल^७, रूप^८, श्यामदेव^९, सुरानन्द^{१०}, और मूर^{११} केवल नाम शेष हैं। इनकी कृतियों अथवा इनका स्वयं का परिचय 'राज-शेखर' के शब्दों में ही मिलता है।

काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य मेघाविहट्ट का उल्लेख आलंकारिक के रूप में मिलता है। स्वयं भामह^{१२} ने अपने काव्यलंकार में मेघाविहट्ट को दो स्थलों पर उद्धृत किया है। रट्ट के काव्यालंकार की टीका लिखने वाले नमि-साधु ने^{१३} इनके अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्देश किया है। अतः इनका अस्तित्व निर्विवाद है। राजशेखर इनकी मौलिक प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस प्रतिभा के कारण ही जन्म से अन्धे होने पर भी मेघाविहट्ट, कुमारदास आदि को समस्त विषय प्रत्यक्षवत् भासित होते थे।

“प्रतिभावत पुनरपश्यतोऽपिप्रत्यक्ष इव । यतो मेघाविहट्ट कुमारदासादयो जायन्त्या कवयः श्रूयन्ते ।”^{१४} आचार्य दण्डी ने इनका उल्लेख मेघावी नाम से किया है।

कालक्रमानुसार मेघावी के पश्चात् आचार्य भामह का स्थान है। काव्यशास्त्र के ये आद्य आलंकारिक हैं। इनकी अलंकारशास्त्र में सर्वप्रथम एकमात्र कृति काव्यालंकार है। इन्होंने इस ग्रन्थ में काव्य-शरीर (काव्य के प्रयोजन, लक्षण आदि) अलंकार, दोष, न्यायनिर्णय, शब्दशुद्धि आदि का विवेचन किया है। राजशेखर ने इनके सिद्धांतों का उल्लेख 'आचार्यः' नाम से किया है।

१. काव्यमीमासा अध्याय १० पृ० ५१५, (२), (३), (४) वही घ १ पृ० १, (५) वही अध्याय १० पृ० ५५, (६) वही अध्याय १ पृ० १ (७) वही अध्याय ४ पृ० ११, १४ अध्याय ५ पृष्ठ १६, २०, (८) वही अध्याय १० पृ० ५५, (९) वही अध्याय ४ पृ० ११, १३, अध्याय ५ पृ० १७ (१०) वही अध्याय १३ पृ० ७८, (११) वही घ. १३ पृ० ७८

१२. काव्यालंकार-भामह. २-४०, २-८८

१३. काव्यालंकार-रट्ट १-२

१४. काव्यमीमासा. अध्याय ४ पृ० ११-१२

भागह के पश्चान् आचार्य दण्डी का नाम आता है। इन्होंने काव्य तथा शास्त्र दोनों ही क्षेत्रों की श्री-वृद्धि की। अलंकार-शास्त्र को उनकी अमूल्य देन है—काव्यादर्श। तीन परिच्छेदों में विभक्त इस ग्रन्थ में काव्यलक्षण, काव्यभेद, गद्य के दो भेद, आभ्यायिका, कथा, रीति, गुण तथा कवि के आवश्यक गुण, अलंकार, अलंकारों की परिभाषायें, उनके उदाहरण, यमक, चित्रबन्ध, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र और वर्ण-नियम आदि सोलह प्रकार की प्रहेलिकाओं और दस प्रकार के काव्य-दोषों का विशद विवेचन किया है। काल की दृष्टि में दण्डी के उपरान्त उद्भट और वामन का स्थान है। ये दोनों प्रायः समकालीन थे तथा काश्मीर-नरेश जयापीड के सभापण्डित थे। राजशेखर ने उद्भट और वामन के विचार भी द्भटा^१ एवं वामनीया^२ नाम से व्यक्त किए हैं। आचार्य उद्भट के ग्रन्थ का नाम 'अलंकारसारसंग्रह' है। नामानुसार इस ग्रन्थ का प्रमुख विवेच्य विषय अलंकार है। रीति को काव्य की आत्मा वर्णित करने के अतिरिक्त इन्होंने काव्य के प्रयोजन, काव्य के अधिकारी, रीति के प्रकार, काव्य के प्रकार, पद-वाक्य, वाक्यांशों के दोष, अलंकार, गुण, गुणों के दस भेद, काव्यमय, सद्भिन्ध शब्दविवेचन तथा शब्दशुद्धि का विवेचन किया है।

आचार्य हरट वाच्यालंकार के कारण अलंकार-शेख में प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रन्थ में काव्य प्रयोजन, भाषा, रीति, रस तथा वृत्ति का वर्णन होने पर भी प्रमुखता अलंकारों के विवेचन को दी गयी है। इन्होंने अलंकारों का प्रथमतः वैज्ञानिक विभाजन किया है। राजशेखर ने वक्रांकि की शब्दालंकारता के विवेचन के अवसर पर इनका उल्लेख किया है।

हरट के पश्चान् आनन्दवर्धन का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ये ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इनकी एकमात्र कृति 'ध्वन्यालोक' ध्वनि विरोधी मनो, ध्वनि के भेद-प्रभेदों एवं उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालती है। राजशेखर ने कही इनका निर्देश 'कश्चित्' शब्द द्वारा और वही 'आनन्द'^३ नाम से किया है।

आनन्दवर्धन के पश्चान् काव्यशेख में राजशेखर का पदार्पण हुआ। हम देखने हैं कि काव्य के शास्त्रीय क्षेत्र में भी नाट्यक्षेत्र के समान राजशेखर के सम्मुख प्रचुर

१. काव्यमीमांसा : अध्याय ६ पृ० २२, अध्याय ६ पृ० ४४

२. वही-अध्याय ४ पृ०, १४,

३. वही-अध्याय ५ पृ० २०

सामग्री विद्यमान थी। उन्होंने उपस्थित सामग्री का यथावत् शोधपत्र तैयार कर अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा में उसे और विकसित एवं समृद्ध किया। न केवल विचारों और मिथ्याता की दृष्टि से, अपितु निरूपण-शैली की दृष्टि से भी उन्होंने साहित्य-समीक्षा को एक नई दिशा प्रदान की और मौलिक मर्म के साथ-साथ आचार्य के रूप में भी प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित हुए। उनकी काव्यमीमांसा के विवेचन के समय इन विषय पर विशेष प्रकाश डाला जायगा। यहाँ उनके नाट्य-ग्रन्थों एवं काव्यशास्त्र की पृष्ठभूमि का एक चित्र देना आवश्यक है, जिसमें उनकी कृतियों की समीक्षा करने समय उनके सम्मुख प्रस्तुत साहित्य सामग्री के परिप्रेक्ष्य में हम उनके उचित मूल्यांकन में गमर्ष हो सकें।

संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा और उसके आश्रयदाता

संस्कृत नाट्य-परम्परा एवं काव्य-परम्परा का अनुशीलन तत्कालीन संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा पर प्रकाश डालने में महायुक्त सिद्ध होता है। राजशेखर से पूर्व-भास में मुरारि पर्यन्त एवं भास से आनन्दवर्धन तक (नाट्य एवं काव्य) बाह्यमय की गतिशीलता प्रदान करने वाले दो प्रमुख वर्ग थे—नवि और आचार्य, साहित्य-कार एवं साहित्य सेवी। यहाँ साहित्य सेवी से तात्पर्य समाज के साहित्यानुयायी राजपणों में है। भारत में नवियों एवं विद्वानों की सब प्रकार की सहायता एवं सम्मान प्रदान करने की परम्परा राजपरिवारों के इतिहास में प्रारम्भ में ही पायी जाती है। चालुक्य वंश के विष्णुवर्धन, श्रीधरमेन एवं भातगुप्त ने प्रमग भारवि, भट्टि एवं भर्तृहरि जैसे महाकवियों को प्रश्रय दिया था। स्वामीश्वर के वर्धन कुल की छत्रच्छाया में याज्ञभट्ट, भयूर, मार्गव दिवाकर जैसे प्रथिनपदरक साहित्य-कार पल्लवित हुए। वज्रौग का वर्धन वंश भवभूति एवं बाकानिराज के संरक्षण का श्रेयोभागी रहा। काश्मीर के उत्तम राजघराने के आश्रय ने शिवस्वामी, रत्नाकर, मुक्ताकण और आनन्दवर्धन जैसे कलाकारों की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ किया। इसी देश के जवापोड नृपति ने वामन, उद्भट जैसे प्राचार्यों को अपना संरक्षण प्रदान किया। राजकुलों के संरक्षण में प्रतिभाशाली व्यक्ति पनपने रहे। राजशेखर ने इस सत्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

“राज्याश्रयेण च गता, नवय, प्रगिद्धिम्।”

ये साहित्यकार अपनी कृतियों के साथ-साथ अपने आश्रयदाता नरेशों की भी धमक कर गए। इसकी पुष्टि ‘राजशेखर नाटिका नवय सद्गुण सहाय’ इस वाक्य से हो जाती है। राजा एवं साहित्यकार दोनों के मिश्रित संरक्षण की जो प्रतिष्ठा प्रदान की, उसकी प्रतीति तत्कालीन शिल्पकला से हो जाती है। राजशेखर के युग में

चन्द्रायुध के समय तीन तुल्यबल सम्राट्त्वशो की सोनुष दृष्टि कन्नौज नगरी पर जा टिकी। ये अदम्य साहसी शामक थे—बंगाल के पाल, राक्षसना के गुर्जर-प्रतिहार, एवं मालखेड के राष्ट्रकूट। इन दुर्बल शामको ने छुटकारा पाते न पाते कन्नौज को इन तीन दिग्गजों की युद्धदृष्टि का शत्रु बनना पड़ा। आठवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में तथा नवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में इस नगरी में युद्ध की रणभेरी रह रहकर बजती रही। अन्तराल देवर पाल प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट एक दूसरे से सलवारों के सहारे मिलते रहे। पाला के हाथ में तलवार छूटती नहीं कि पुनः उगे शाम कर रणभूमि में उतर पड़ता।

धी० एच० रायचौधरी, कालिचर दत्त एवं आर० सी० मजूमदार ने सत्कामीन उत्तर भारत के राजनीतिक केन्द्र कन्नौज का वर्णन इस प्रकार किया है—

‘पश्चिम एशिया की सैनिक जातियों के लिए जिस प्रकार बैशमॉज या स्पूटीनिक बवंडरो के लिए जिस प्रकार रोम या पूर्वी और दक्षिणी यूरोप के लिए मध्ययुग में जिस प्रकार वाइजेंटियन या उसी प्रकार आठवीं और नवीं शताब्दियों के नवीरित राजवंशों के लिए ‘महोदय’ अर्थात् कन्नौज था।’

भारत के इस त्रिषोण संपर्ग में भाग लेने वाले नवींदिन राजवंशों, पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट—का परिचय निम्न तालिका में स्पष्ट हो जायगा।

पाल	प्रतिहार	राष्ट्रकूट
धर्मपाल (७७० ई. से ८१० ई.)	कलिराज (७८० ई. से ८०४ ई.)	ध्रुव (७७६ ई. से ७८३ ई.)
देवपाल (८१० से ८४० ई.)	नागभट्ट द्वितीय (८०५ ई. से ८३३ ई.)	शोबिन्द द्वितीय (७८४ ई. से ८१३ ई.)
विजयपाल (८४० ई. से ८६४ ई.)	रामभट्ट (८३३ ई. से ८३९ ई.)	धर्मोपरार्थ (८१४ ई. से ८३० ई.)
मारायणपाल (८४४ ई. से ८०८ ई.)	मिहिरभोज (८३९ ई. से ८८४ ई.)	हरण द्वितीय (८३८ ई. से ८११ ई.)
राजपाल द्वितीय (८०८ ई. से ८२४ ई.)	महेन्द्रपाल (८८४ ई. से ८१० ई.)	इन्द्र द्वितीय (८१४ ई. से ८२२ ई.)
गोपाल द्वितीय (८२४ ई. से ८४० ई.)	भोज द्वितीय (८१० ई. से ८१३ ई.)	धर्मोपरार्थ द्वितीय (८२२ ई. से ८२३ ई.)
विजयपाल (८४० ई. से ८७६ ई.)	मरीचा (८१४ ई. से ८४४ ई.)	शोबिन्द तृतीय (८२३ ई. से ८३९ ई.)

१. प्राचीन भारत: (भारत का प्रागु इतिहास) भाग-१

हैमचन्द्र राय चौधरी, कलिचर दत्त, आर० सी० मजूमदार—पृ० १२४

ग्रामुधवशीय इन्द्रायुध को कन्नौज के आसन से हटाना और चक्रायुध को उस स्थान पर प्रतिष्ठित करना धर्मपाल के लिये चिर अभिशाप बन गया। ८१५ ई में गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभट्ट एव राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय की सेनाओं द्वारा उसे करारी हार ही न मिली, प्रत्युत लोहा सेते लेते घराशायी होना पड़ा। नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर गुर्जर प्रतिहारों के प्रभुत्व की स्थापना की। प्रतिस्पर्धी राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय से परास्त होने पर भी उसने कन्नौज को अपने हाथों से जाने नहीं दिया। नागभट्ट के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी रामभद्र अयोग्य शासक सिद्ध हुआ, अतः धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल ने उसे सहज ही उखाड़ दिया। देवपाल उत्तरी भारत के बड़े भाग का निष्कण्ठक स्वामी बन गया। देवपाल की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी विग्रहपाल की शान्तिवादी नीति से प्रतिहार नरेश भोज (रामभद्र का उत्तराधिकारी) को स्वर्णावसर प्राप्त हुआ। उसने देवपाल की गद्दी पर बैठे हुए विग्रहपाल को बुरी तरह पराजित किया। उसने दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय को नर्मदा तट पर विजित कर मालव भूमि पर भी अपना कब्जा कर लिया। इस प्रकार दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों पर विजय पा जाने के पश्चात् भोज को पञ्जाब, अवध और अन्य प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में कोई कठिनाई न हुई। भोज ने कश्मीर, सिन्ध, बिहार, बंगाल के पाल राज्य और जबलपुर प्रदेश के कलचुरि राज्य को छोड़कर सारे उत्तरी भारत को प्रतिहार साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। यह महान् सम्राट् इस विस्तृत क्षेत्र पर कन्नौज से निष्कण्ठक राज्य करता रहा। ८८५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने बेटे और उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल के लिये एक सुमगठित साम्राज्य छोड़ गया। इसी काल में राजशेखर कन्नौज आये।

राजशेखर कालीन राजनीतिक स्थिति

त्रिकोण सपर्य का अवसान प्रतिहार साम्राज्य की विजय एव महेन्द्रपाल के राज्याभिषेक में हुआ। इस शासक के काल में प्रतिहार साम्राज्य अपनी सफलता एव समृद्धि की चरम सीमा पर था। कान्यकुब्ज की हर्षकालीन गरिमा पुनः लौट आई। महेन्द्रपाल केवल तलवार का ही धनी न था, अपितु साहित्यकारों का प्राथम्यदाता भी था। उन्ना,^१ दिघवा-दुबोनी^२ और रामगढ़^३ के भिन्न भिन्न

१. एपिग्राफिका इण्डिका—भाग ९, पृष्ठ ६, टिप्पणी।

२. इण्डियन एण्टिक्वेरी—भाग १४, पृष्ठ ११२।

३. पारियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, कनिथम—भाग ३, पृ० १२३।

अभिलेखों में उसके लिये महेन्द्रायुध, महेन्द्रपालदेव, महेन्द्रपाल आदि उपाधियों का प्रयोग किया गया है। मगध और उत्तर बंगाल पर विजय प्राप्त कर उसने पिता मिहिरभोज की साम्राज्यसीमा और भी विस्तृत कर दी। महेन्द्रपाल के दो अभिलेख ऊना (भालवा) में प्राप्त हुए हैं। इनमें क्रमशः चालुक्य नरेश बलवर्मन् और उसके पुत्र भवनिवर्मन् द्वितीय द्वारा एक सूर्य मंदिर को दिये गये दो गावों के दान का उल्लेख है। ये दोनों सामन्त इन अभिलेखों में परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुध अथवा महेन्द्रपाल के सामन्त कहे गये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि (काटियावाड़) मौर्य भी महेन्द्रपाल के आधीन था। पेहवा, दिघवा, दुबौली एवं मियदौली अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि उसका साम्राज्य पश्चिम में पूर्वी पंजाब, पूर्व में पश्चिमी मगध, उत्तर में नेपाल की तराई तथा दक्षिण में खालियर प्रदेश तक विस्तृत था। राजमेश्वर के प्रयोगों में इस क्षत्री, साहित्यसेवी, आश्रयदाता के लिये निर्भयराज, निर्भय नरेश, रघु-कुलनितक एवं रघुबुल चूडामणि, विरदों का प्रयोग उपलब्ध होता है। सियदौली अभिलेख में महेन्द्रपाल की अन्तिम तिथि ६०७ ई० मिलती है। अतः सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ६१० ई० में महेन्द्रपाल की मृत्यु हो गई होगी।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के पश्चात् सम्भवतः उनके दो पुत्रों, भोज द्वितीय और महीपाल प्रथम में युद्ध छिड़ गया। महेन्द्रपाल की अनेक रानियाँ थी। उनमें से एक के पुत्र का नाम भोज और दूसरी के पुत्र का नाम महीपाल था। युद्ध के आरम्भ में भोज की विजय हुई। भोज की इस जीत में उसके एक सामन्त चेदि नरेश कोक्कल प्रथम ने बड़ी सहायता की थी। उधर चन्देल नरेश हर्षदेव ने महीपाल का पक्ष लिया। इस समय सामन्त कोक्कल की मृत्यु हो चुकी थी। अतः महीपाल को पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया। इस युद्ध से छुटकारा पाते ही उसे राष्ट्रकूटों का मुकाबला करना पड़ा। सम्भात^१ ताम्रपत्र के अनुसार राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय और महीपाल के युद्ध में महीपाल को पराजय हुई, किन्तु इन्द्र तृतीय के वापस चले जाने के पश्चात् महीपाल ने कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लिया तथा बश की खोई हुई गरिमा पुनः प्राप्त की। भरव यात्री भनमसूदी ने प्रतीहार-राष्ट्रकूट-अधर्ष का उल्लेख किया है। उसने बन्नौर के प्रतिहार राजा को बँडर तथा राष्ट्रकूटों को बहलर कहा है। उसका कथन है कि बहलर ने रक्षा करने के लिये बँडर में दक्षिण में एक मंदा स्थापित कर रखी थी। भरव यात्री मुनेमान का वर्णन भी उल्लेखनीय है। वह लिखता है कि "जुय के पास

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चार दिशाओं में चार सेनाएँ सदा तैयार रहती थीं। पश्चिम की सेना विशेष सुमज्जित थी। इसका कारण यह था कि उस राज्य की पश्चिमी सीमा अरबों के सुल्तान राज्य में मिली हुई थी। अरब बाने हिन्द पर आक्रमण करने के लिये सदा सुमज्जित रहते थे। दक्षिण की सेना (बलूहारा) राष्ट्रकूट का सामना करने के लिये तत्पर थी, क्योंकि वह अरबों का मित्र और सहायक था। पूर्व और उत्तर की सेनाओं का अधिक काम नहीं था। ये सेनाएँ इधर उधर भी जाती थीं। कन्नौज की प्रधान सेना घुड़सवारों की थी, तथा सेना में विशेष रूप में मारवाड़ी क्षत्रिय थे।”

६४५ ई० के लगभग महीपाल की मृत्यु हो गई। महीपाल एवं भोज द्वितीय के आन्तरिक कलह में भोज की सहायता देने वाले चेदिवसज कोकाल के १८ घटोत्तर पुत्र थे। कोकाल की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र शरुरगण ने पिता का अधिकार प्राप्त किया। उसके उपरान्त उनके बड़े पुत्र बानहर्ष ने अल्पकाल तक शासन किया। बानहर्ष के पश्चात् उनका छोटा भाई युवराज प्रथम कलचुरि सत्ता का स्वामी बना। यह अपने बाल्य का शक्तिशाली शासक था। युवराज ने अपनी पुत्री कन्दुकदेवी का विवाह राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष तृतीय के साथ कर राष्ट्रकूटों से रक्त-संवध स्थापित किया। इस दमति से कृष्ण तृतीय का जन्म हुआ यह ६४६ ई० के लगभग राष्ट्रकूट सिंहासन पर आसीन था। हमने अपने पिता की नीति का त्याग कर कलचुरि वंश से शत्रुता कर ली, तथा अपने नाना युवराज देव प्रथम पर आक्रमण किया। बिलहरी अभिलेख से पता चलता है कि युवराज ने (कर्नाटो) राष्ट्रकूटों को पराजित किया था। राजशेखर इस नरेश के दरबार में भी रहे थे।

राजशेखर के समय की राजनीतिक स्थिति का यह पर्यवेक्षण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि राजशेखर के उदय के पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति उदात्त हो गई थी। उत्तर में अरबों का जोर था, उन्हीं प्रकार पाल, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट अपनी शक्ति की प्रतिष्ठा के लिये आन्तरिक शक्ति की नींव खोखली कर रहे थे। लगभग डेढ़ शताब्दी तक यह आन्तरिक संघर्ष विकराल रूप धारण किये रहा, किन्तु संघर्ष की मुख्य परिणति गुर्जर प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की प्रभुता में समाहित हो गई। राजशेखर महेन्द्रपाल के राजगुरु थे। उन्होंने महेन्द्रपाल के शक्तिशाली पिता मिहिरभोज के ऐश्वर्य, महेन्द्रपाल की सार्वभौमता एवं महीपाल के सामयिक पतन की अनुमति एक साथ की। इस राजनीतिक उत्थान पतन

ने उनके जीवन पर पर्याप्त प्रभाव डाला जिसकी अभिव्यक्ति अपूर्ण बातभारत एवं बालरामायण के प्रसंगों में हुई है ।

राजसोत्तर युगीन धार्मिक स्थिति : यह युग हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति का काल था । सम्प्रदायों में वैष्णव, शैव, शाक्त एवं सूर्य सम्प्रदाय प्रमुख थे ।

वैष्णव सम्प्रदाय : इस समय विष्णु की उपासना अनेक नामों—गहकासनदेव, चक्रस्वामिदेव, व्रंशोत्थमोहन, माधव, बामन, स्वामिदेव आदि—से की जाती थी । समाज में उनके अनेक अवतारों की भक्तीभाँति प्रलिप्ता हो चुकी थी । मदिरो और मूर्तियों की स्थापना पुण्य कर्म समझा जाता था । स्वामिदेव अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में अल्पनामक एक व्यक्ति ने विष्णुमंदिर का निर्माण कराया था । पहेला अभिलेख सोमरो द्वारा निर्मित एक विष्णु मंदिर का उल्लेख करता है । मदिरो के लिये दानदाताओं की कमी न थी । बहुसंख्यक विष्णु मूर्तियों का निर्माण इसी युग में हुआ था । जोधपुर अभिलेख में शिव, चक्र, गदा और कमल धारण किये हुए चतुर्भुज पारमेश्वरी प्रतिमा का उल्लेख है । शेष-शापी रूप में भी विष्णु अनेकों मंदिर में प्रतिष्ठित हुए ।

शैव सम्प्रदाय : वैष्णव सम्प्रदाय की भाँति शैव सम्प्रदाय भी लोकप्रिय था । शिव भगवान्, महोदेव, रुद्र, शंकर, शम्भु, सर्व, पशुपति, योगस्वामी आदि अनेक नामों से प्रख्यात थे । देश के अधिकांश भागों में शिव के मदिरो और प्रतिमामों की स्थापना की गई थी । मदिरो की आर्थिक व्यवस्था दान द्वारा सुकर हो जाती थी । देश में बहुसंख्यक शैवाचार्य और शैव-प्राज्ञपत सन्यासी थे । इनके बहुत से मठ थे ।

शैव और वैष्णव मतों का संबंध : धार्मिक सहिष्णुता के कारण वैष्णवों और शैवों के पारस्परिक संबंध अच्छे थे । शिव मंदिर में प्रायः विष्णु की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित की जाती थी । कभी कभी शैवाचार्य शैव मदिरो के साथ वैष्णव मदिरो की देखभाल करते थे । राष्ट्रकूट नरेशों की मुहरों में इन दोनों देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं ।

इन दो सम्प्रदायों के अतिरिक्त तान्त्रिक सम्प्रदाय भी देश में प्रचलित था । उसकी चरमाभिव्यक्ति कौल मत से हो रही थी । कौल सिद्धों की साधना अत्यन्त विकृत तथा भीषण आचारों से भरी हुई थी । यह धीरे धीरे अपने हाथ पैर फैलानी जा रही थी । कौलों ने मासाहार, गुरापान तथा यौन-मपक को साधना

के रूप में स्वीकार कर लिया था । आचरण से पतित होते हुए भी वे राजमहल से समाज तक को सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर प्रलोभित करते थे । इस प्रकार की साधना समाज को दूषित करने का गहंणीय कार्य कर रही थी ।

बौद्ध धर्म : बौद्ध धर्म अपनी भवनात्मक अवस्था में था । इसके अनुयायी अल्पसंख्यक थे, किन्तु उन्हें पूर्णतया धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी । पाल नरेश धर्मपाल एवं देशपाल स्वयं बौद्ध थे ।

जैन धर्म : इस समय दक्षिण में जैन धर्म का प्रचार था । राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम, कृष्ण द्वितीय, इन्द्र तृतीय तथा अतुर्थ ने इस धर्म को राजाश्रय दिया था ।

पूजा : हिन्दुओं में बहुदेवोपासना और मूर्ति-पूजा का प्रचलन था । मूर्ति पूजा के अनेक विधि-विधान विद्यमान थे । शक्ति की पूजा पार्वती, काली, दुर्गा, चामुण्डा, भगवती आदि अनेक नामों में होती थी । सूर्य पूजा को भी पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी । प्रतिहार नरेश रामभद्र और विनायकपालदेव आदित्यभक्त कहे गये हैं । विनायक पूजा का भी प्रचार था । विनायक गणेश के नाम से प्रख्यात थे ।

धार्मिक स्थिति के अवलोकन से पता चलता है कि इस युग में अनेक धार्मिक थे । जिनमें वैष्णव, शैव, (कौल) प्रधान थे । इनके प्रतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म का प्रचार भी था । देवी देवताओं की साकार भक्ति का महत्व अधिक था । फिर भी इन धर्म साधनाओं में पारस्परिक विरोध न था । एक ही वंश के राजगण भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी होते थे । प्रतिहार वंशी नागभट्ट द्वितीय और भोज प्रथम भगवती के उपासक थे तो रामभद्र और विनायक पालदेव आदित्य भक्त । राष्ट्रकूट नरेश जैनावलम्बी थे, किन्तु उनके वंश में उत्पन्न दन्तिदुर्ग ने ब्राह्मणधर्म का अवलम्बन किया था । पाल नरेश बौद्ध धर्म के प्रचारक थे । उन्होंने परम योग्य पदवी धारण की थी किन्तु धर्मपाल द्वारा नरनारायण तथा विनायकपाल द्वारा शिवमंदिर के निमित्त दान का उल्लेख मिलता है । संक्षेप में इस युग में धार्मिक सहिष्णुता पराकोटि की थी ।

राजशेखर की रचनाओं पर प्रभाव : राजशेखर की रचनाएँ सामयिक एवं पूर्ववर्ती वातावरण से अछूती न रह सकी । उन पर प्राचीन नाट्य एवं शास्त्र परम्परा का प्रचुर भावात् प्रभाव दिखाई देता है ।

रत्नावली एवं मालविकाग्निमित्र की छाप पूर्ववर्ती नाट्य के प्रभाव को सूचित करती है ।

काव्यमीमांसा में पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का अविच्छिन्न प्रभाव लक्षित होता है । राजशेखर ने आचार्य, वामनीय, औद्भट, भरत आदि शब्दों से इसी तथ्य को दिग्दर्शित किया है । तत्कालीन साहित्यिक धारा भी इसमें प्रवाहित है । कवियों की पाठप्रणाली, कवियों की चर्चा आदि के प्रसंग सामयिक प्रभाव से परिनिष्ठित हैं । इन कृतियों के पृथक् पृथक् अनुशीलन से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी ।

द्वितीय खण्ड

राजशेखर के नाटक

ब्रह्मीकजन्मास कविः पुराण कवीश्वरः सरयवतीमुतश्च ।
यस्य प्रणेता तदिहानवद्यं सारस्वतं वर्त्म न कस्य चन्द्रम् ॥
वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवरपत्रसञ्चितम् ।
रसनासु च सुकवीना निवसति सारस्वत चक्षुः ।

राजशेखर के नाटक

राजशेखर के दो नाटक उपलब्ध हैं—बालरामायण और बालभारत । इन नाटकों के मूल स्रोत हैं रामायण एवं महाभारत । राजशेखर के पूर्व भी इन दो काव्यकथाओं के आधार पर निर्मित काव्यों तथा नाटकों की संस्कृत में बहुलता थी । राम साहित्य की परम्परा में महाकाव्य क्षेत्र में कालिदास तथा नाट्यकला में भवभूति का नाम विशेष उल्लेखनीय है । राजशेखर ने इस साहित्य परम्परा को उत्तराधिकार में पाया था । बालरामायण की रचना करते समय वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त भवभूति का महावीर-चरित राजशेखर के सामने था । जसका पर्याप्त प्रभाव इस नाट्यकृति पर परिलक्षित होता है ।

संस्कृत साहित्य में महाभारत के कथानक को लेकर अनेक नाटकों की रचना हुई । पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, दूतवाक्य, उदभग, कर्णभार एवं वैष्णसंहार महाभारत पर ही आधारित हैं । राजशेखर ने बालभारत के कथानक का चयन इस महाकाव्य से किया । किन्तु इस कृति के केवल दो अंक उपलब्ध हैं ।

शास्त्रीय दृष्टि से बालरामायण को रूपक के अन्तर्गत नाटक भेद में रखा जा सकता है । यह नाटक दस अंकों में विभक्त है । इसमें सीता-स्वयंवर से रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है ।

प्रथम चार अंकों की घटनाएँ बालकाण्ड पर आधारित हैं । पाँचवें अंक का मूलाधार भरण्याकाण्ड है । छठे अंक में अयोध्याकाण्ड एवं भरण्याकाण्ड के प्रसंग हैं । सातवें अंक की घटनाएँ सुन्दर एवं किष्किन्धा काण्ड पर आधारित हैं । तथा आठवें और दसवें अंकों तक युद्धकाण्ड में सबन्धित घटनाएँ वर्णित हैं । इस नाटक में रामायण के उपाख्यान के अतिरिक्त कई नवीनताएँ भी हैं जो कि राजशेखर की मौलिक प्रतिभा का परिचय देती हैं ।

कथानक . दस अंकों में विभाजित बालरामायण का कथामूत्र इस प्रकार है :— प्रथम अंक में श्रुत जेठ रणभय पर आता है । उसके वचन से ज्ञात होता है

किन्तु भृगिरिटि दोनों को युद्ध में रोने है । राम और रावण का प्रमग ही प्रमुख होने के कारण इस अंक की अभिधा रामगवणीय है ।

तीसरे अंक में मृधमिथुन के कबोपकषण से दो बातें विदित होती है । पहली यह कि राम और लक्ष्मण ने (यज्ञ में बाधा उत्पन्न करने के कारण) ताड़का, मुबन्धु और मारीच का वध कर दिया है । दूसरी, सीता के विरह में विशिष्ट रावण के विनोदार्थ "सीतास्वयंवर" नामक नाटक का अभिनय होने जाता है । प्रमुख दृश्य में रावण को "सीतास्वयंवर" के दर्शक के रूप में दिखाया गया है । राम, लक्ष्मण और विश्वमिव स्वयंवर कक्ष में अपना उचित स्थान ग्रहण करते हैं । सीता के अप्रतिम सौंदर्य पर सारे राजगण मुग्ध हैं । सीता, धार्यमिका, जनक, शतानन्द और प्रतीहारी रामच पर दिखाई देते हैं, । प्रतीहारी धोपना करता है कि शिवधनुष को भंग करने वाला व्यक्ति ही सीता का पारिग्रहण कर सकेगा । सब नरेशों के द्वारा इस कार्य में सममर्पणा प्रकट कर देते पर राम सहज ही धनुर्भंग करते हैं । परिणामतः जनक राम से सीता का पारिग्रहण कराते हैं । नाटक देखते हुए रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता है । किन्तु शीघ्र ही प्रतीहारी उसे घताता है कि वह नाटक देख रहा है । इसी समय वैतालिक सन्ध्या की सूचना देते हैं । रावण अपने प्रासाद से लौटना है । लक्ष्मण के विलक्षण आचरण का प्रदर्शन ही इस अंक की प्रमुख घटना होने में, इस अंक का शीर्षक है "विलक्षण लक्ष्मण" ।

चतुर्थ अंक में उपाध्याय और बट्ट के संवाद में पता चलता है कि राम के द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर उपकोषी परशुराम सध्यापन कार्य छोड़कर प्रतिगोष्ठ लेने के लिये शीघ्र ही मिथिला की ओर प्रस्थान करने वाले हैं । प्रमुख दृश्य में बरारण, विमान द्वारा मिथिला पहुँचते हैं किन्तु दीवारिक उन्हें घताता है कि समस्त विवाह-विधि हो चुकी है और राम आयोध्या के लिये प्रस्थान करने वाले हैं । विवाह समारोह में सीता को गुरुजन कुमवधू धर्म की शिक्षा प्रदान करते हैं । इसी समय और गर्जना करते हुए परशुराम विवाहमंडप में आ खड़े होते हैं । वे राम पर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं । राम विनयपूर्वक दावा वाच्यता करते हैं किन्तु परशुराम किंचित् भी द्रवित नहीं होते । अन्त में राम और परशुराम युद्ध के लिये तैयार होते हैं । इस अंक का अभिधान है 'भागवत' ।

पाँचवें अंक में मायामय और मान्यवान् की चर्चा से विदित होता है कि राम और परशुराम के युद्ध में राम विजयी हुए हैं । दुर्बुद्धि रावण सीता में अनुरक्त है, तथा उसका हरण करना चाहता है । इसलिये मन्दीर की मित्रा मायामय

ने रावण के कृत्रिम परितोष के लिये यन्त्र-ज्ञानकी का निर्माण किया है । प्रमुख दृश्य में बिरही रावण के दर्शन होते हैं । वह सीता के लिये भ्रत्यन्त व्याकुल है । प्रहस्त यन्त्र-ज्ञानकी और उसकी सखी सिन्दूरिका को रावण के समक्ष उपस्थित करता है । वनिपय प्रणयोद्गार के पश्चात् रावण सीता के आलिंगन के लिये बढ़ता है, किन्तु छूने ही जात हो जाता है कि वह यन्त्र-ज्ञानकी है । वह प्रहस्त को आदेश देता है कि उसे प्रमोदवन का मार्ग दिखाया जाय । कामसक्त रावण के लिये 'पद्भक्तु चक्रवाल' की योजना की जाती है किन्तु उसे शानि नहीं मिलती है । वह कामदेव से ऐसे प्रहार की प्रार्थना करता है जिससे वह और उसकी प्रिया जानकी मरने के पश्चात् पुनः स्वर्ग में मिल सकें । उनकी कामशानि के लिये गिरिपत्नियाँ अक्षरायें, नदियाँ, सक्ष्म, वारुणी एवं मरुस्वनी उसकी विविध मेवायें करती हैं किन्तु उनसे कोई लाभ नहीं होता । वह हाथी, सर्प, हरिण, चन्द्र, वायु, लता आदि पर प्रिया के विभिन्न अवयवों का सौंदर्य हरने का आरोर लगाना है । प्रमजिवा उसे वस्तुस्थिति का बोध करानी है । इसी बीच छिद्रनासा शूर्पणखा, सीता का हरण करने के प्रयास में असफल होकर सौटती है । रावण की क्रोधानि भडक उठती है । सम्पूर्ण भ्रक में दशानन की उन्मत्तावस्था का वर्णन होने के कारण इस भ्रक का नाम 'उन्मत्त दशानन' है ।

छठे भ्रक के आरम्भ में मात्यवान् के कथन से पता चलता है कि बहन की दुईसा के प्रतिशोध के लिये रावण राम की राजधानी की ओर जा रहा था किन्तु उसे रोका गया । उनके दूत ने खबर दी कि वैदेही ने रावण के साथ रहने का निश्चय किया है । इसके पश्चात् मायामय और शूर्पणखा आती है ।

उन दोनों के वार्तालाप से चौदह वर्ष के लिए राम के निर्वासन का रहस्य उद्घाटित होता है । जिस समय दशरथ कैंकयी सहित इन्द्र की सहायता के लिये स्वर्ग गये हुए हैं मायामय शूर्पणखा एवं उनकी परिचारिका जनश दशरथ, कैंकयी एवं मयरा के सद्म रूप में अयोध्या पहुँचे । छद्म-कैंकयी ने दशरथ से दो बरों की याचना की—राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास एवं भरत का राज्याभिषेक । वामदेव के रोकने पर भी पितृपरायण राम ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और वन के लिये प्रस्थान कर दिया । सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ गये । दशरथ और कैंकयी के आगमन के भय में नकुली कैंकयी और दशरथ जनममूह में मिल गये । प्रमुख दृश्य में दशरथ और कैंकयी जब अयोध्या में प्रवेश करते हैं तो राजधानी को गुनगुन और उदास देखकर उन्हें कुशंका उत्पन्न होती है । वाम-देव जब रावण के छल प्रसंग का वर्णन करते हैं तब दशरथ और कैंकयी भ्रत्यन्त

शोकाकुल हो उठते हैं। राम का समस्त परिवार शोक-मग्न हो दिग्विह्वल होता है। इसी समय सुमन्त्र आते हैं। वे राम के वन जीवन, तथा नर्मदा तट के प्रवास का वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् जटायु का दूत चित्रविधुषड भी आकर सीता के हरण तथा उन्हें छुड़ाने के प्रयास में वृद्धराज जटायु की मृत्यु का दुःखद समाद सुनाता है। यह सुनकर व्यथित हुए दशरथ, गंगा यमुना के तटों में शरीर त्याग करने की इच्छा प्रकट करते हैं। राम-निर्वासन में दशरथ एवं कैकेयी को निर्दोष प्रदर्शित करने के कारण इस प्रकार की सजा है—“निर्दोषदशरथ”।

मातर्वैश्वदेव का आरम्भ कर्पूरचण्ड और चन्दनचण्ड नामक वैतालिकों द्वारा नेपथ्य में गायी गई प्रभाव-मोहावली में होता है। वे राम के पुनीत जीवनक्रम का वर्णन करते हैं। प्रतीहार प्रवेश करके उन्हें शौर्य-गुण के गान करने में मना कर देता है क्योंकि रामचन्द्र ने पिता की मृत्यु से दुःखी होकर रावण के वध तक अपने यशोमान पर नियन्त्रण लगा दिया है। प्रतीहारी एवं वैतालिकों की चर्चा में राम के विनय करने पर भी समुद्र द्वारा मार्ग न देने की घटना का पता चलता है। अन्ततः राम को क्रुद्ध होकर अग्निबाणों की वर्षा करनी पड़ती है। राम, विभीषण और सुग्रीव मन्त्र पर दिव्यार्थ देते हैं। हनुमान् नामक नवीन पात्र का आगमन होता है। हनुमान् राम को यथोचित प्रणाम करता है—ममूद्र अपनी पत्नियाँ सहित आकर राम से क्षमा माचना करता है। यह सेतु बंधने के लिये राम ने आग्रह करता है। सेतु-निर्माण का कार्य प्रारम्भ होता है। राम मलयपर्वत पर चढ़कर सेतुनिर्माण के कार्य का अवलोकन करते हैं। एकाएक भीषण गर्जना होती है। रावण द्वारा भेजी गई राक्षस सेना सेतुबन्ध में विघ्न डालने का प्रयास करती है। परिणामस्वरूप बानर और राक्षसों के बीच घमासान युद्ध छिड़ जाता है। राक्षस-सैन्य पराजित होकर भाग जाता है। पुनः बाधा उत्पन्न करने के लिये रावण विमान में सीता का कटा मन्त्र फेंकता है। उसे देखकर राम और लक्ष्मण शोकविह्वल हो जाते हैं। किन्तु शीघ्र ही मारिचा मायावीर्य के नकली होने की सूचना देती है। अतः राम द्वि-गुणित उत्साह में युद्ध के लिये आगे बढ़ते हैं। राक्षसदल पुनः घोरारंभ करता हुआ रणक्षेत्र में उतरता है और राम को भी चेतावनी देता है। दोनों सेनायें युद्ध के लिए मग्न हैं। इस प्रकार का नाम है ‘अमरपराक्रम’।

आठवें अंक के आरम्भ में मुख्य और दुर्मुख इन दो राक्षसों के चर्चा-विषय से पता चलता है कि रावण ने ‘तुलावृक्ष’ प्रत्याश की सम्पत्ति के लिये, गुरु और सारण को राम ने पाम भेजा है। अतः यह भी कि इस तुलावृक्ष में जिसकी जीत होगी

उसे—सीता और नका दोनों मिल जायेंगी। सबके निषेध करने पर भी राम अपनी स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। इस कार्य में राम का प्रतिनिधि अंगद विजयी होता है, किन्तु रावण तुनादूत की शर्त वापिस ले लेता है। लिखटा नामक राक्षसी, सीता को युद्ध विषयक समस्त घटनाओं की जानकारी देती रहती है, प्रमुख दृश्य में रावण सोकर उठता है। वह राम और लक्ष्मण से युद्ध करने के लिये क्रमशः कुम्भकर्ण और मेघनाद को भेजता है। मेघनाद और कुम्भकर्ण मारे जाते हैं। इस अंक में बीरो के बीरत्व का वर्णन है। अतः अंक का शीर्ष है 'बीरविमान'।

नवें अंक के आरम्भ में यम पुरुष दिखाई देता है। उसके कथन से पता चलता है कि उसने लका में हुई मृत्यु-मर्यादा की जानकारी के लिये चित्रगुप्त के पास अपने सेवक को भेजा है। मृत्यु की सच्चा अन्वेषिक होने के कारण चित्रगुप्त राम के भार से भागान्त है। तथापि वे मृत्यु-लेखा प्रस्तुत करते हैं। इन्द्र और दशरथ राम-रावण के द्वन्द्वयुद्ध के भवलोकन के लिये तैयार हैं। दो, चारण युद्ध का वर्णन करते हुए कहते हैं कि युद्ध को राम यथासम्भव शांतिपूर्वक निपटाना चाहते हैं किन्तु रावण को यह स्वीकार नहीं है। दोनों मोड़ों में पहले तो बचनों का आदान प्रदान होता है, तत्पश्चात् बाणों की वृष्टि। अनेक प्रकार के भस्त्रों के चालन से युद्ध की विभीषिका बढ़ जाती है। राम द्वारा रावण के भस्त्रक छिन्न करने का प्रयास सफल होता है, क्योंकि रावण के बटे हुए सिर के स्थान पर दूसरा सिर उत्पन्न हो जाता है। अन्त में राम विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त मायाहूर नामक भस्त्र का प्रयोग करते हैं, जिसमें वे रावण के दसों सिरों का उच्छेद करने में सफल हो जाते हैं। देवगण रावण बध में प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करते हैं। अतः इस अंक का नाम 'रावण बध' है।

अन्तिम अंक में राम के जीवन का सुखमय पक्ष वर्णित है अतः अंक का शीर्षक 'राघवानन्द' है। समोका लका एवं अलका के कथन से ज्ञात होता है कि सीता की अग्निपरीक्षा की गई जिसमें से वे अक्षय निकल आईं। राम अयोध्या गमन के लिये तत्पर हैं। प्रमुख दृश्य में राय, लक्ष्मण, सीता, लिखटा, सुग्रीव और विभीषण विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं। जिन स्थानों पर युद्ध की महत्वपूर्ण घटनाएँ घटी थी उन स्थानों का निरीक्षण करते हुए वे क्रमशः आगे बढ़ते हैं। विमान समुद्र सतह से ऊपर आकाश की ओर पहुँचता है। हिमालय, बंलाग, मानग, मन्दर, मेरु आदि पर्वत को पार करते हुए यान चन्द्रलोक में पहुँचकर पुनः रोहणगिरि, मलयगिरि, ताम्रपर्णी एवं अमरवाधम से होना हुआ मोगामुद्रा के पुनीन आश्रम में रुकता है। तत्पश्चात् श्विङ्ग, घांघ, कावेरी, महाराष्ट्र, नर्मदा,

लाट, मालवा, उज्जयिनी, पाचान, महोदय, प्रयाग, वाराणसी एवं मिथिला को पार करते हुए वे सींग मयोध्या में आते हैं । राम के राज्याभिषेक के सुखद चित्रण के भाष नाटक की समाप्ति होती है ।

राजशेखर ने वालरामायण नाटक में रामायण की कथा को आधार माना है किन्तु उन्होंने कतिपय नूतनताओं की उद्भावना की है, जिसमें महाकाव्य नाटक के कयेवर में परिणम किया जाने योग्य हो सके । स्वयं राजशेखर ने वालरामायण की प्रस्तावना में इसका स्पष्ट संकेत किया है यथा—

पारिपाश्विक —वाल्मीकिना मुनिवरिष्ठेन दृष्टनिबन्धनस्य रामचन्द्रचरितस्य
क पुनः स विशेषो यमेष बहिर्दार्जयिष्यति ।

सूत्रधार —भारिष । क्वचित्कश्चित्प्रगन्भने नहि सर्वं सर्वं जानाति ।

पारिपाश्विक —भाव । ननु भणामि श्रव्यशीकृतसकलं समसम्बन्धात् तवभवतो
महर्षेरनिक्रम्य किमेष चर्भंचक्षु प्रेक्षिष्यते ।

सूत्रधार —भारीष मा भवम्

वदनेन्दुषु वामहृणामिन्दीवर पत्रसघटितम् ।

रमनामु च मुक्तीना निब्रमति मारस्यत चक्षु ॥^१

जिन प्रसंगों में नाटककार ने अपनी मौलिकता प्रकट की या प्रचलित कथा से भिन्नता प्रदर्शित की है, वे हैं—१—सीतास्वयवर, २—विवाहोपरान्त दशरथ का प्रागमन, ३—स्वयवर के समय विश्वामित्र की अनुपस्थिति, ४—ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का वध, ५—राम-परशुराम संघर्ष, छद्म मस्तकी के प्रसंग, ६—धनजानकी, ७—भूर्पणखा प्रकरण, ८—कैकयी का दोषनिवारण एवं ९—दशरथ मरण ।

सीतास्वयवर वाल्मीकि-रामायण में सीता स्वयवर के प्रसंग में कहा गया है कि जब अनेक राजा जिव के धनुष को उठाने में असमर्थ रहें तो उन्होंने मिथिला पर आक्रमण कर दिया^२ किन्तु उम धट्ठा के बर्षों बाद राम ने धनुर्भंग करके सीता का पाणिग्रहण किया ।^३

बालरामायण में सीता-स्वयवर प्रसंग दो बार वर्णित है । प्रथम अंक में सीता स्वयवर की घोषणा के पश्चात् रावण मिथिला को प्रस्थान करता है किन्तु

१ बालरामायण अंक १ पृष्ठ ६।७

२ वाल्मीकि रामायण १-६६

३. वही-२-११८

धनुष ग्रहण करने के पश्चात् वह धनुष परीक्षा को अस्वीकार कर देता है ।^१ इस नाटक के तृतीय अंक में पुनः सीता स्वयंवर के आयोजन का वर्णन मिलता है । शिव का धनुष भंग करने का अनेक राजाओं ने प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे । अन्ततः राम धनुष-भंग करते हैं । सीता-स्वयंवर के अन्तिम में रावण सम्मिलित होता है किन्तु दशक के रूप में ।^२

विवाह के उपरान्त दशरथ का आगमन वाल्मीकि-रामायण के अनुसार विश्वामित्र जनक के यज्ञ के अवसर पर राम-लक्ष्मण को मिथिला ले जाते हैं । राम धनुष-भंग करते हैं । दशरथ को निमंत्रित किया जाता है । उत्पश्चान् उनके पुत्रों का विवाह होता है ।^३ बालरामायण में दशरथ को निमंत्रित नहीं किया जाता वे स्वयं रामविवाह का समाचार सुनकर मिथिला पहुँचते हैं लेकिन तब तक विवाह का कार्य सम्पन्न होकर वरवधू की विदाई का आयोजन हो रहा होता है ।^४

स्वयंवर के समय विश्वामित्र की अनुपस्थिति : रामायण के अनुसार स्वयंवर के समय विश्वामित्र स्वयं उपस्थित थे^५ जबकि बालरामायण में विश्वामित्र के स्थान पर उनके प्रतिनिधि धनुर्गोप उपस्थित हैं ।^६

ताड़का, मारीच एवं सुबाहु का वध (वध की स्थान-भिन्नता) : वाल्मीकि रामायण के अनुसार सिद्धाश्रम में पहुँचने के पूर्व ही राम ताड़का का वध करते हैं^७ तथा आश्रम में यज्ञ-रक्षा करते समय वे सुबाहु और मारीच का वध करते हैं । लेकिन बालरामायण में सिद्धाश्रमवासियों को अपने उत्पातों से दस्त करने से राम वही उमका वध करते हैं ।^८ उसी प्रकार मिथिला जाने में विघ्न उत्पन्न करने के कारण वे मारीच सुबाहु का वध करते हैं ।^९

राम-परशुराम संघर्ष : वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम के पराक्रम तथा उनके द्वारा धनुर्भंग का समाचार सुनकर परशुराम उनसे द्वन्द्व लड़ना चाहते

१. बालरामायण अंक १-५०।५१

२. वही अंक ३ पृ० ६०।८५

३. वाल्मीकि रामायण १-६६

४. बालरामायण ४४१-४२

५. वाल्मीकि रामायण १-३१-२० ।

६. बालरामायण १-२३:२३

७. वाल्मीकि रामायण १-२६ वही-१-४० ।

८. वाल्मीकि रामायण ३-६ ।

९. बालरामायण ३।३-८ ।

है । विवाह के पश्चात् प्रयोध्या की ओर प्रस्थान करते समय वे राम को चुनौती देते हैं, किन्तु ज्यों ही वे विष्णु-नाभ चढ़ाते हैं, परशुराम निष्प्रभ होकर उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में पहचान कर प्रणाम करते हैं । राम चढ़े हुए बाण से परशु राम के तपोबल द्वारा संचित पुण्य नष्ट करते हैं और परशुराम महेन्द्र पर्वत की ओर चले जाते हैं ।^१

बालरामायण में धनुष-भंग का समाचार सुनकर परशुराम मिथिला पहुँचते हैं । घटपन्त क्रुद्ध होकर वे राम का वध करने की बार-बार धमकी देते हैं । अन्त में दोनों युद्ध के दृश्य के उद्देश्य से रंगमंच से चले जाते हैं ।^२

यन्त्र-जलकी (छध-मस्तकों के प्रसंग) रामायण में रावण प्रहस्त द्वारा सीता के पास राम के वध का समाचार सुनाता है तथा विद्युग्निह्व के द्वारा सीता को राम का भस्तक तथा धनुष दिखाता है । रावण के चले जाने पर राम का मायावी मस्तक और धनुष दोनों प्रदृश्य हो जाते हैं ।^३ दूसरी घटना माया-सीता के वध से सम्बन्धित है । इन्द्रजीत तका के पश्चिमी द्वार से निकलकर हनुमान तथा अन्य वानरों के सामने अपने रथ पर बैठी सीता का मिर काट सेता है । राम-सीता-वध का समाचार सुनकर विलाप करने लगते हैं किन्तु विभीषण राम को विश्वास दिलाता है कि रावण सीता का वध नहीं कर सकता । अवश्य ही यह कोई माया-सीता होगी ।^४

बालरामायण में रावण सेतु निर्माण के समय विमान द्वारा राम के शिविर के पास प्राकाश में पहुँचता है तथा राम के सम्मुख यन्त्रजानकी का वध करके उसका मस्तक समुद्रतट पर फेंककर लंका लौट जाता है ।^५ इस प्रकार ग्रन्थों में मायाशीलों के प्रसंग में अन्तर है ।

शूर्पणखा प्रकरण (शूर्पणखा के प्रसंग में समय का अन्तर) - वाल्मीकि-रामायण में शूर्पणखा राम के पास वन में जाकर यह इच्छा प्रकट करती है कि वह सीता तथा लक्ष्मण का भक्षण करके उनकी पत्नी बनना चाहती है । राम उसको भविष्यवाहित लक्ष्मण के पास भेज देते हैं । राम की भस्वीकृति जानकर शूर्पणखा सीता पर भ्रान्त्रमण करने के लिये उत्थत होती है, किन्तु राम की आज्ञा से लक्ष्मण

१. वाल्मीकि रामायण १-७४-७५-७६ ।

२. बालरामायण ४.८१-८३ ।

३. वाल्मीकि रामायण ६-३१ ।

४. यही-६-८१ ।

५. बालरामायण ७-७१-७९ ।

उसके बान और नाक काट सेते है ।^१ वालरामायण में शूर्पणखा वनवास के पूर्व ही अयोध्या के राम तथा लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत और विरूपित की जाती है ।^२ वाल्मीकि-रामायण के अनुसार शूर्पणखा विरूपित हो जाने के बाद जन्मस्थान में अपने भाई के पास पहुँचकर विलाप करती है । वालरामायण में वह रावण के पास जाकर कहती है कि मैंने सीता को तुम्हारे योग्यतमपन्नकर उत्तम अपहरण करना चाहता, फलस्वरूप राम-लक्ष्मण ने यह दुर्यन्ति कर दी ।

उक्त प्रसंग में रामायण तथा बालरामायण के काल में बर्णों का भग्नत्व है ।

कैकयी का शोच-निवारण : वाल्मीकि ने पहले तो कैकयी की दुष्टता का चित्रण किया है ।^३ फिर कैकयी के शोच-निवारण का भी प्रयत्न किया है । किन्तु वालरामायण ने प्रारम्भ से ही कैकयी को निर्दोष दिखाया है । जब दशरथ कैकयी के साथ इन्द्रलोक में गए हुए थे तभी दोनों की अनुपस्थिति में मायामय, शूर्पणखा तथा एक परिचारिका क्रमशः दशरथ, कैकयी तथा मयरा का रूप धारण करके राम निवामिन की अभिसंधि में सफल होते हैं ।

दशरथ-मरण : रामायण में राम-वनगमन के पश्चात् सुमित्र से राम का संदेश सुनकर दशरथ मूर्च्छित हो जाते हैं तदनन्तर शोकाकुल अवस्था में उनकी मृत्यु हो जाती है ।^४ बालरामायण में दशरथ सीताहरण के समाचार से अत्यन्त ध्याकुल होकर गंगा यमुना के संगम में डूब कर प्राण त्याग देते हैं ।^५

नाटक में इन बड़े परिवर्तनों के अविरक्त कुछ छोटे-छोटे परिवर्तनों मयका नावीन्य का विन्यास भी लक्षित होता है जैसे—

१—घाठवे अक में नरान्तक और अगद का तुलाघूत प्रसंग तथा उसमें विजयी व्यक्ति का सीता तथा सका का स्वामी होने की कल्पना नहीं है ।

२—रामायण में कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् नरान्तक का वध वर्णित है ।^६ नाटक में यह मृत्यु कुम्भकर्ण-वध के पूर्व होती है ।^७ नाटक में कुम्भकर्ण और

१. वालरामायण ७-७१-७९ ।

२. वालरामायण ४-७८ ७९ ।

३. वाल्मीकि रामायण २-४५ ।

४. वाल्मीकि रामायण २-४९:६० ।

५. वालरामायण ६-६२ ।

६. वाल्मीकि रामायण ६-६९

७. वालरामायण ८-८१-८२

मेघनाद राम और लक्ष्मण के साथ प्रायः एक ही समय में युद्ध करते हैं।^१ जबकि महाकाव्य में इन दोनों के युद्ध के बीच अनेक दानवों के युद्ध का वर्णन है।^२ सेतुबन्ध के समय में सिंहनाद राम के पास जाकर उनका युद्ध के लिए आह्वान करता है।^३ रामायण में इसका उल्लेख नहीं है। रामायण में रावण की मृत्यु ब्रह्मास्त्र द्वारा वर्णित है।^४ बालरामायण में रावण के नव सिरो का उच्छेद मायाहुर द्वारा तथा दसवें का उच्छेद ब्रह्मास्त्र द्वारा दिखाया गया है।^५ रामायण के अनुसार राम वन गमन के समय भरत नन्दिग्राम में रहे।^६ जबकि नाटक के अनुसार वे अयोध्या में ही रहे। राम के माघ चत्तने का उन्होंने प्राग्रह भी किया था।^७

परिवर्तन का उद्देश्य : राजशेखर ने कई प्रसंगों में अपनी मौलिकता का कारण प्रदर्शित की है। यथा—सीता-स्वयम्भर प्रसंग में रावण की विद्यमानता इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि सीता-हरण का मूल कारण केवल राम के प्रति रावण की विद्वेष-भावना ही नहीं है अपितु उसके मन में सीता के प्रति अनुराग है। इससे रावण के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। यही घटना बालरामायण का मुख्य विषय है। नाटककार का लक्ष्य रामविवाह का वर्णन नहीं है। राम-विवाह में वे धनुर्भंग प्रसंग को मुख्य स्थान देने हैं। भूत इस समय दशरथ के वहाँ होने या न होने का कोई भ्रम नहीं है। इसलिये उन्होंने विवाह के समय दशरथ की अनुपस्थिति बतलायी है। यही भावना विश्वामित्र की उपस्थिति के विषय में भी उचित प्रतीत होती है।

राजशेखर ने ताड़का, भारीच एवं सुबाहु-वध के प्रसंगों में रामायण की कथा का अनुसरण न करके जो काल-भेद दिखाया है वह इसलिए कि अभिनेयता की दृष्टि ने इन प्रसंगों का महत्व गौण था। हाँ, इस दिशा में नाटककार से प्रत्यक्ष ही थोड़ा प्रभाव हो गया है।

राम के देवत्व की प्रपेक्षा उनके श्रेष्ठ मनुष्यत्व की प्रतीति के लिए नाटककार ने परतु राम-राम के सघर्ष का आयोजन किया और एक को विजयी घोषित किया। यज्ञ-जानकी का आयोजन नाटकीय भावपूर्ण की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है।

१. बालरामायण ८-२०
२. वाल्मीकि रामायण ६-६०-६८-८८-९२
३. बालरामायण ७-४०
४. वाल्मीकि रामायण ६-१०२-४-६-८
५. बालरामायण ९-४९-५०-५४-५५
६. वाल्मीकि रामायण २-७१
७. वही-बालरामायण ६-३३-३४

राजशेखर ने नाटक के आरम्भ में ही रामायणीय कथा में विशिष्टता प्रदर्शित करने का संकल्प किया। उस संकल्प की पूर्णता इन परिवर्तित दृश्यों में दृष्टिगत होती है।

पूर्ववर्ती साहित्यकारों का प्रभाव - यह नितान्त सत्य है कि साहित्यकार अपनी रचना में मौलिकता की सृष्टि करता है तथापि पूर्ववर्ती साहित्य एवं सम-कालीन वातवारण के प्रभाव से वह अछूता नहीं रह सकता। नाटककार दृश्य काव्य का सृजन करता है। उसका काव्य दर्शकों की विवेकशीलता से ही मज्जित या खण्डित होता है। कतिपय साहित्यकार परीक्षकों (दर्शकों) के समक्ष स्वयं ही वस्तुस्थिति का उद्बोधन कर देते हैं। राजशेखर का भी इसी तरह का प्रयास निम्न पक्तियों में प्रतिफलित हो रहा है।

ब्रह्मभ्यः शिवमस्तु वस्तु वितत किञ्चिद् वयं ब्रूमहे,
हे सन्त शृणुतावधत्त विधृतो मुष्मानु सेवाञ्जलिः ।
सत्यं किं विनयोक्तिभिर्मम गिरा यद्यस्ति सूक्तामृत
माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्या परं दैन्यभूः ।^१

उनकी "बभूव वाल्मीकिभव" पुरा कवि स्थित, पुनर्यो भवभूति-रेखया"— पक्तियाँ पूर्ववर्ती साहित्यकारों के प्रभावातिशय की द्योतक हैं। इन दो साहित्यकारों के अतिरिक्त अपनी प्रतिभा से राजशेखर को प्रभावित करने वालों में कवि कुलशुभ कालिदास विशेष स्मरणीय हैं। भवभूति की रामराव्य से सन्निधित इति उत्तर-रामचरित है। इसमें राम के जीवन का उत्तरार्द्ध वर्णित है। यद्यपि बालरामायण में राम के जीवन का पूर्व पक्ष चित्रित है, तथापि जहाँ कहीं भी राजशेखर को उत्कृष्ट भावामिव्यक्ति का अवसर मिला उन्होंने उसे शीघ्र ही ग्रहण कर लिया। ऐसे साम्यस्थल अनेक हैं। उदाहरणार्थ उत्तररामचरित में राम के पुत्र लव की राम के प्रति भर्त्सना-मूर्छा उक्ति—

१- ब्रूहास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्धयते ।
मुन्दररत्नीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते ॥
यानि लोप्यन्तु तोमुखान्यपि पदान्यासन् धरायोपने ।
यदा कौशलमिन्द्रमूनुनिधने तत्राप्यमिगो जनः ।^२

और बालरामायण में रावण के पुत्र सिंहनाद की राम के प्रति व्यङ्ग्योक्ति—

१. बालरामायण १-१०
२. उत्तररामचरित ५ ६५

स्त्रीमात ननु ताडका भूगुभवो रामश्च विप्र. शुचि
मारीचो भृग एष भीतिभवन वाली पुनर्वनर ।
भा काकुत्स्थ । विकल्पसे कथय किं वीरो जित कस्त्वया
दोदंपंस्तु तथापि ते यदि तत. कोदण्डमारोपय ।^१

इन दोनों में उल्लेखनीय भाव-सादृश्य है ।

राजशेखर राम के विषय में कहते हैं—

त्वया तु क्षीरकण्ठेन धनवासो निपेय्यते ।^२

भवभूति ने भी इसी प्रकार के उद्गार प्रकट किये थे—

धृत बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यक-प्रतम् ।^३

बालरामायण में रावण के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग सुनकर सिंहनाद करता है :

दे दे क्षत्रिय तातमधिष्ठितसि, तदेष शितमुखे शिलीमुखैरवकीर्यसे^४
उत्तररामचरित में राम की निन्दा सुनकर चन्द्रकेतु क्रोधसतप्त होकर कहता है
भा तातापवादिन् । भिन्नमर्याद । भति हि नाम प्रगल्भसे ।^५

भवभूति सत्सगति की महिमा का गान करते हैं—

सता सद्भि सङ्ग कथयपि हि पुण्येन भवति ।^६

इसी भाव की अभिव्यक्ति राजशेखर ने निम्न शब्दों में की है—

समप्रेमरस समरूपदीवन समविलासविशिष्टम् ।

समसुखदुःख जन समपुष्पैर्दन्तो लभते ।^७

ऋषियों के प्रति भवभूति की उक्ति—

मीनारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि^८

राजशेखर के शब्दों का प्रभावित करती है । वे कहते हैं

१. बालरामायण ७.८८

२. उत्तररामचरित १-२२

३. वही-१-२५

४. बालरामायण ७.८०.८१

५. उत्तररामचरित ६.३४.३५

६. उत्तररामचरित २-१

७. बालरामायण २-१२

८. उत्तररामचरित. १-२५

यद्वाचंमववृत्तयः किमपर नीवारमुष्टिम्पचाः ।^१

राम के शोक से पत्थर भी भाँसू बहाते हैं—

भवभूति—अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।^२

राजशेखर-ग्रावग्रन्थीनां परं यदि न दलति हृदयम् ।^३

भवभूति के इसी भाव का ग्रहण राजशेखर की उपरि पक्तियों में दिखायी देता है—

राजशेखर ने भवभूति के समान कालिदास के ग्रन्थों से भी भाव ग्रहण किया है। इस दृष्टि से रघुवश, अभिज्ञानशाकुन्तल, एव विजयमोक्षशीय उत्तेजनीय है। सीता-स्वयंवर की कल्पना का आधार रघुवश-वर्णित इन्दुमती स्वयंवर है। विरही रावण के उन्मत्त प्रलाप क्षण भर के लिए विजयमोक्षशीय के पुरुरवा एव मालती-माधव के माधव का स्मरण दिखाते हैं जो उर्वशी एव मालती के विरह में पशु पक्षियों से प्रिया का पता पूछने लगते हैं।

सीता की विदाई के प्रसंग में जनक उसे गार्हस्थ्य धर्म का उपदेश देते हैं। शकुन्तला को विदा करते समय यह कार्य कण्व मुनि ने किया था। दोनों के उपवेशों में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है।

कालिदास—शुभ्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखी-वृत्ति सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोपणतया मा स्म प्रतीप यम् ।
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्यैव गृहिणीपदं मुवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥^४

राजशेखर—मभ्युत्थानमुपागते गृहपती तद्भाषणे नम्रता
तत्पादापितदुष्टिरासनविधित्तस्थोपचर्या स्वयम् ।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याञ्च शय्यामिति
प्राच्यं पुति । निवेदिता कुलवधूमिद्वान्तधर्मा प्रमी ॥
निर्भ्यात्रा दयिते, ननान्दुषु नता, स्वश्रुषु भवता भव ।
स्निग्धा वन्धुषु वत्सता परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि ॥
पत्युर्मित्तजने सनमवचना, विप्रा च तद्देपिपु
स्तीष्ठा संवनन नतभ्रु । तदिदं धेष्टोपय भवंपु ॥^५

१. बालरामायण १०-९२

२. उत्तररामचरित १-२८

३. अभिज्ञान शाकुन्तल ४.१८

४. बालरामायण ४:४३-४४

दोनों का ही मूलस्रोत वात्स्यायन का काम सूत्र है। राजशेखर के बालरामायण पर महावीरचरित का भी प्रभाव लक्षित होता है। दोनों के कथानक में पर्याप्त साम्य है। भवभूति ने सीता स्वयंवर से राज्याभिषेक तक की घटनाओं को नाट्य-रूप में स्वीकृत किया है। राजशेखर ने इन्हीं प्रसंगों को अपने नाटक में मान्यता दी है। इस नाटक में कथानक के साम्य के अतिरिक्त भाव-साम्य एवं शब्द-साम्य के अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जिनका सकलन एक लघुपुस्तिका का रूप ग्रहण कर सकता है। नीचे निदर्शनमात्र प्रस्तुत किया जा रहा है

बालरामायणम्	महावीरचरितम्
१-वीराद्भुतप्रायरमे प्रधाने १-२	१-वीराद्भुतप्रियतया १-६
२-बालरामायणम् नाटयितव्यम् १-५।६	२-महावीरचरितं प्रयोक्तव्यम् १-३।४
३-उक्त तेन महामन्त्रिपुत्रेण १-८।८३	३-उक्त च तेन योत्रिपुत्रेण १-६।७
४-तदामुप्यायणस्य १-१३।१४	४-तदामुप्यायणस्य १-४।५
५-अप्राप्त्य शिष्यं किं याज्ञवल्क्यस्तस्यापि राजा जनक सयोगी १-२१	५-याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मिं ब्रह्मपारायणजगौ । १-१४
६-अतमात्मायतमिदं धिक् मन्त्रित्वम् । १-२४।२५	६-सावित्र्यनाम महते सन्तापय ६-२।३
७-स्वेच्छया कुरते स्वामी यत्किंचन यतस्तत् । तत्तत् प्रनिचिकीर्षन्तो दुःखं जीवन्ति मन्त्रिण । १।२५	७-यत्किंचित् दुर्मता स्वैरमाद्रियन्ते निरगलम् तत्र तत्र प्रतिकारचिन्त्यो साधु विधावपि । ६।३
८-यस्य भगवतस्त्रैशङ्खचक्रं शोभं शेषरम्भास्तम्भन १।१०।११	८-मेनवाकामुत्सृज्य, त्रिषाङ्कं याजिनः क्षात्रियब्राह्मणस्य— १-२५।२६
९-निषेधा विन्यस्य वंशानस कृपा १-२८	९-तदस्मिन्— —वताम् १-११ तथा—अयं विषय ७-१४
१०-नवनपुनः सवत्र सर्वं गुणा १।३६	१०-अस्मिन् न वसन्त्येकत्र सर्वं गुणा १।३३
११-स्फूर्जद्ग्याहृत १।४१	११-स्फूर्जद्ग्यसहस्र १-५३
१२-वैलासमुद्भवत १।४४	१२-वैलासोदारागाद २-१६
तथा—वैलासोदाराधीरम् १।४७	
एकं वैलासमदि कर्तततमकरोत् २।१५	
१३-अस्मद्दोदण्डचण्डाञ्जन १।४६	१३-दोदण्डाञ्जनम् १।५४
१४-पृथ्वि स्थिरा भव १।४८	१४-यावत्पृथ्वीन्द्रशिरसि ७।२६
१५-वहति भुवनध्रेणीशेषकणागलव- ७-४०	१५-यावत्पृथ्वीन्द्रशिरसि ७।२६
स्थिता	

बासुरामायणम्	महावीरचरितम्
१६-माहेश्वर १-५११५२	१६-माहेश्वर १११/१०
१७-तेनाभ्युत्सहते मर्मप युगपन्चापाय आपाय च ११५२	१७-प्राक्सस्कारवशेन चापमितरः पाणिर्ममान्विप्यति ३१४३
१८-हस्तालम्बितमक्षसूत्रलयम् ११५३	१८-पाणौ कर्मकुक्षसूत्रवलयम् १११८
१९-ब्रह्मकृतानहृदया ११५६	१९-ब्रह्मकृतान मनसो ३१११
२०-जनकविरम कोपात् ११५७	२०-विरम नरपते कथम् ३१३०
(२)	
१-इत्यपरमप्यपरिभेयं चित्र चरित्रजात माचक्षते २-३१४	१-इत्यपरिभेयमाश्वयंजातमाश्रया नविद आचक्षते १-१०१११
२-त्रिःसप्तावधि याधिता २११३	२-त्रिःसप्तवारानविकल २-१७
एकविंशतिमिद वारान्— एष त्रिः सप्तहृत् ४१३९	त्रि सप्तावधि— एकविंशत्यवधि २१४८
३-चिच्छिदे क्रीडमन्यो २११५	३-क्रीडस्य मैक्षत २११७
४-तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता मणिपथार २११५	४-मुख यदि किमिन्दुना । सा इन्द्रियंदि यदि चनाश्वले लोचने किमुत्पल २११७
कदम्बकम् ६१९	
५-गौलस्य प्रणयेन याचत इति २१२०	५-गौलस्यो विनयेन याचत इति ११५९
६-काश्यपाय ऋतुविधिगुरवे दक्षिणीकृत्य पृथ्वी— २१२३	६-काश्यपाय भुनये दत्त्वाश्वमेधे महीम् २११९
दत्त्वा पृथ्वी जसधिरशानामधिने ग्राह्याय ४१४१	
भूतधात्र्या ऋतुपु गुणवते काश्यपाय प्रदाता ४१३९	
७-कन्दपंरुण्डूलमुजदण्डमडलम् २१२४/२५	७-दर्पकण्डूलदोष्ण २१२७
८-कार्तिकेयो विजय २११९	८-कार्तिकेयोवज्रेयः २११९
९-सक्रन्दननन्दन २१४८	९-सक्रन्दननन्दन ४१३९
१०-लोकोत्तर चरितमर्पयति २१५१	१०-लोकोत्तरकर्माणि ४१२३
११-त्वा-स्थित. २१४८	लोकोत्तराणि रामस्य कर्माणि ४१२३
१२-जे कैलासे कलिन्दे— ७१११	११-कैलासे तुलिते ४१३७
मानुषेण रावणपराजय २-३८१३९	१२-भृगुप्रसवात्पराजय ३१३७/३८
१३-विद्यतुज्ज्वलित दृष्टि ११४४/४५	१३-विद्यतुज्ज्वलितदृष्टि—नयने २१५८/५९
१४-कालानिध्यातिवि २१६२	१४-कालघ्नानलत्व २१२५
१५-पुत्रभाण्डम् २१६३	१५-पुत्रभाण्डम् २१४४, २१२, २१६०-६१

वाल्मीक्यायम्	महावीरचरितम्
(३)	
१-भगवान् विश्वस्य मित विश्वामित्रः ३।२।३	१-विश्वामित्रात्प्राप्य विश्वस्य मित्रात् १।५०
२-स्त्रीवध विचित्रित्मामुद्रः ३।३।४	२-प्रमायाय स्त्रैणेन विचित्रित्ममि ३।३७
स्त्रीति किं विचित्रित्मसे	३-मग्नस्य जृम्भक प्रयोगसहार १।४७
३-साक सेमे जृम्भकास्त्रं समन्ते ३।७	४-आरोपणेन पणप्रतिकार्यमार्य १।२७
४-नमपति धनुरेण यस्तद्वारोपणेन ३।२७	क्षैयम्बकस्य धनुषे १।४०।४१
५-ओङ्कारः ३।७९	५-गप तावदोङ्कार १।४०।४१
(४)	
१-दोदण्डाद्विनयाश्चितोघ्नतघनु ४।२०	१-दोदण्डाश्चितवन्त्रशेखरधनु १।५४
२-इष्टापूर्तपवित्प्रमाधमपद ४।३४	२-इष्टापूर्त विधे ४।३४
३-महावीरचरितावसोकनपरायने चिते न किंचित्प्रतिभाति ४।४१।४२	३-वस्तुकिंचित्प्रतिभाति ५।३४।३५
४-मज्जातिषेयो भव । भार्गवोऽतिथि भवति- ४।५१।५२	महावीरे सौत्कण्ठमिव मानसम् ५।३६
५-द्वाविशोऽपि ममैप ४।५३	४-स्व न पूज्यतमोऽतिथिर्यदि भवे. मज्जातिषेया वय २।५०
६-लूनक्षत्रियकण्ठमण्डलगनत्की ४।५८	५-पुनर्द्वाविशोऽपि ३।४१
लालकृत्याभूतः	६-कृत क्षत्रियकण्ठकदरमरत्की लालनिर्वापित ३।४८
७-भो विदेहेश्वरगुह्याल चारिण ४।५७	७-भो विदेहनगरीयता राजकुल चारिण २।१५।१६
८-विधायधरणीवन्धमराममपनक्षमणम् ४।८३	८-क्षरामा जानि सीरध्वमदगरपी कृत्यजगतीम् ३।२४
९-किं वीरस्य विकल्पनया ४।८४	९-तत्र का विकल्पना २।४८।४९
(५)	
१-भाल्यवान् उन्मुच्यवाचयति ५।३।४	१-भाल्यवान् गृहीत्वा वाचयति 'स्वस्ति' २।९।१०
'स्वस्ति'	२-उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तुण्डप्रोतशिर ३।३२
२-भुट्यदोर्दण्ड ५।७९	५।१९
(६)	
१-वृद्धो दशरथ मोष्यमुपास्ते गृहमेधिताम् । त्वया तु क्षीर कण्ठेन वनवासो निषेज्यते ६।३०	१-पुत्रसन्तान लक्ष्मोर्कपद्वृद्धेश्वाकु भिधूतम् त्वया तत्क्षीरकण्ठेन प्राप्तमारण्यक वनम् ४।११
२-एषोऽहम् ६।५६	२-एषोऽस्मि ५।१५
(७)	
१-ज्यावद-कार्तवीर्यार्जुन ७।५	१-हैहयमति. ४।१९
२-लङ्घितो गोप्यदवन् समुद्रः ७।१८।१९	२-गोणदबदिल ह्वय ६।१७

बालरामायणम्		महावीरचरितम्	
३-धूम्रो विजृम्भण०	७।२२	३-ज्याबिहया	३।२९
४-वारां मध्याद्	७।३४	४-ततश्च—उपविष्ट	६।१३।१३
(८)			
१-तंका दुर्गो जवधिपरिखा	८।५	१-दुर्गो य पितकूट	६।७
२-सलिते शित्ताभिरुन्तीयेतेऽनावूमिवा		२-अम्बुनि मग्गन्त्यन्तावूनि प्रावाण	
निमज्जयते ।	८।३१।३२	ध्ववन्ते	१।३९।४०
(९)			
१-तदित्यमभिदधानमपवित्रं वक्त्रम्		१-यत्किञ्चिद्वादिनो भुक्	
	९।४६।४७	ससुर्यान्	६।२१।२२
२-मरधौसस्त्यगृहोपिता	१०।८	२-इमाकन्धरगृहनिवास	७।३।४
३-पनिन्ननामय ज्योतिः	१०।८।९	३-एतिव्रतामयज्योति	७।३।४
		पतिव्रतामय ज्योति	६-६
४-निसर्गत पवित्रस्य किमन्यत्पावनतव		४-गुदाया क इवात्त शोधनविधिः	
	४।२७		१०।१३
५-मुञ्जं कलाकचि तलातलि च प्रवृत्तम्		५-मुष्ट्यामुष्टि कषाकचि	६।३१
	१०।१९		
६-एतस्म्यारि देवदारुविपिनं	१०।३१	६-एष ते सुपसिन्धुः	७।२७
७-एहोहि वत्स रघुनन्दन रामभद्र		७-एहोहि वत्स रघुनन्दन रामभद्र	
धुम्बामि तेऽघवदनम्	१०।३५	धुम्बामि तेऽघवदनम्	१।९५
८-श्रीरूपयावतारिणि	१०।७८	८-दक्षाभोरूपयावतारिणो	२।४५
९-भरत-शत्रुघ्नाभ्यामपिठति	१०।९५।९६	९-भ्रान्तप्रकृतिर्वाहृतोऽयमेति भरत ।	
			७।३०

धर्मिष्ठान शाकुन्तल, उत्तररामचरित एवं महावीरचरित आदि दृश्य काम्यो से अनेक भाव ग्रहण करने पर भी बालरामायण में कवि की मौलिक प्रतिभा अप्रतिहत ही प्रतीत होती है। बालरामायण के पात्र प्रादश होते हुए भी मानवीय धरातल पर चलते हैं। वे जन मानस के समीप प्रतीत होते हैं। इसीलिए ६७ पात्रों से मुक्त यह नाटक पात्रों का जगमग प्रतीत नहीं होता।

बालरामायण का कथावस्तु

सविधान-शिष्य शिल्प की दृष्टि से इस नाटक में एक न्यूनता दिखाई देती है और वह है—नाटक का अत्यधिक विस्तार। इसमें वस्तु-निर्माण में शैथिल्य भा गया है। अनावश्यक विस्तार के कारण नाटक में गति का अभाव लक्षित होना है। प्रायः प्रत्येक श्रृंग में ऐसे यति-प्रवाह-हीन मयल पाये जाते

हैं। किन्तु दूसरा दृष्टिकोण इस न्यूनता को गुण की सजा भी प्रदान कर सकता है। नाटक ध्वन्याव्य भी है। उसमें प्रसीतात्मक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। इससे रंगमंच की अपेक्षित सजावट की कमी की पूर्ति तो होनी ही है साहित्यकार को साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन का सुन्दर अवसर भी मिलता है। अतः हमारे काव्य नायक ने पद्मश्रुत-चक्रवाल, सायंकान्त, मध्याह्न, भूषोदय एवं सूर्यास्त का सरस वर्णन साहित्यिक सूत्रनात्मकता से अनुप्रेरित होकर किया है।

राजशेखर की वस्तुविन्यास-बन्धन उनकी निजी विशेषता में युक्त है। प्रसंबद्ध प्रतीत होने वाली घटनायें आधिकारिक कथा की परिपोषक हैं। प्रथम अंक में शुन शेष एवं तापस का संवाद, द्वितीय अंक में भृगिरिटि एवं नारद का कपोत-कथन, तृतीय अंक में गृध्रमिथुन-वार्तालाप, चतुर्थ में गुरु-शिष्य (भवभूति) वार्ता, नवम में यम का मृत्युलेखा-वर्णन, एवं दशम में अलका एवं सका की ममवेदनाभि-व्यक्ति मूलकथा की परिपोषक प्रमाणित होनी है।

कथा नाटक में दो प्रकार की कथा होनी है। आधिकारिक एवं आसंगिक। वात्सल्यमायण में आधिकारिक कथा रावणवध से संबद्ध है। आसंगिक अवस्था गौण रूप में तीन छोटी बड़ी सहायक उपकथायें निबद्ध हुई हैं। इसमें शुन शेष राक्षस-संवाद गृध्रमिथुन एवं गुरु-शिष्य संवाद तथा सीतास्वयंवर संवाद की प्रकृति कहा जा सकता है। ये कथायें आधिकारिक कथावस्तु के विकास में सहायक हुई हैं। अतः जिस अंक में ये प्रदर्शित की गयी हैं उसी अंक के पश्चात् ये कथा के लिए तिरो-हित कर दी गयी हैं। लुब्धक और विभीषण का कथा-प्रसंग "पञ्चाङ्ग" कहा जा सकता है। क्योंकि कथायें प्रधान वृत्त के साथ दूर तक (मेतुबन्ध से रामराज्याभिषेक तक) समानान्तररूप में चल रही हैं।

आसंगिक वृत्तों में शुन शेष और तापस संवाद को नाटक से हटा दिया जाय तो दर्शकों को रावण की तीव्र उत्पत्ति और सीतास्वयंवर में सम्मिलित होने की उसकी अभिलाषा का पता नहीं चल सकता। यह कथा खसनायक की पृष्ठभूमि को ठीक तरह से समझने के लिए सहायक है। दूसरे अंक में भृगिरिटि और नारद का वार्तालाप राम रावण के भावी युद्ध के कारण पर प्रकाश डालता है अन्यथा दोनों के युद्ध का रहस्य प्रकट नहीं हो पाता। गृध्रमिथुन, सुबेग एवं चित्रशिखण्ड के वृत्त आसंगिक होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसमें खसनायक के मानविक संघर्ष की पृष्ठभूमि का पता चमकता है। इससे यह निश्चित होता है कि इस नाटक की सम्पूर्ण आसंगिक कथा में आधिकारिक वस्तु का निर्दोष वृत्त है।

इस नाटक के प्रथम अंक में जनकमंदिर में तिरस्कृत रावण संकल्प करना है—

ससरम्भम्—शृणुत भो! शृणुत! निशाचरपते प्रतिहाम्
कुर्वन् मौर्वीनिवेश-वग-नमदहननि-स्पष्ट-टडकारटडक,
शम्भो. कोदण्डदण्डं वधिरितभुवन मूर्ध्नि स्वस्तपोऽपि ।
यस्तामेना वरीता रमयति तदसृक् चन्द्रहासो ममासि
वृथास्थि-वग्न्यशुक्नौकरण-भवरणत्कार-वाचालघार. ॥

राक्षसराज को इस प्रतिज्ञा में नाटक का बीज वर्तमान है। "यस्तामेना वरीता रमयति तदसृक् चन्द्रहामो ममासि."

जो सीता का वरण करेगा उसे चन्द्रहास (तनवार) का भी वरण करना होगा। इस कथन में ही नाटक के भावी संपर्प एवं विपत्ति के संकेत द्योतित हैं।

द्वितीय अंक में रावण-परमुरास का वाक्पुट मूल कथा-प्रवाह को कहीं विच्छिन्न न करदे इसलिए सीतास्वयंवर नामक सर्पक का आयोजन और उसमें रावण की कोष्ठपूर्ण उक्ति कहलाई गई है। इस दुष्प्रश्न कथा का पूर्ण विच्छेद नहीं होने पाता और कथानक पुनः सुगति धारण कर लेता है। इसे नाटकीय भाषा में बिन्दु कहा जा सकता है। नाटक का मुख्य संक्षेप खलनायक की मृत्यु डाटा स्थायी भ्रान्ति है। सीताहरण के कारण नायक और प्रतिनायक का मानसिक संपर्प बढ़ जाता है। इस संपर्प की परिणति राम-रावण युद्ध में होती है। संपर्प का फल रावण वध तथा राम-राज्याभिषेक के द्वारा होता है। यही उसका 'कार्य' समझना चाहिए।

इस नाटक के मातृवर्ष अंक में वैतालिक राम का यशोगान करते हैं। उसी समय प्रतीहार आकर उन्हें ऐसा करने से वर्जित करना हुमा कहता है—“कथम् ननु रामदेवेन निषट्मात्मोपवर्णनम् अदभ्यस्वर्गारोहणयुगे गदगण्डवधम्” इस कथन से कार्य की “प्रारम्भ” अवस्था होती है। इसी संदर्भ में “यत्न” की अवस्था भी प्रारम्भ हो जाता है। फल-प्राप्ति के लिए राम-रावण युद्ध का आयोजन तथा लंका में पहुँचने के लिए मेनुवन्ध का वर्णन कथा को इसी दिशा की ओर प्रवृत्त करता है क्योंकि यत्न में फलप्राप्ति के लिए मत्वर उपयोग लक्षित होता है। यत्न की अवस्था भी प्रथम आठवें अंक तक चलती है। “प्राप्त्यागत” का प्रारम्भ भी इसी बीच होता है। सेतुनिर्माण के समय सीता के बटे मन्त्र को देखकर राम शका-कुशकामो मे शोभाकुम हो जाते हैं। अपने प्रयासों पर विरत होने हुए उनका यह कहना है कि—“यिक् निष्कलं हनुमन् पवन तदप्यो, यिक् निष्कलं मममावन-मेनुवन्ध.” प्राप्त्यागता की चरण सीमा है।

इसी अंक में कटे हुए मस्तक के कृत्रिम होने का पता चलने पर राम-पक्ष में जो उन्माद उत्पन्न होता है—वह “नियताप्ति” का प्रारम्भ है। त्रिगुणित उन्माद से मेला शत्रुपक्ष का विनाश करती हुई आगे बढ़ती है जहाँ राम दशरुध का मस्तक काट देते हैं वहाँ ‘नियताप्ति’ ‘फलागम’ के निकट आ जाती है। सीता की प्राप्ति, राम-निर्वाण अवधि की समाप्ति तथा राज्याभिषेक के साथ ‘फलागम’ हो जाता है।

रावण की सीता के प्रति आभरण शत्रुत्व की भावना तथा राम के द्वारा रावण की मृत्यु तक अपने यशोगान पर पावन्दी “मृन्ध” मन्धि को सूचित करती है। रावण पक्ष में सीताहरण एवं राक्षसपक्ष में सीता-प्राप्ति के चल के स्वप्न में निर्माण तक का कथा भाग ‘प्रतिमुख’ मन्धि का निर्देश करता है। गर्भ-मन्धि का प्रारम्भ एवं निर्वाह राम-रावण के मानविक मर्त्य द्वारा होता है। रावण द्वारा कटे गए माया सीता के अंदर निर के कारण राम के मन में जो शोक उत्पन्न हो गया था वह तभी तथ्य को जानकर प्रतिबंध की उत्कट भावना में बदल जाता है। अनवरत मुड़ और अतत, रावण वध ‘अवमर्श’ मन्धि को प्रकट करता है। सीता-प्राप्ति तथा रामाभिषेक में ‘उपसंहार’ मन्धि की व्याप्ति लक्षित होती है।

विष्कम्भक भूत और भावी अर्थों की सूचना देने वाला विष्कम्भक होता है। इसका विस्तार अंक की छपेला कम होता है। इसके दो प्रकार हैं प्रथम वह है जिसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं, जिसमें मध्यम प्रकृति के बात वृत्तवर्तिप्यमाण कथाओं की सूचना देते हैं। मिश्र विष्कम्भक में नीचे और मध्यम प्रकृति के पात्रों द्वारा भूत और भावी भयंकर घटनाओं सूचित की जा सकती हैं।

बालरामायण में शुद्ध तथा मिश्र दोनों प्रकार के विष्कम्भकों की योजना की गई है। प्रथम अंक में शुन शेष तथा तापस के बालाचार में सीतास्वयंवर की तथा विष्णुमित्र के राम एवं लक्ष्मण को साने के लिए जाने की घटना का संकेत मिलता है। दोनों बात सस्वतभाषी हैं। अतः शुद्ध विष्कम्भक के आयोजन में यह कार्य सफल होता है। द्वितीय अंक में राम (परमुराम) तथा रावण के युद्ध की सूचना नारद एवं भृङ्गिगिरि के संवाद में दी गयी है। दोनों सत्सुत का व्यवहार करते हैं। अतः यहाँ भी शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग उपलब्ध है। तृतीय अंक में मिश्र विष्कम्भक प्रस्तुत है क्योंकि सुयोग सहायभाषी है। चतुर्थ अंक में उपाध्याय एवं मिश्र के संवाद में बटु प्राकृत भाषा के माध्यम में व्यवहार करता है। अतः पुनः मिश्र विष्कम्भक की प्राप्ति लक्षित होती है। प्रथम अंक में शुद्ध विष्कम्भक का प्राविष्करण है। अतः मायामय और भाव्यवान् का विशेषण सस्वत है। अतः एक में विष्कम्भक शब्द शुद्ध विष्कम्भक का सूचक है। किन्तु इसमें शूर्पणखा स्त्रीभाव होने के कारण

प्राकृत का अध्ययन करती है। सातवें धक्त में भावी घटना की सूचना प्रती-
हारी एवं कपूरकण्ड के वक्ताओं से दी जाती है। यहाँ शूद्र विष्णुम्भक का प्रयोग
है। साठवें धक्त में मुमुक्षु एवं दुर्मुक्षु में दुर्मुक्षु की भाषा प्राकृत है। धक्त- यहाँ विष्णु-
विष्णुम्भक प्रयुक्त है। नवें धक्त की घटनाओं को जोड़ने का कार्य चित्रगुप्त ने
शूद्र विष्णुम्भक द्वारा किया है। दशमधक्त के बघोषवधन में शूद्र का प्रयोग है।

प्रत्येक धक्त में विष्णुम्भक का विद्यान सराहनीय प्रतीत नहीं होता क्योंकि
जिम वस्तु का ज्ञान अधुना ड्राग मध्य है उसे धवण ड्राग सूचना मात्र के रूप में
पाकर दर्शक मनुष्य नहीं हो सकते ।

वचानक के अभिनय प्रणम में स्वगत, प्राकाश-भाषण एवं नेपथ्य का भी महत्व-
पूर्ण स्थान है। राजशेखर के स्वगत भाषण पात्र की अवस्था को प्रकट करने हैं।
सम्पूर्ण नाटक में पञ्चम स्थान हैं जहाँ स्वगतोक्ति का प्रयोग किया गया है। राज-
शेखर के शिल्प विद्यान की एक विशेषता नेपथ्य-योजना में है। सम्पूर्ण नाटक में
तीतीता^१ बार नेपथ्य का प्रयोग लक्षण होता है जो दर्शकों को निषेध्य दृश्यों से प्रवर्णन
कराना है। सम्पूर्ण नाटक का आचरण उसमें दक्षित वर्षा के प्रयोग में है। बाल-
रामायण के तीसरे धक्त में भीतास्वयंवर नामक नाटक के विद्यान को परवर्ती प्राचार्यों
ने सौन्दर्यगाथाक गुण माना है। उदयक विज्ञेयन में प्रतीत होता है कि राजशेखर
के रूपकों की बचावस्तु में प्रकृति, अवस्था, सन्धि का सुयोगन एवं विष्णुम्भक,
स्वगत, प्राकाश-भाषण एवं नेपथ्य का प्रयोग कुशलता-पूर्वक हुआ है। शास्त्रीय
मानदण्ड पर सही उत्तरने वाले उक्त रूपक नाटक-वार के समर्थ शिल्प-विद्यान का
परिचायक है।

बालभारत

राजशेखर के युग में एक विशेष राजनीतिक सजालि का आविर्भाव हुआ था।
इसकी प्रतिच्छाया उनकी "बालभारत" नामक द्वयस्त्रीय नाट्यकृति में दृष्टिगत होती
है। इस सम्पूर्ण नाटक का वचानक दो राज-परिवारों — कौरव एवं पाण्डवों —

१. बालरामायण पृ० १३, १४, १५, २०, २२, २४, ११२, २१, ८३, २२, ३४,
३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ६२, ८०, १०३, ६४, ६५, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१,
७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८३, ८४, १२१, १३६, १४४, १४५,
२४४, २४८, १३२, १३९, १४४, २२०, २२९।

२. बालरामायण पृ० १९, २४, २७, २८, ५२, ५८, ५२, ५२, २८, २९, ८४,
८८, १०४, १२५, १२९, १७८, १७८, १७९, १८०, १८०, १८२, १९२,
१९९, २२९, २२५, २२६, २२७, २२८, २३३, २३४, २५२, २५३, २७४,
२७९, २८३, २८४, २८५, २८६।

के कलह को लेकर चलता है। महाभारत पर आधारित होने पर भी कथानक नाटककार के समकालीन युग की समस्या में मग्न प्रतीत होता है। स्थिति यह थी कि महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्र—महीपाल और भोज द्वितीय—में राज्यारोहण के लिए मध्य छिड़ गया। बालभारत की प्रस्तावना में इस गृह-युद्ध का अप्रत्यक्ष संकेत है। वस्तुतः बौरव-पाण्डवों के व्याज से महेन्द्र-पाल के दोनों पुत्रों के बीच उत्पन्न द्वन्द्व की ओर ही बालभारत में संकेत किया गया है। फिर भी नाटक की अपूर्णता के कारण राजशेखर अपने अभिप्राय का पूरी तरह निर्वाह न कर पाये।

कथानक इस नाटक के राधावेध नामक प्रथम अंक का प्रारम्भ नान्दी से होता है, जिसमें शिव की स्तुति है। नन्दाचार्य सूत्रधार 'बालभारत' अथवा 'प्रचण्डपाण्डव' के विजय का परिचय देता है। यही नाटककार का परिचय भी प्राप्त होता है। प्रस्तावना के अन्तर्गत व्यास एवं वाल्मीकि के संवाद में नाटक की पूर्वकथा ज्ञात होती है। प्रमुख दृश्य में युधिष्ठिर भीमसेन आदि ब्राह्मण का वेश धारण कर स्वयंवर के मण्डप में उचित स्थान ग्रहण करने है। स्वयंवर मण्डप महर्षियों, ब्राह्मणों एवं राजाओं से भरा है। द्रौपदी स्वयंवरोचित सज्जा करके अपनी सखी के साथ मभामण्डप में जाती है। उसके असामान्य सौन्दर्य से पाँचों पाण्डव अत्यन्त प्रभावित हो जाते हैं। सामान्य औपचारिकता के पश्चात् बन्दी घोषित करता है कि जो मत्स्यवेध करेगा, द्रौपदी उसी का वरण करेगी। दुःशामन, शकुनि, जयद्रथ, दुर्योधन, बलभद्र, कामपाल, वामदेव, मात्यकि, शिशुपाल और जयसमन्त प्रमत्त करने पर भी जब मत्स्यवेध में असमर्थ सिद्ध होते हैं तब एकाएक भीषण कोलाहल से वातावरण गुँज उठता है। ब्राह्मणों की मण्डली से एक युवक वामदेव पर नजर गड़ाये हुए आगे बढ़ता दिखाई देता है। वह चारों ओर गर्व से दृष्टिपात करता है और एक ही प्रसंग में मत्स्यवेध करके सबको चकित कर देता है। द्रौपदी अत्यधिक प्रसन्न होती है किन्तु लक्ष्यवेधी के कुन और शील की जानकारी न होने के कारण मत्स्यवेध करने के पश्चात् भी द्रौपदी के वरण के सबन्ध में बन्दी चिन्तित हो उठता है। उपस्थित राजगण भी ईर्ष्या के कारण अर्जुन के मत्स्यवेध की सफलता पर शका प्रकट करते हैं। उसे स्वयंवर के लिए अपात्र घोषित

१ बालभारत-१-८।९ "भवन्नुचरा पञ्च आतरो वयम् पञ्चभिर्नाम समर्थास्तदभिनये । किं पुनरस्माकं पितृव्यपुत्रा ज्ञत मन्ति भरतपुत्रा । ते च तदभिनयेन विच्छन्ति न च ते शक्नुवन्ति । तन्निमित्तं च मत्स्यमाभि सह वैरं वनेति ।"

करते हैं; तिनहु घबुन सखंजुसों की चखहेनता करने हुए, द्रोपदी को गिर, राजपुत्रों को बेनाबनी देने हुए निरुप जाते हैं।

द्वितीय अंक में द्यूतप्रगम वर्णित है। विदुर घोर पण्डित के वार्तालाप में द्यूतबीड़ा की दृष्टभूमि का पता चलता है। बात यह थी कि राजगृह्य यज्ञ के समय दुष्योधन विमाल-मण्डल देखकर उसके लिए सानाधित हो गया था। फिर द्रोपदी ने उसका उपहास भी किया था। अतः उसमें द्वेष एवं प्रतिशोध की भावना भर उठी थी। तब उसने द्यूत द्वारा पाण्डवों को पराजित करने का पश्यन्त्र रचा। घुनराष्ट्र के माध्यम में उसने युधिष्ठिर को द्यूतबीड़ा के नियम प्रामाणिक किया। विनयशीलता के कारण अनिच्छा में ही युधिष्ठिर ने सामन्त्य स्वीकार किया।

प्रमुख दृश्य में द्यूतबीड़ा का प्रदर्शन है। अना भीमनी हार पहली बार में हारने पर युधिष्ठिर बीड़ा में विमूढ़ हो जाते हैं। परन्तु शत्रुनि “घातुत न निर्वर्ण्य द्यूताय च रणाय च” का स्मरण दिलाकर उन्हें खेलने के लिए विवश करता है। युधिष्ठिर द्यूत बीड़ा में बागीमना, हाथी, रथ, घोड़े और राज्य को दाँव पर लगाकर खो देते हैं। अन्त में शत्रुनि के उतारने पर अपने महिमा चारो भाइयों और द्रोपदी को भी दाँव पर लगाकर हार जाते हैं। वे अन्तिम दाँव में पूर्णतः पराजित होकर तेरह वर्ष के लिए धरम्यवास का वरण करते हैं। दुष्योधन की आज्ञा में, दुःशासन द्रोपदी को वेश पर डबकर घसीटने हुए भरी मभा में लाता है, जहाँ मौखिक के साथ पाण्डव भी उपस्थित हैं। दुःशासन अमर वचनों से उसे अपमानित करता है और अन्त में उसे विरसत करने का दुष्प्रयास भी। तिनहु खींचे हुए स्याद पर नूतन वस्त्र के आविर्भाव के कारण वह चर जाता है। द्रोपदी समस्त गुरुजनों से निर्णय की माचना करती है। उसका वचन है कि जब युधिष्ठिर ने स्वयं को दाँव पर लगा दिया और वे पराजित हो गए हैं, तो उन्हें उसे दाँव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं था। उसकी माचना निष्फल हो जाती है। सारी सभा जड़-मूक दिखाई देती है। केवल विवर्ण द्रोपदी ही दयनीय दशा से व्यथित होकर कौरव-पक्ष को त्याग देता है। द्रोपदी, दुष्योधन को आप देती है तथा बेनाबनी देती है कि भीम शीघ्र ही इस गहंणीय कृत्य का भीषण प्रतिशोध लेंगे। भीम भी उत्तेजनापूर्ण शब्दों से सौ मौखिकों को मारकर दुःशासन के रुधिर-पान तथा रुधिर-लित हाथों से द्रोपदी की बेनी बाँधने का सवत्स करता है। इस पर शत्रुनि उन्हें वनगमन का आदेश देता है और अंक समाप्त हो जाता है।

कथानक का स्रोत - इस नाटक के प्रथम अंक में स्वयंवर तथा द्वितीय अंक में द्यूतबीड़ा एवं द्रोपदी-वस्त्रापहरण की कथा है। कथावस्तु का आधार व्यासप्रणीत

महाभारत है। द्रौपदी स्वयवर की घटना आदिपर्व के पाँच अध्यायो मे (१७६ से १८०) है। नाटक के प्रथम अंक मे राधावेध का यही आधार है। द्वितीय अंक की प्रस्तावना का आधार द्यूतपर्व (अ० ४३ से ५२) में मिल जाता है। द्यूतक्रीडा भी महाभारत के द्यूतपर्व में ही है। द्रौपदी-वस्त्रापहरण की कथा अनुद्यूतपर्व मे वर्णित है। इस प्रकार प्रथम अंक आदि पर्व तथा द्वितीय अंक सभा पर्व पर आधारित है।

‘वासभासत एव महाभारत की कतिपय उक्तियों मे अत्यधिक समानता है। तुलनात्मक अध्ययन मे हमे निम्न समताये दृष्टिगोचर होती हैं —

महाभारत	वातभारत
१ न च विप्रेष्वधिकारो विद्यते करणं प्रति । स्वयवर शविष्याणामितीय प्रार्थना श्रुति । (१-१८०-८०)	१ ३ ३ । ब्राह्मण मुञ्च विप्लवमु धृत्ययंवीथी स्मर । अत्रस्याप ननु स्वयवर विधावेकाधिकार स्थित । (१-८२)
२. ग्राहूतो न निवर्तये (२-७-१३)	२ ग्राहूतो न निवर्तये कदाचित् (११-५२-१६)
३. एको भर्ता स्त्रियो देवैर्विहित कुरु-तन्दन । ह्यय, अनेकवशात्ता वन्ध-कीर्ति विनिश्चिन्ता । (२-६१-३५)	३ पञ्चवाना या कलत्रम् (२-३७) हे द्रौपदि, त्यमसि कात्र पति-व्रताना कि द्रुष्ट पञ्चपुरया वनिता-कलत्रम्
४ महदनु कपंति तालमात्रम् (२-८६)	४ उत्पादितमहाताल (१-१८०-१८)
५. जग्राह केसोपु नरेन्द्रपत्नीम् या राज-सूयावभूषे जनेन । महाकनौ मन्त्रपूतेन मिक्ता (२-६०-२२ २३)	५ पूता या राजसूयावभूषपरिमं मन्त्रपूत पयोनि — केसोव्वाकृष्य माणाम् (२-३७)
६. सर्वे एवेन्द्रकल्पा गुरुस्थेमान गुरुदेव सर्वे । तेषामग्रे नोत्सहेस्यातुमेव ।	६ कथमेकवस्त्रा भूत्वा गुरुनरेन्द्रपुरतः सधरिष्ये (२।३९-४०)
■ ग्राह्यमाणे बसने द्रौपद्यास्तु वि-शाम्पते । तद्रूपमपर वस्त्र प्रादुरा-सीदनेका २।६१।४१	७ यावदेक दुरददुहितु कृष्यते वस्त्र-मस्यास्तत्तयानेन्यद्रुवति पिद-धत्तावदङ्ग ततश्च ।
यदा तु वासमा राजि सभामध्ये समाचिन । ततो दुशामन थान्तो प्रीडित समुपाविशत् (२।६१।४८)	खिन्न चर्तनम करत वाससा चैप राशिस्लन्मन्येभ्यो त्रिभुवनमनो-मोहिनी वेत्ति विद्याम् (२-४०)
■ भव याज्ञमेनि एकाव्वरा वाप्यववा विवस्त्रा (२।६०।२७)	८ नन्वपनयाम्येकवस्त्रता कोटवी-करणेन (२।३९।४०)
९. वृष्णा गमेवेत्तभिभाषमाणा नृपा-सनेभ्य सहनोपतस्थु । (१-१७८-३)	९ समन्तत समुत्तरति वृन्द नरेन्द्रा-णाम् कथमहप्रविक्रमा सर्व एव धनुरारोपयितु सरमन्ते । १।३३

महाभारत और बालभारत :

बालभारत के नाटककार ने महाभारत के कथानक में निम्न परिवर्तन किये हैं :—

१—महाभारत में राजपुरोहित निमन्त्रित अतिथियों का सत्कार और गृण-गान करता है।^१ जबकि नाटक में धृष्टद्युम्न इस कार्य को सम्पन्न करता है।^२

२—महाकाव्य में धृष्टद्युम्न सीमित शर्शों में अतिथियों के कुल कील का परिचय देता है। वही धोषणा भी करता है।^३ बालभारत में बन्दी यह कार्य बड़े विस्तार से सम्पन्न करता है।^४

३—महाभारत में अर्जुन जब सस्यवेध के लिए जाने लगते हैं तो कुछ राजा-गण उनका विरोध करते हैं। कुछ उन्हें धनुर्विद्या में प्रशिक्षण देते हैं किन्तु अर्जुन नम्रता में बाण ग्रहण करके एक क्षण में सस्यवेध कर देता है। प्रसन्नता में देवयान पुष्पवृष्टि करते हैं।^५ बालभारत में यह घटना परिष्कृत रूप में उपलब्ध है। अर्जुन शर्व से चारों दिशाओं में दृष्टि डालते हुए भागे बढता है। उसही चेष्टाओं से सगता है कि उसमें धनुष को चूर-चूर करने की क्षमता है। जैसे ही वह धनुष उठाता है, भीम धरा के विदीर्ण होने के भय से सम्हानने है। अर्जुन यशस्वी होते हैं।^६

४—महाभारत में द्रौपदी के सौन्दर्य से पाण्डवों के कामग्रस्त होने का वर्णन है।^७ नाटक में वे केवल कामानुभव ही नहीं करते, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करते हैं।^८

५—महाभारत में युधिष्ठिर द्यूत क्रीडा में अपनी सम्पत्ति हार जाने के पश्चात् क्रमशः नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम को और फिर स्वयं को तथा अन्त में द्रौपदी को बाजी में लगाते हैं। लेकिन नाटक में वे सर्वप्रथम स्वयं को और फिर क्रमशः भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और अन्त में द्रौपदी को दांव पर लगाते हैं।

६—महाभारत में प्रत्येक राजा सस्यवेध के प्रवास में विफल होने पर भूमि पर प्रमत्त होकर गिर पड़ता है। बालभारत में दुःशामन पाप की ओर बढता है,

१. महाभारत आदिपर्व. १७६

२. महाभारत आदिपर्व. १७६-७७

३. महाभारत आदिपर्व. १७८

४. महाभारत आदिपर्व. १७८

२. बालभारत १।२५।२६

४. बालभारत १।३२-३४

६. बालभारत १।३५।३६।३८

८. बालभारत १।३७।२८।२९।३०।३१

किन्तु तीन चार पग चलने पर सज्जन होकर लौट जाता है। कुछ नरेन्द्रपण चाप को स्पर्श करने में भी कतराते हैं और कुछ प्रयत्न तो करते हैं किन्तु असफल हो जाते हैं।

७—महाभारत में कर्ण को चापग्रहण किये देखकर द्रौपदी कहती है कि वह सूत से विवाह नहीं करेगी।^१ परन्तु राजशेखर के नाटक में इस घटना का उल्लेख नहीं है। बन्दी कर्ण की सफलता के प्रति आश्चर्य होकर द्रौपदी को भागे दड़ने के लिए कहता है।^२

८—महाभारत में उक्त पण को मत्स्यवेद्य^३ कहा है तो नाटक में राधावेद्य।^४

९—महाकाव्य में, कृष्ण द्रौपदी के बस्त्रापहरण के समय उनकी सहायता करते हैं।^५ नाटक में कृष्ण के स्थान पर त्रिभुवन-मोहिनीविद्या उल्लेख है।

दो अंकों के पश्चात् नाटक मधुर छूट जाता है। यदि वह पूरा हो जाता तो हमारे सम्मुख अनेक मनीष उद्भावनायें प्रकट हो पायीं।

विद्वत्शालभञ्जिका

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नवम शताब्दी के शक्तिशाही राष्ट्रकूट-वंश में गोविन्द चतुर्थ नामक एक कामरूप बिलामप्रिय शासक का नाम भी आता है। इस वंश की प्रतिष्ठा के बावजूद बरने के लिए, मतिपरिपक्व ने उसे पदच्युत किया तथा उसके स्थान पर उसी वंश के उत्तराधिकारी प्रमोदधर तृतीय को राज्यसत्ता प्रसादी। प्रमोदधर तृतीय का कलचुरि वंश से वैवाहिक सम्बन्ध था, क्योंकि उनकी पत्नी कन्दुवदेवी कलचुरिनिज युवराजदेव की पुत्री थी। इन दम्पति से उत्पन्न कृष्ण तृतीय ने इस सम्बन्ध की घोट दुर्गन्ध दूर करने वाला युवराजदेव पर प्रानमन किया, किन्तु स्वल्प पराजय के पश्चात् युवराजदेव ने पुनः अपनी कतिन दुव बना ली। उनकी यह विवशता कभी तक त्रिपुरी के लोभी की जिह्वा पर बनी रही।

राजशेखर इस विषय महोदय के अक्षर पर त्रिपुरी में ही थे। उनकी विद्वत्शालभञ्जिका नर्तिका हमो प्रथम में खगुमि पर अक्षतरि की रधि थी। राज्य-परिपक्व ने सम्भवतः नें जब अपने राजा को राज्य (दृश्य) नायक के रूप में देखा तो वे मद्मद् हो गये। युवराजदेव का मनी मावमिध स्वयं को धातुराज्य की भूमिका

१. महाभारत भाद्रपद १७८

२. महाभारत भाद्रपद १७६

३. महाभारत ६१-६०

४. राजभारत १-३९

५. राजभारत १-२३।२३।२३।२३

में उपस्थित पावर निहाल हो गया। सारी परियद् “खरबुलितिलको बतेंते चक्रवर्ती” इन शब्दों से गुंज उठी।

यह ऐतिहासिक घटना है जो विद्वज्ज्ञानभञ्जिका नाटिका के वस्तु-सविधान में सलग्न दिखाई दे रही है। नाटककार ने ऐतिहासिक कथावस्तु को शृंगार-प्रधान सविधान में इतनी कुशलता से गुम्फित किया है कि वस्तुतः विपरीत होने पर भी दोनों घटनाओं में तादात्म्य स्थापित करने के कारण वह अन्त तक आकर्षक बनी रह सकी है।

कथावस्तु : सम्राट् विद्याधरमन्त्र के मामन्त्र चन्द्रवर्मा को पुत्रीरत्न की प्राप्ति तो हुई, किन्तु निष्पुत्र होने के कारण उसने दूतों से सम्राट् को पुत्रोत्पत्ति की सूचना भिजवा दी। सम्राट् विद्याधरमन्त्र का मन्त्री भागुरायण अतिकुशल व्यक्ति था उसने उस पुत्री को पुत्रवेश में मँगवा लिया। पश्चात् एक विश्वन्त परिवारिका को अपने विश्वास में लेकर यह बनसाया कि यह पुत्री जिमका नाम मृगाक्षवर्मा है, मृगाक्षवली नामक स्त्री है। उसके साथ विवाह करने से मुदराज चक्रवर्ती हो जायेंगे। अतः वह सर्वप्रथम मृगाक्षवली को प्रिय सखी बने तथा राजा के डम बायें को सज्जन बनाने में मद्दत दे। विद्याधर की स्वीकृति के पश्चात् भागुरायण ने उसे आदेश दिया कि वह मृगाक्षवली को भवन-भित्ति सचार-गृह में रखे जिससे राजा उसे स्वप्न में देख सके। मृगाक्षवली ने विद्याधर के कथन पर विश्वास रखकर राजा के दर्शन होने ही उसे अपना अच्छरिथन हार चढ़ा-कर उसकी अर्चना की, जिसमें अनुरूप पनि मिले। विद्याधर की सम्पत्ति में मृगे पर राजा को अपने दर्शन दिये, कैलिकलास नामक वासगृह की एकदिकमय दीवारों पर अपना चित्र चित्रित कराया। पश्चात् स्पर्श की दीवार की छाड़ में पुनः दर्शन दिये। अपने रूप से सर्वथा मिलती हुई शाल-भञ्जिका निमित्त करायी। रहने वाली की खोली पर बन्दुख बीज की। अनेक विलामों का प्रदर्शन करती हुई उस सुन्दरी को देखकर राजा उस पर पूर्ण रूप से आसक्त हो गया, तथा मंत्री भागुरायण का निव्यानवे प्रतिशन बायें भी सफल हो गया।

इस नाटिका की व्यावस्तु इस पद्यन्त के आधार पर चार अंकों में बँधी हुई है।

प्रथम अंक का आरम्भ बड़ा ही मध्य है। स्वप्नदृष्ट नायिका का स्मरण करने हुए मुन्ताविक गंगा विदूषक ने कहा है “यदि उगता मृग है, तो चन्द्रमा की

भावश्यकता नहीं है। उसके शरीर की कान्ति की तुलना में सुवर्ण निष्फल है। उसकी भौहों के सामने कामदेव का धनुष तुच्छ है। अधिक क्या बहें? इन घनावश्यक वस्तुओं का पुन-निर्माण करने में विधाता का सृष्टिब्रम व्यर्थ सा लगता है। विदूषक राजा को इस अपूर्व भोगावली में विस्मित हो जाता है। राजा पुन नायिका को स्मरण करता है। दोनों गवाक्ष-द्वार से प्रमोदोद्यान में प्रविष्ट होते हैं। राजा को स्फटिक भित्ति की ओर से नायिका का आभास होता है। वह हिडोले में झूलती हुई, चन्द्र की आन्ति करती हुई दिखाई देती है। दोनों आगे बढ़ते हैं। स्फटिक की दीवारों में सावार नायिका को देखकर राजा घबाहू हो जाता है। वही शाल-भजिका में उत्कीर्ण नायिका को देखकर वह अपना मोतियों का हार नायिका के गले में डाल देता है। शालभजिका में लिखी पंक्ति "विद्यसे सोम्येय कतरदिह नाङ्ग सधर्मा" पढ़ता है। उसी समय पुन उसे नायिका की आन्ति होती है, क्योंकि वह कैलिकेलास के पीछे से अस्पष्ट पद-चिह्न छोड़ती हुई निकल जाती है। नेपथ्य में माध्यन्दिनी के सुखकर होने की कामना व्यक्त की जाती है और राजा तथा विदूषक दोनों मध्योपामना के लिए निकल पड़ते हैं।

दूसरे अंक में तरंगिका और कुरंगिका नामक दासियों के वार्तालाप में ज्ञान होता है कि राजा के मन में (राज्यपरिभ्रष्ट चण्डोपेन की दुहिता) कुवलयमाला समाई हुई है। इन मौन के घाने की आशका से रानी उसका विवाह मातुल-पुत्र भृगाक्षरमा से करना चाहती है, जिसमें चन्द्रवर्मा की भागा का स्नेह भी दंगित होगा और रानी का लक्ष्य भी पूर्ण होगा। इसी प्रसंग में वह धार्य चारायण का डमरुक (वधू वेश में उपस्थित घंट) में अपनी विवाह करगना चाहती है। प्रमुख दृश्य में अपनी विवाह दिशाया जाना है। मिथ्या विवाह में कुपित होकर विदूषक निराल जाता है। पुन नायिका को कदुक व्रीडा में मग्न दिखाया जाता है। राजा और विदूषक उस नायिका का अनुसरण करते हैं। उन्हें शिष्ट सान्तर मित्रता है जिसमें धीरे-धीरे वर्णन है जो सभी अंगों में निवार पैदा करता है, किन्तु नेत्रों में एक विशेष प्रगल्भता उत्पन्न कर देता है। नेपथ्य में भृगाक्षरमा की तथी उससे परिपक्व प्रणय एवं विरहजन्य व्याधा का वर्णन करती है। राजा को उसकी उन्मादावस्था का बोध होता है। नेपथ्य में सायबालीन मन्थ्या की सूचना दी जाती है।

तृतीय अंक में विधवा तथा एव गुणधरा के वार्तालाप में मंत्री भागुरायण के रहस्य का उद्घाटन हो जाता है, तथा नायिका की बहनी हुई विरह वेदना का भी। इसमें मिथ्या विवाह में चण्डमण चारायण देवी की छात्री की सदृशी की छवना

होता है कि 'नर्मदा नदी की लहरों से प्रतिध्वनित त्रिपुरी नगरी में केयूरवर्ष महाराज को पश्चिम में मगानों के उद्गम से लेकर पूर्व में काश्याधीश तक, पवित्र दक्षिण प्रदेश से पश्चिम समुद्र तक और शकर जी की जटाओं से बिरी हुई मय जी के द्वारा अभिनन्दित क्षीर सागर तक का चक्रवर्ती पद प्राप्त हो गया है।

ब्रह्मा विष्णु और महेश के स्तुतिपरक भरतबानस में नाटिका समाप्त होती है।

कथावस्तु की समीक्षा:—विद्याधरभग्न तथा मृगाकावली की प्रथमकथा हम नाटिका की वस्तु है। उक्त कथा सम्पूर्ण न टुक में व्याप्त है और सत्य-प्राप्ति भी इसी से सम्बद्ध है। धार्य चारायण का मिथ्याविवाह, तथा मेघना का जीवन-दान प्रासंगिक कथावस्तु है।

नाटककार ने मुमूर्ति के लिए नाट्य-शिल्प में विष्कम्भक एवं प्रवेशक नामक प्रयोगोंपरको का भी विधान किया है। प्रथम धरु के 'मुद्रितलम्भसचार' 'वासगृह की सूचना' विष्कम्भक द्वारा तथा द्वितीय धरु में 'तरंगिका' एवं 'कुरंगिका' के वातावरण में प्रतीक विवाह-प्रसंग का निर्देश, तृतीय धरु में मन्त्री भागुरायण की पट्टवन्त कथा का उद्घाटन तथा चतुर्थ धरु में मृगाकावली एवं कुवलयमाला के विवाहों की सूचना प्रवेशक द्वारा प्राप्त होती है। नायिका की विरहवशा, सूर्योदय एवं चन्द्रोदय का समय पर प्रवेशन न हो सकने के कारण उन्हें 'नेपथ्य' से सूचित किया गया है। प्रसंगानुसार स्वगत^१, प्रकाश^२ एवं अपवर्णित^३ का भी विन्यास किया गया है। ये समस्त उपकरण नाटिका को अभिनेय बनाते हैं। नाटिका में कार्यवस्थाओं का भी प्ररक्षण किया गया है। प्रथम धरु में नायिका के स्वप्न-दर्शन में राजा में अकुरित प्रणय-भावना "धारम्य" नामक कार्यावस्था को प्रगट करती है। इसी धरु में नायिका को पहले निवृत्त में, फिर शाश्वतिका में विष्ट, तत्पश्चात् मितिवृत्त की ओर में देखकर राजा का प्रोत्सुह्य उत्तरोत्तर वक्रता है। द्वितीय धरु में नायिका की प्राप्ति के लिए धार्य चारायण की सहायता में दिये गये राजा के सारे प्रयास 'यत्न' नामक कार्यावस्था को सुदृष्ट बनाते हैं। "प्राप्त्यका" का मरेत तृतीय धरु के नायक-नायिका के मिलन-प्रसंग में दृष्टिगत होता है। चतुर्थ धरु में मृगाकावली मेनायक का विवाह एवं पञ्चमों पद

१. विद्यमानभविष्य पृष्ठ २, ५, ३१, ५०, ५१, ५३, ७३, ७४, ९०, ९१, ९७

२-३. वही पृष्ठ २४, ४३, ८९, ११०

४. वही पृष्ठ ११४, ११५

या^१, रत्नावली में वामवदत्ता सागरिका वा^२ और प्रियदर्शिका में वावसदत्ता प्रियदर्शिका का विवाह नायक के^३ साथ डमनियाँ करवाती है कि वह चत्रवर्ती पद से गौरवान्वित हो जाय ।

२—चारों नाटिकाओं की नायिकाएँ राजकुमारोत्पन्न हैं । विद्वशालभजिका में नायिका मृगाकावली लाटप्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की एकमात्र पुत्री है^४ मालविका राजकुमारी है, भाई के बन्दी हो जाने पर उसे छिपाकर लाया गया है ।^५ रत्नावली नाटिका की नायिका सागरिका मिहनेश्वर नरेश की पुत्री है ।^६ प्रियदर्शिका नरेश द्रुतवर्मा की पुत्री है । किन्तु नायिकाओं का यह रहस्य अन्त में ही उद्घटित होता है ।

३—मालविकाग्निमित्र को अपवाद माना जाये तो शेष तीनों नाटिकाएँ चार प्रको की ही हैं ।

४—चारों नाटिकाओं में विदूषक राजा का अधिग्रहण मित्र है । विदूषक की सहायता से राजा का प्रणय-व्यापार बाधाओं का अतिश्रमण करता हुआ सफलता की ओर बढ़ता है । नायिका से नायक का मिलन तथा अप्रत्यक्ष रूप में विवाह-प्रसंग विदूषक द्वारा ही सम्पन्न होता है ।

विभिन्नताएँ इन ममानताओं के अनिरिक्त कतिपय विभिन्नताएँ नाटिका में स्पष्ट रूप से लक्षित होती हैं—जैसे विद्वशालभजिका, रत्नावली एवं मालविकाग्निमित्र में नायिकाओं को भविष्य में योग्य पति मिलने की घोषणा मिलती है । किन्तु विद्वशालभजिका में घोषणा करने वाला व्यक्ति अन्य तीन नाटिकाओं में भिन्न दिखाई देता है । लाटाधिपति का दूत विद्याधरमन्त्र राजा की सभा में आकर मृगाकावलीके विषय में कहता है “दैवज्ञोचित चत्रवर्ति गृहिणिभावा मृगाकावली-देया यस्य चिदिन्दुमुन्दरयस पूतस्य पृथ्वीपते ।”^७ इसके विषय में दैवज्ञो ने यह बताया है कि चत्रवर्ती की गृहिणी होगी ।

१. मालविकाग्निमित्र-अज्जउत्तो दाणि इम पडिच्छदु । ५-१८-१९
२. रत्नावली-उज्जउत्त । एवं रत्नणावलि पडिच्छ । चतुर्थे प्रक १९-२०
३. प्रियदर्शिका-राजा हस्त प्रमारयति, वामवदत्ता प्रियदर्शिकाहस्तमपयति । चतुर्थे प्रक १०-११
४. विद्वशालभजिका-लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतिनिवत् तस्य पुत्री । प्रक १ श्लोक ८
५. मालविकाग्निमित्र-दायादवशगते भर्तृदारके माघवसेने तस्यामात्मेनापु-भूतिनाऽप्रमादम् ५।१२।१३
६. रत्नावली-परिजनमुज्जित्वा गूढमानीनेषा पञ्चम प्रक १।१०
७. विद्वशालभजिका ४।२०

मानविकान्निमित्त मे यह धोपथा मिद्धादेश के द्वारा मिलती है "मिद्धादेशकेन साधुना मत्नमस्य समादिष्टा आसक्त्वरमात्रमिय श्रेष्ठभावमनुभूय तत सद्गुण-मत्तुं गामिनी भविष्यति"।^१ परिव्राजिका मालविका का वृत्त बतलाती हुई कहती है कि सिद्धमन्त्रान्या ने कहा था कि एक वर्ष तक दामी का जीवन बिताने के बाद यह योग्य स्वामी प्राप्त कर सकेगी ।

रत्नावली नाटिका मे भी सिद्ध पुष्प भविष्य बतलाता है । यौगधरायण :-
"देव ! श्रूयता येय मिहलेश्वरस्य दुहित्वा मा सिद्धेनादिष्टा यथा योऽस्यो पाणि-
ग्रहण करिष्यति स साकेभौमी राजा भविष्यति" । यौगधरायण प्रत्नावली मे ही स्पष्ट कहता है कि हम मिहलदेश की राजकन्या के विषय मे सिद्ध ने प्राणीर्षाद दिया था कि जो हमके साथ विवाह करेगा वह ममय भूमण्डल का राजा होगा ।

निष्कर्ष यह है कि मानविकान्निमित्त और रत्नावली नाटिका मे प्राणीर्षाद देने वाला या भविष्य बयन करने वाला पात्र भी सिद्ध पुष्प है । यह दोनों नाटिकाओं मे समानता है । हाँ, विद्वज्ज्ञानमजिका मे दैवज्ञ भृगुकावली के भावी जीवनका स्पष्टीकरण करता है ।

विभिन्नतायें : १. विद्वज्ज्ञानमजिका और रत्नावली मे नायिका के विषय मे कहा गया है कि वे जिसमे विवाह करेगी वह राजा चक्रवर्ती पर प्राप्न करेगा या समस्त भूमण्डल का राजा होवा किन्तु मानविकान्निमित्त मे चक्रवर्ती पर या सम्राट का उल्लेख नहीं है । केवल नायिका की उक्ति पर-प्राप्ति का बयन है ।

२. इन नाटिकाओं मे दूसरी विधता नायिका के प्रथम दर्शन के विषय मे है । नायक विद्याधरमल्ल नायिका भृगुकावली को प्रथमन. स्वप्न में देखता है तथा घामकन हो जाता है ।^२

मानविकान्निमित्त^३ और रत्नावली^४ नाटिका मे नायक अपनी नायिकाओं को

१. मानविकान्निमित्तम् १-१२।१३

२. सा क्वाग्रि म्वानविधौ दृष्टा वि० म० १-१५

३. स जनां देव्या. पार्श्वगने-मानविकान्निमित्त सं० १-३-४ ।

४. सीतावधनपद्मा कस्यन्ती पत्रपातपथिकः न. ।

मानममुरैति केयं चित्रकला राजहमीव । रत्नावली २।३

प्रथमतः चित्र में आनिखित पाते हैं जिनके मींदर्य में मुख होकर उन्हें साक्षात् देखने के लिये उत्सुक हो जाते हैं ।

३. विद्वज्जालभजिका में मेखला जीवन दान प्रसंग तृतीय अंक में आयोजित किया है । यह विदूषक की बुद्धिबलता का नमूना है । रानी के द्वारा सम्पन्न मिथ्या विवाह में अग्रसप्त नारायण^१ देवी की छाती की लडकी से उस अवसर पर बहसा लेता है ।

मालविकाग्निमित्र नाटिका में चतुर्थ अंक में नायक तथा नायिका समुद्रगृह में मिलते हैं । रानी इरावती को यह खबर मिलते ही वह अपनी मछी निपुणिका के साथ वहाँ पहुँचती है । समुद्र के द्वार पर मोये हुए विदूषक को नाडी में जगाती है । वह साँप मोप कहकर चिल्लाता है । यह मुनवर अन्नगृह में राजा विदूषक को बचाने के लिये निबल पड़ता है साथ ही राजा को रोकती हुई मालविका । दोनों को देखकर इरावती के क्रोध की सीमा टूट जाती है । राजा भी परेगान है । उसी समय पिगल बानर अपने पिंजरे में निक्कलकर गेद खेलती हुई वसुलक्ष्मी को भयभीत कर देता है । वह बेहोश हो जाते हैं । जब यह बार्ता रानी मुनती है । वह शीघ्र ही लौट आती है । अतः बानर-प्रसंग कथानव विकास में सहायक होता है ।

रत्नावली नाटिका में सागरिका राजा के दर्शन के लिये अत्युत्सुक है किन्तु दर्शन न होने के कारण निराश होकर चित्रपट्टी पर राजा का चित्र नूतन करती है उसकी मछी मुसगना उस राजा के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र छींचती है । चित्र दर्शन में ही सागरिका अपना मनोविनोदन करती है । उसी समय समीपस्थ कुंज में राजा और विदूषक मनोरंजन करते हुए दिखाई देते हैं । सागरिका का राजा के प्रति अनुराग तथा उसे न पाकर जीवन त्याग का विचार जिसे वह मुसगना के गामने शब्दों द्वारा प्रकट कर रही थी पजरम्भ सागरिका मुनती है । उन्हीं आलापों को राजा के ममस दुहवा देती है राजा को सागरिका की विरहव्यथा की अनुभूति होती है । नाटिका में बीज तथा मूल कथा का आरम्भ यही से हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्वज्जालभजिका को रति मेखला-प्रसंग से मिलती है जबकि रत्नावली और मालविकाग्निमित्र में यही कार्य बन्दर के छूटने में सम्पन्न होता है ।

१. वि० भ० भलीषविवाहविडम्बितो बहुडौ वाराग्रणो दे पडिनि दिवविमिदो-
तृतीय अंक ।

४. रत्नावती और मातङ्गिनिमित्र भी नायिकाएँ गानरित। और मान-वश जन्मन, राजकुमारी होते हुए भी नायक के मन पुर में दामियों का जीवन व्यतीत करती हैं। विद्वत्मानभजिषा में स्थिति विपरीत है। इस नाटिका की नायिका मृगाशवली (पुत्र रूप में) पुत्र घोषित करके भ्रष्टाई जाती है और नायक के प्रसाद में सम्मानपूर्वक रहती है। मत्स्यदेवी के मन में इसके प्रति विशेष ईर्ष्याभाव नहीं है। जराकि अन्य दो नाटिकाओं में महादेवी नायिकाओं से मरा ही ग्यः रहती है।

५. रत्नावती और मातङ्गिनिमित्र नाटिकाओं के नायक नायिकाओं का विवाह राजनैतिक कारण से मङ्गलियत है। इसे कार्यान्वित करने में मंत्रियों का प्रमुख हाथ है। वे कार्य को महम बनाते हैं जिसे पश्यन् की रचना करते हैं, और मदा प्रयत्नशील रहते हैं। उनके कार्य की सफलता नायक नायिका के परिणय में होती है। विद्वत्मानभजिषा में राजनैतिक उल्लेख नहीं है। रानी मृगाशवली विपरीत भविष्य घोषणा को मान्य करने के लिये तथा राजा को मनाशाम बनवनी बना देने की सान्ना से स्वयं नायक नायिका को प्रणय मूल में बांध देती है।

६. दोनों नाटिकाओं में नायिकाओं का परिचय उनके देश में प्राया हुआ सेवक देता है। मत्स्यदेवी उन्हें दी गई सन्तानों का स्मरण करती हुई अवि-बुधित होती है तथा पुरस्कार रूप में नायिका को राजा के हाथ सौंप देती है। विद्वत्मानभजिषा में नायिका मृगाशवली के देश में हुत आता है। वह पुत्र-जन्म का शुभ समाचार देता हुआ मृगाशवली के लिये उचित वर की मांगना करता है। राजा के लिये अतिरिक्त अन्य उचित वर न मिलने के कारण रानी मृगाशवली का विवाह राजा के साथ विधि-पूर्वक सम्पन्न होता है।

सुमनसक अध्ययन से स्पष्ट है कि नाटककार ने हर्ष की रत्नावती एवं प्रियदर्शिका तथा कालिदास के मातङ्गिनिमित्र को समझ रखते हुए भी नाटिका को यथामन्य मौलिकता प्रदान की है।

कर्पूरमञ्जरी सङ्कट : राजसेखर ने कर्पूरमञ्जरी सङ्कट एवं विद्वत्मानभजिषा नाटिका की यणता उपरूपको में की है। यह निर्विवाद है कि सङ्कट परम्परा की नींव राजसेखर ने ही डाली है। उनके पूर्व सङ्कट शब्द 'माटक' या 'शाडिक' इस विकृत रूप में भरहुनके शिलालेख में अस्तित्व में है। राजसेखर ने ही इस शब्द को (अर्थ के साथ मञ्जुस सामञ्जस्य स्थापित कर) प्रथम बार रंगमञ्च पर अवतरित किया।

कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना में स्थापक कहता है—“कथिद जेव छइलेहि—

“सो सट्टओ लिखणइ दूर जो णाडिआइ प्रणुहरइ ।

कि उण पवेमविस्वम्भनाइ केवल ण दीसन्ति”^१

विद्वानों का कथन है कि जिम प्रबन्ध में नाटिका का पूर्ण अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक की योजना न हो उसे सट्टक कहते हैं । उपर्युक्त उदाहरण में स्थापक द्वारा प्रयुक्त ‘विद्वान्’ शब्द हमारे मान्य कवि राजशेखर के लिये है । मत स्पष्ट है कि सट्टक एक प्रकार की नाटिका है । नाटिका के मन्त्र में भरत-मुनि से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक प्रायः आचार्यों ने अपने अपने मन्त्रव्य प्रकट किये हैं । इसमें धनजय^२ और भरत^३ द्वारा वर्णित नाटिका के लक्षणों को ही विस्तारपूर्वक दिया है और साहि-यदर्पणकार ने पूर्वपरम्परा का अनुसरण करते हुए भरत एवं धनजय के शब्दों को दोहरा दिया है । इसलिये नाटिका के विषय में ‘दर्पणकार’ का मत लेना यहाँ पर्याप्त होगा । उनके अनुसार—

नाटिका कल्पवृक्षा स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्गिका ।

प्रक्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृप ॥

स्यादन्त. पुरसम्बद्धा सगीत-व्यापृतायथा ।

नवानुरागा कन्यापुत्र नायिका नृपवशजा ॥

सम्प्रवर्तते नेतास्या देव्यास्वासेन शशिवत् ।

देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठ प्रगल्भा नृपवशजा ॥

पदे पदे मानवती तद्वश संगमो द्वयी ।

वृत्ति. स्यात्कंगिकी स्वताविमर्शा सन्धय पुन ॥

अर्थात् नाटिका वह उपन्यस्य है, जिसका वृत्त वर्तित होता है । उसमें स्त्री-प्राय ही अधिक चित्रित होते हैं । इसका चार अंको में समाप्त होना आवश्यक है । इसका नायक प्रधान राजवश का धीर-ललित प्रकृति कावा राजा होना चाहिये । नायिका का नायक के अन्त पुर से संबद्ध होना अथवा सगीतकला में निपुण होना, राजकुलोत्पन्न होना तथा नवानुरागवती कन्या होना अपेक्षित है । नायक नायिका का कारम्परिक रतिभाव देवी अथवा राजमहिषी के भव से युक्त तथा उनका संगम उसके प्रधान होना चाहिये । देवी या राजमहिषी, राजकुलोत्पन्ना, प्रगल्भा, पग पग पर मान करती हुई चित्रित की जाना चाहिये । इसमें ‘कंगिकी

१ कर्पूरमञ्जरी १-६ ।

२. दशरूपक . धनजय ३ ४३ ४८ ।

३ नाट्यशास्त्र : भरत १८।५७-६१ ।

वृत्ति का प्राधान्य रहना चाहिये । विमर्शसन्धि के अंगमात्र से सन्धि-चतुष्टय की रचना होना चाहिये ।

कर्पूरमञ्जरी की रचना करते समय राजशेखर के मस्तिष्क में नाटिका के उन सभी लक्षण विद्यमान थे किन्तु 'नाटिका' को 'सट्टक' का नेपथ्य-परिधान कराने के लिये उन्होंने जिस सामग्री की सहायता ली, वे ही भावें बसकर सट्टक की निजी विशेषतायें बन गयीं । जैसे—

(१) नाटिका में प्रयुक्त 'धक' के स्थान पर 'जवनिका' शब्द का प्रयोग ।

(२) नाटिका के नाम पर ही सट्टक का नामकरण ।

(३) नृत्य का अनिवार्य रूप से प्रयोग ।

(४) सम्पूर्ण पात्रों द्वारा मात्र प्राकृत भाषा का व्यवहार ।

राजशेखर के परवर्ती नाट्यकारों तथा आचार्यों ने उनके द्वारा दी गई 'सट्टक' की परिभाषा का समीक्षण करते हुए अपने अपने ढंग से उसे साहित्य में प्रतिष्ठित किया ।

आचार्यों में अभिनवगुप्त, हेमचन्द्र, सगरनन्दी, शारदातनय एवं विश्वनाथ ने सट्टक के विषय में विचार किया है । अभिनवभारतीकार अभिनवगुप्त के मतानुसार सट्टक, कोहल आदि द्वारा लक्षित 'सोटक' एवं रासक के समान ही नाटिका का एक भेद है ।

“उक्त व्याख्याने तु कोह्लादिनिक्षिप्तसोटक सट्टकरसकविस्वरूपं फलं नाटिकाया उदाहरणत्वादिति । अतएव न दशसम्यक्विभाषायां येन सट्टकादीनां त्यागः स्यात् ।

हेमचन्द्र ने केवल प्राकृत में ही लिखी गई विप्लव्भक्त एवं प्रवेश-रहित नाटिका को सट्टक माना है—

‘सट्टकञ्च कैश्चिद् । विप्लव्भक्त-प्रवेश-रहितो यस्त्वेकभाषया भवति अमरकृतप्राकृतया सट्टको नाटिका-प्रतिमः ।’

शारदातनय सट्टक-विषयक विवक्षित विचार प्रणाली के समर्थक हैं । राजा की भाषा के विषय में परवर्ती आचार्यों में भेदभेद हो गया था । इसकी प्रतीति शारदातनय के ‘नवदेत् प्राकृती भाषा राजेति कतिचिज्जगु’ शब्दों में भी जा सकती है ।^१ उक्त उद्धरण में शारदातनय ने सट्टक से

१. नाट्यभाम्नी भाग २ पृ. ४०७ ।

२. काव्यानुशासन हेमचन्द्र पृ० ४३२ ।

३. भावप्रकाशन शारदातनय नवम प्रकाशन पृ० २६९ ।

समस्त सन्धियों को बहिष्कृत कर दिया है । मगरनन्दी के चिन्तारो में सद्दृष्ट नाटिका का ही प्रतिरूप है । इसमें 'केशिकी एवं भारती' वृत्ति प्रधान होती है । उसमें रौद्र, बीर, भयानक एवं बीभत्स रस, तथा प्रथमार्ग सन्धि का प्रभाव होता है ।^१ धरु के स्थान पर यक्षनिना मण्ड प्रयुक्त किया जाता है । शौरमेनी, प्राच्या और महाराष्ट्री के माध्यम में पात्र वाग्व्यवहार करते हैं । राजा-प्राकृत-भाषा होता है और स्त्री-भाषा का बाहुल्य होता है ।

“सद्दृष्टं नाटिका-भेदो भूयभेदान्मकं भवेत् ।
 केशिकी भारतीयुक्तहीन-रौद्ररगादिनाम् ॥
 सर्वसन्धिविहीनश्च नाटिका-प्रतिग्रहम् ।
 भूयसेनमहाराष्ट्र-प्राच्य-भाषादिकल्पितम् ।
 भयानकानीयविच्छेद-चतुर्थ्यन्तरान्तरम् ॥
 छादनस्यस्तनध्रान्तिनिह्ववादिरामवात् ।
 न वदेत प्राकृतो भाषा राजेति कतिञ्चिद् ॥
 मागध्या शौरमेन्या वा वदेशजैति केचन ।
 नाटिकाप्रतिरूप यक्षिणेषो रणप्रत्य तद् ॥
 सद्दृष्टं तेन तस्याह भाषा ता प्राकृतो परे ।
 राजयोगर-चतुस्त तद् यथा कर्पूरमञ्जरी ॥

मलयविकान्तर यथाऽङ्के यवनिकयावच्छेदा भवति तथासापि । शौरमेनी-प्राच्यामहाराष्ट्रीयुक्तम् । स्त्रीवदामोऽपि प्राकृतपाठ यक्षिण वादरावण प्रभृति-भिरुक्तं राज सस्कृतपाठ । कर्माह प्राकृतपाठ । तत्र रूपकमिवेदकार्यमिति राजाऽपि प्राकृतपाठ कर्तव्य । सद्दृष्टं स्त्रीप्रधानत्वादुपस्मानुशेषत नृप स्त्रीवत्पठेदेव पाठस्य नियमो विधि ।^२

विश्वनाथ भट्ट ने सक्षिप्त सारमयित शब्दों में सम्पूर्ण सद्दृष्ट परम्परा के लक्षणों को उद्घाटित किया है । उनके अनुसार उक्त साहित्यशास्त्रियों के प्रतिरिक्त मनश्याम, रत्नदास, नयचन्द्र, विश्वेश्वर और मानेण्डेय ने भी कर्पूरमञ्जरी के प्रादर्श पर क्रमशः 'आनन्दमुन्दरी' 'चन्द्रलेखा' 'शृंगारमञ्जरी' 'रश्मामञ्जरी' एवं 'विलासवती' की रचना की है ।

१. नाटक रत्नकोष—मगरनन्दी पृ० १३३-१३४ ।

२. नाटक रत्नकोष मगरनन्दी, पृ० १३३-१३४ ।

क्योंकि नायिका से राजा के मिलने का समाचार पाकर रानी उसी घोर भानी है । कुञ्ज, धामन, किरान, वषंवर और सोविदल गोर बचाते हैं । नायक-नायिका चले जाते हैं ।

चतुर्थ जयनिका में राजा सौम्य की प्रवणता और काम की प्रश्रुता में व्यथित दिखाई देता है । वह सौम्य ऋतु की सेवनीय वस्तुओं का वर्णन करता है । उसे शांत होता है कि वर्षुरमंजरी को भी वाराहाम के कछोर नियंत्रण में रखा गया है । और दरवाजों को पत्थरों से नीरुद्ध करके डके दिया गया है । पूर्वदिशा में पाँच पैंजर हुमाने बानी, चमकती तनवारों से युक्त, हजार पैंजर सिपाहियों के साथ रक्षा के लिये नियुक्त की गई हैं । उसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में क्रमशः पाँच सैरिगिघियों और हजारों धनुष आते घोर डान तनवारों से लैम पैंजर सिपाहियों समेत नियुक्त की गई है । इन सबका अध्यक्ष पर पाँच कुमारी परिवारिकाओं ने, जो कि हाथ में सोने के डण्डे लिये हुए हैं, गह्रात रखा है । राजा को रानी की घोर से बटमारिनी महोत्सव देखने का निमन्त्रण मिलता है । कैलिदिमान पर चढ़कर राजा और विदूषक इस अवसर पर प्रायोजित चर्चरीनृत्य देखते हैं । पुनः एक बार भैरवानन्द आते हैं । इस समय वे गौरी-प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा कराते हैं । रानी द्वारा दक्षिणा के लिये शर्चना करने पर भैरवानन्द दक्षिणा के रूप में धनसारमंजरी का राजा के साथ विवाह भाँवने हैं । रानी हिमी दूसरी कन्या को धनसारमंजरी समझकर विराह रक्खी है, किन्तु धनसारमंजरी वर्षुरमंजरी ही होती है । धन रानी भ्रम में पड़ती है । वाराहाम में जाकर देखती है तो उसे वर्षुरमंजरी बँटी दिखाई देती है । चामुण्डा के मंदिर में भी वही स्थिति है, अन्त में भेद खुल जाता है । राजा और वर्षुरमंजरी का विवाह हो जाता है । उसे एक बर्तों पर भी बनायात मिल जाता धनसारमंजरी के साथ बधा की समप्ति होती है ।

बधावस्तु—वर्षुरमंजरी में चण्डगान एवं वर्षुरमंजरी को प्रणय बधा व गित । वे दोनों धनप्रोक्ता है । विषजना एवं विदूषक की वाच्यगोष्ठी, जो कि प्राणविक बधा के रूप में रखी गई है, प्रथम जयनिका के पान तथा धनवी है । इसमें गदग का प्रारम्भ वाचक बनाने में गह्रातम मिली है । विदूषक को उचित कि ऐसे राजकुल का बन्धाव हो जहाँ दासी बाटन के साथ प्रतिक्रिया करती है । तत्प्रापीन राजकुलों की स्थिति पर प्रकाश डालती है ।

१. वर्षुरमंजरी १-२० "हरिदत्त राघवजन्म पर जोडु जहि
बेदिमा बटमंज मध समीपिधार् दीकरि ।"

आधिकारिक कथावस्तु में पाँचो भयंकरप्रकृतियों (बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी और कार्य) का निर्वाह हुआ है। फलसिद्धि का प्रथम हेतु बीज होता है। भैरवानन्द की अद्भुत सिद्धि द्वारा अद्वितीय सुन्दरी कर्पूरमजरी के भवतरण से राजा चण्डपाल अत्यन्त विस्मित है। 'चिने लिहज्जदण वस्स वि सज्जमनी' (यह नायिका किस पुरण के हृदय पटल पर चित्रित नहीं होगी) — "जेण सोसण-मोहणप्पुहदिणो विज्झति म मग्गणा" — "। इसे देखकर कामदेव के शोषण और मोहम वाण मुझे व्याकुल कर रहे हैं—राजा के इन उद्गारों से "बीज" भयंकरप्रकृति की स्थापना हो गई है। इसके पश्चात् बीज उत्तरोत्तर विकसित होता है। नायक (राजा) नायिका का पारस्परिक पूर्वानुराग, दर्शनाभिलाषा इत्यादि द्वितीय एवं तृतीय जवनिका के अन्तिम दृश्य तक अविच्छिन्न बनी रहती है। यहाँ तक कथावस्तु के बिन्दु का प्रसार लक्षित होता है। चतुर्थ जवनिका में नायिका के कारावास से मूल प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है, किन्तु भैरवानन्द के सफल प्रयास से सद्दक का मुख्य लक्ष्य नायिका (कर्पूरमजरी) की प्राप्ति एवं परिणय-सिद्ध हो जाता है।

पाँच कार्यावस्थाओं—आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम—से पाँचो भयंकरप्रकृतियों का मयोग होना है। मुख्य फल की सिद्धि के लिये उत्कठा को "आरम्भ" कहते हैं। प्रथम जवनिका में बीज भयंकरप्रकृति के साथ ही "आरम्भ" की अवस्था भी प्रारम्भ हो गयी है। द्वितीय जवनिका में नायिका का प्रणयपत्र कि "अपने से प्रेम करने वाली हसिनी को कुकुमराग से सजाकर पुन भूल में ही उसे चक्रवाकी समझाने वाला हस्त उसे छोड़ देता है। यह मेरे दुःखद पापों का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें देख नहीं पाती हूँ" इस अवस्था को और भी प्रस्फुटित करता है। इसी सदर्भ में "यत्न" की अवस्था का भी प्रारम्भ है। नायक के यत्न में विदूषक एवं नायिका के यत्न में विचक्षणा फलागम के लिये प्रत्याशील है। तृतीय जवनिका में विचक्षणा एवं विदूषक के प्रयास द्वारा नायक एवं नायिका के मिलन के 'यत्न' की अवस्था फलागम की मोमा को स्पष्ट करती प्रतीत होती है। इसी समय रानी को वस्तु स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वह नायिका को कठोर नियंत्रण में रखती है। प्राप्त्याशा का यह सही रूप है। फल प्राप्ति की सम्भावना घूमि घूमरित होती है। बिन्दु भैरवानन्द द्वारा माँगी हुई गुरुदक्षिणा 'नियताप्ति' की दशा का आरम्भ सूचित करती है।

१ कर्पूरमजरी १-२७।

२. वही १-३२।

नियताप्ति गूढ है । 'जब तक दर्शक कर्पूरमञ्जरी को रंगमञ्च पर नहीं देख लेते, मनसारमञ्जरी उनके लिये पहेली बनी रहती है । विदूषक की यह उक्ति कि— "प्रिय मित्र मैं दुपट्टे में गौंठ बनाता हूँ, तब तक अपने हाथ से कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़ो" नियताप्ति को स्पष्ट कर देती है । चतुर्थ जवनिका का अवसान फनागम से होता है । राजा को कर्पूरमञ्जरी तथा चक्रवर्ती पद की प्राप्ति हय फनागम मुख से सम्पन्न हो जाता है ।

उपर्युक्त पाँच धर्म्य प्रकृतियों एवं पाँच कार्यावस्थाओं का क्रमिक सयोग पंचसन्धियों को उद्भूत करता है ।

कर्पूरमञ्जरी की प्रथम जवनिका में नायिका के दर्शन में सेकर नायिका के प्रणयपत्र द्वारा प्रणयनिवेदन पर्यन्त 'मुखमन्धि' का विस्तार माना जा सकता है । द्वितीय जवनिका से तृतीय जवनिका तक 'प्रतिमुख' सन्धि का निर्देशन है क्योंकि नायक और नायिका परस्पर मिलन के लिये प्रयत्नशील हैं । चतुर्थ जवनिका के प्रथम दृश्य में नायिका के बन्दी होने का वर्णन है । यह 'गर्भमन्धि' है । भैरवानन्द द्वारा नायिका को बन्धनमुक्त कर विवाहपीठिका पर आसीन करने के प्रयत्न-पर्यन्त 'स्रवमंससन्धि' तथा वहाँ में नायक नायिका के विवाह तक निबन्धन सन्धि की व्याप्ति मानी जा सकती है । कथानक का कार्यावस्था, धर्म्य-प्रकृति एवं सन्धियों में उचित गुम्फन राजशेखर के शिल्प कौशल का प्रमाण है ।

निष्कर्ष : केवल बालरामायण के कथानक में अनावश्यक विस्तार मिलता है जो वस्तु-सविधान में शीघ्रित्व उत्पन्न कर देता है । इस सृष्टि की उपेक्षा की जाय तो राजशेखर का वस्तु-सविधान सभी कृतियों में अच्छा हुआ है । शास्त्रीय पद्धति पर होने के कारण उसमें हस्तबन्धी सभी विज्ञेयतायें यथास्थान मिल जाती हैं ।

राजशेखर के दृष्टकों में चरित्र-चित्रणः—कथानक पात्रों की महायता से करने लक्ष्य को प्राप्त करना है । अतः एक का दूसरा तत्त्व चरित्र-चित्रण भी अवलोकनीय है ।

अन्तपुर की प्रणयलीलाओं का उद्घाटन करने वाली राजशेखर की दो कृतियों कर्पूरमञ्जरी एवं विद्वज्जालभञ्जिका के पात्रों की मध्या एवं उनके कार्य भी भिन्न नियत हैं । राजा, राजावा सहचर विदूषक, राज्य शासन के कर्मचारी मंत्री, सदेववाहक दूत, तथा स्त्री पात्रों में महादेवी एवं दूती, प्रतीहार, पतिचारिणी ने ही घटनाचक्र को घागे बढ़ाया है ।

बालरामायण : राम-कथाधिन नाटक होने के कारण राम के जीवन में मज्जन्धिन मर्त्य स्रोत में स्वर्ग्य पात्रों की सृष्टि दिखाई गई है । बालरामायण के

पात्र आदर्श होते हुए भी मानवीय घरातल पर चलते हैं । वे जन मानस के समीप प्रतीत होते हैं । इसीलिये ६७ पात्रों से युक्त यह नाटक 'पात्रों का जंगल' प्रतीत नहीं होता । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रधान पात्र राम, रावण तथा सीता हैं । इनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण नाटक में बिखरा हुआ है । पात्रों का बहुत्व इस नाटक की विशेषता है । इन तीन पात्रों को छोड़कर शेष पात्र सहायकों की कोटि में रखे जा सकते हैं । नाटक के समस्त पात्रों का वर्गीकरण मानुष एवं दिव्य श्रेणी में किया जा सकता है । दिव्य पात्र यदि मर्त्य लोक में अवतरित होता है तो उसे दिव्यमर्त्य कहा जा सकता है तथा यदि मर्त्य मृत्यु के पश्चात् या कारमकश दिव्य लोक में जाता है तो उसे मर्त्यदिव्य । इस आधार को ध्यान में रखकर पात्रों का विभाजन निम्नानुसार किया गया है ।

पात्र					
द्विज			दिव्य	मर्त्यदिव्य	दिव्य मर्त्य
	स्त्री	पुरुष			
जटायु			पुरन्दर	दमारय	
सुवेग	सीता	शुन शेष	चित्रगुप्त	कैकेयी	नारद
चित्र- शिक्षक	प्रनीहारी	मामामय	यमपुरुष		
	हेमप्रभा	रावण			
	सौदामिनी	ग्रहस्त			
	प्रमजनिका	जनक			
	सिन्दूरिका	शत्रुघ्न			
	शूर्पणखा	मृगिरीटि	पुरुष	पुरुष	
	कैकेयी	जामदग्न्य			
	सुमित्रा	माठर	सुग्रीव	बन्दी	
	कौशल्या	भूचीक	विभीषण	करकक	
	गंगा	पुलस्त्य	भगस्ति	ककालक	
	यमुना	विश्वामित्र	सिंहनाद	कुम्भकर्ण	
	त्रिजटा	राम	वशिष्ठ	चारणमिथुन	
	लका	सदमण	भरत	कपित्थ	
	अलका	मात्स्यवान्	शत्रुघ्न	दधित्थ	
	लोपामुद्रा	मान लि	सुमुध	हनुमान्	
		सुमन्त	दुमुल		
		वामदेव	समुद		
		कर्पूरचण्ड	उपाध्याय		
		चन्दनचण्ड	मधभूति		
		प्रतीहारी	कोहल		

नायक : इस नाटक के नायक राम हैं । नायक के समस्त गुण उनमें विद्यमान हैं । वे आत्मस्ताथा की भावना से रहित हैं । क्षमाशील अत्यन्त गंभीर, दुःख मुञ्च मे प्रवृत्तिस्थ, स्वाभिमानही किन्तु विनीत हैं । उनका हृदय कोमल है । वे भृत्य भ्रादि के अवसरो पर अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं । ऐसे अवसरो पर कोई उनकी स्तुति करे यह उन्हें सहन नहीं व्यक्ति को स्तुति तो तभी उचित है जब कोई अपना पराक्रम दिखावे । अतः वे राजपण-वध तरु अपनी स्तुति पर प्रतिबन्ध तथा देते हैं ।^१ आत्मस्ताथा के प्रति उनकी विरक्ति इस प्रसंग में दृष्टिगत होती है । नम्रता तो उनके रोम रोम में विद्यमान है । समर्प होते हुए भी वे समुद्र से मार्ग देने की प्रत्ययना करते हैं । परन्तु जब वह मार्ग न देने की घृष्टता कर, उनकी नम्रता को अवहेलित करता है तब विवश होकर उन्हें शस्त्र ग्रहण करना पड़ता है ।^२ परन्तु समुद्र की क्षमा याचना पर वे उसे क्षमादान ही नहीं करते, अपनी ओर से भी उससे क्षमा माँगते हैं ।^३ इस प्रसंग में उनकी विनम्रता, स्वाभिमान, और क्षमाशीलता की चरम सीमा दीख पड़ती है । राम भूचरुनो के प्रति धृदा रखते हैं । यही कारण है कि परशुराम से अधिक गस्तिशासी होने पर भी वे उनके क्रोध के सम्मुख नतमस्तक होकर क्षमा याचना करते हैं ।^४ फिर भी जब परशुराम प्रहमन्वता नहीं छोड़ते तो वे द्रुमुद्र के लिये परशुराम को ललकारते भी हैं । इस प्रकार राम में कोमलता एवं कठोरता का उचित विभण है । रामायण के नायक राम की पितृभक्ति की तुलना में बालरामायण के नायक राम की भक्ति कही अधिक है । दशरथ का वेश धारण किये यस की भी वे अवहेलना नहीं करते और चल पड़ते हैं । यह पितृ-भक्ति की पराकाष्ठा है ।

राम ने नमस्त गुणों की विद्यमानता देकर राजशेखर ने उनके नायकत्व एवं भादसं चरित को पुष्ट किया है किन्तु राम का परिणय नाटक में अत्यन्त वितम्ब से दिया गया है । दर्शक उनके गुणों का श्रवण प्रथम अंक में के प्रारम्भ से करते हैं किन्तु उनका प्रत्यक्ष दर्शन चतुर्थ अंक में ही हो पाता है ।

खलनायक : राजपण का चितण खलनायक के रूप में किया गया है ।

१. बालरामायण अध्याय ७।१८३-ननु रामदेवेन विविदमहामोपवर्णनमावशरथ स्वर्गारोहणश्रुते रादशकण्ठव्यम् ।

२. वही अध्याय ७ पृ० १८४-स्मृत्वा तदेहि वगर च गंभीर्य च, दृष्ट्वापुत्रं च गम घनुरच शिलीमुखारव ।

३. वही अध्याय ७ पृ० १८९-गंभीर्य भगवान् रत्नाकर नमस्ते नन्वह प्रशास्यं भगवतः सागरस्य तदेकवारमविनयो नयो ॥ क्षम्यता रामस्य ।

नायिका सीता के प्रति अनुराग और उसके भावी पति अर्चान् नायक से स्थायी शत्रुता रावण के खलनायकत्व का प्रमाण है । इसका सारा आधार सीतानुराग पर आधारित है । द्वितीय अंक में सीता का स्मरण तृतीय अंक के सीता स्वयंवर गर्माङ्क में सीता के प्रति उत्तुङ्गता एवं वरण करने वाले के प्रति विरोध उभरी इसी भावना को पुष्ट करता है । प्रतिद्वंद्वी राम को देखकर उसका घुन छीन उठता है । सीता के लिये वह घोर अपमान भी सह सकता है ।^१ यह बात वह स्वयं अपने मुख से कहता है ।

सीता के विरह में वह पागलों की तरह प्रताप करता है । प्रकृति की रमणीयता उसे सीता के सौंदर्य का आभास दिनाती है । मन्त्र-जानरी को बाल्य-विक समझकर वह उससे प्रणयनिवेदन करता है । मन्त्र-जानरी का रहस्य उद्घाटित होने पर वह मनोविनोदन के लिये पङ्क्तियों का आश्रय लेता है किन्तु उसकी विरहवेदना द्विगुणित होती जाती है । सीता हरण के विचार मग्न उसके मरितपक्ष में धूमने रहते हैं । राम के अवरोध को मना के लिये गप्ट करने की भावना भी उसके मन में स्थायी रूप से बनी रहती है । मेनुबन्ध में सीता के छल मन्त्र का फैलाने का उद्देश्य भी यही है । रावण अत्यन्त बीर है । वह कर्पाधर्मों का अधिष्ठाना है । उसे अपने पराक्रम एवं प्रभुता का अभिमान है ।

अन्य जनों को वह सुष्ठु समझता है । "अस्मिन्मृगयार्चिता हि पुनः परं परिभवरघातम् ।"^२ यह उसका आदर्श वाक्य है । क्रूरता उसकी सामान्य प्रकृति है । अपने स्वार्थ के लिये अपने ही परिवार को बलि देने पर भी वह बेबल रोकर ही सन्नोद कर लेता है । वह खलनायकत्व की बसोटी पर धरा गिरा होता है ।

सीता : नायिका सीता माया के पहले पौषों और फिर दसवें घर में रामायण पर निर्माद देती है । वह भी अद्वितीय सुन्दरी है । ब्रह्मा में मानो गारे समार के सौन्दर्य की निष्पेक्षर सीता में उद्देश्य दिया है ।

"महाभारतनिषेधेन विधानं वेदा"

रावण उमरे धूम्रवं शीतलं को देखकर मुग्ध हो जाता है । सीता को देखकर उसकी

१. भावरासायन अध्याय १ सू० २६—यदा सीता श्रेष्ठं आभार्यं सार्वपा
दम्बन्धं दृष्ट्वा तदा बभूव मोघा ।

२. भावरासायन अध्याय १ सू० २१—यत्पुत्रेण रावण-पराक्रमेण इत्यतो गुणार्जितम्

३. भावरासायन अध्याय १ सू० २३ ।

४. भावरासायन अध्याय २ सू० ४३ ।

वाणी मुखरित हो उठती है । इनकी निरुपम रूप-सम्पदा नाटकीय सघर्ष के मूल में है । प्रथम अंक में स्वयंवर के समय चक्रवर्ती राजशेखर को देखकर वे भय से काँप जाती हैं । शिवधनुष की ओर रावण को बढ़ते हुए देखकर पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं कि इसमें पहने कि रावण धनुष चढ़ाये, वह उसे अपने भीतर समा ले । स्त्रीमुलभ स्नेह में मीठा परिपूर्ण है । विदाई के समय वह रो पड़ती है, तथा पिता से माण्डवी श्रुतकीर्ति आदि को भी साथ भेजने का अनुरोध करती है । वनगमन प्रसंग में उसके गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ होता है । पथिक वधुएँ उसे शिक्षा देती हैं ।^१ फलों का भोजन, घने जंगल में निवास, मृग-चर्म की शय्या पर शयन इनकी दैनन्दिनी चर्या है ।

रथकारवी निवभन मृगचर्म शय्या
गेह गुहा विपुलपत्रपुटा धनाश्रय ।
भूल वल च कुगुम च फल च भोग्य ॥^२
पुत्रस्य जातमदवी गृह मेघिनस्ते

वे पति परायणा एवं गुरुजनो के प्रति धृढात्मा हैं । रावण-वध के पश्चात् अग्नि-परीक्षा में निष्कलुष भिन्न होने के पश्चात् अयोध्यागमन के समय उन्होंने भिन्न भिन्न देशों के दर्शन किये किन्तु स्वयंवर प्रसंग में उन्होंने भिन्न-देशीय राजाओं की जो विशेषताएँ बतलाई हैं वे न केवल उनके राजनीतिक ज्ञान का दर्शन कराती हैं, अपितु सम्पूर्ण देश के जन-जीवन एवं उनकी राजनीतिक हृत्पचलो से उसका सुपरिचय व्यक्त करती हैं ।

जामदग्न्यः परशुराम की भवतारणा द्वारा राजशेखर के नाटक को बीर रस पूर्ण बना दिया है । पहली बार परशुराम का रावण के साथ तीव्र सघर्ष होता है । और दूसरी बार वे राम के साथ सघर्षरत देख पड़ते हैं । रामायण में वर्णित परशुराम के गुण नाटकीय परशुराम में भी विद्यमान हैं । प्रसक्तानुसार इनकी जीवन घटनाओं यथा—पिता की आज्ञा में माता का शिरच्छेद,^३ इकतीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करना^४, कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का वध^५ आदि का उद्घाटन किया गया है । वे आज्ञाग्न वैश्वानर हैं ।^६ वे 'शुलगर्ववीथीगृह'^७ उपाधि से विभूषित हैं ।

१. बालरामायण अध्याय ५।३६ २. बालरामायण ६-४० ।
३. वर्ता मातृवर्षेन स बालरामायण । २।१३-पृ० ३२ । ४. वही २।१३-पृ० ३२ ।
५. त्रिमत्तावधि र्गंधिना क्षिनिभुजा २।१३-पृ० ३२ ।
६. क्षितिभुजामादग्न्य वैश्वानर म सक्त्वश्रुत्यर्ष वीथीगृह २।१३-पृ० ३२ ।
७. " वही " २।१३ पृ० ३२ ।
८. स धत्त महविभूत्वा मयस्समारम्भ-महायहगृहीत । ४।०-१

वे नित्य घनुर्यारी है। अनुदंशविद्याओं के मध्येना एव अध्यापक हैं, किन्तु राम द्वारा शिवधनुष के भग होने की मार्गा सुनते ही वे समस्त अध्यापन कार्य स्थगित कर देते हैं और मुठ की तैयारी करते हैं।

दशरथ : वे यशस्वी सम्राट् हैं जो इस जीवन ही में स्वर्ग-भोग की यात्राएँ करते हैं, तथा मरणोपरान्त स्वर्ग में रहकर भी मयेंलोक की सम्पूर्ण गतिविधियों से अपने बनाये रखते हैं।

दशरथ को सर्वप्रथम चतुर्थ भ्रम में राम-सीता-विवाह के परवान् मिथिला में दिखाया गया है। षष्ठ भ्रम में दिखाया गया है कि उनकी स्वर्ग यात्रा के समय जबकी दशरथ राम को निर्वासित कर देते हैं। भ्रम वे इस महान् दुष्कर्म में बलवित नहीं है। राम वनगमन का समाचार सुनकर भी वे जीवित हैं परन्तु सीताहरण का समाचार सुनकर वे सगम में जाकर प्राण त्याग कर देने हैं। परम हीर दशरथ की जीविनावस्था में ही सीता-हरण जैसी दुःखदायी घटना हो गई और उनमें क्षत्रियचित्त हीरत्व के स्थान पर असह्य उत्पीडन क्यों जागा ? 'धनु, धनु' कहकर वे चुप क्यों बैठ गये ? लगता है कि नाटककार तत्कालीन पुरुषत्वहीन, भ्रममय चरित्रों को दशरथ के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे, किन्तु यदि यही कारण है तो क्या वे उसे अन्य उचित व्यक्ति के द्वारा अभिव्यक्त नहीं करा सकते थे ? रामायण में दशरथ का स्थान गौरवास्पद है। नाटक में ऐसे पात्रों को इतना गर्हणीय दिखाना सगत प्रतीत नहीं होता। मातर्वे भ्रम में दशरथ की मृत्यु का उल्लेख है। नवम भ्रम में वे दिव्य रूप में राम-रावण-मुद्ध का दर्शन करते हैं।

जनक : नाटक में जनक की भूमिका अत्यल्प है। सीता स्वयंवर एव सीता विवाह प्रसंग में ही वे दिखाई देते हैं। शान्त, दान्त एव विरक्त होने पर भी वे रावण द्वारा की गई शिवधनुष की भवज्ञा से क्रुद्ध होकर अस्त्रग्रहण करने एव उनका निवारण करने के लिए आप देने तक को तैयार हो जाते हैं। इसका कारण है शिव के प्रति अगाध श्रद्धा और सीता के प्रति अपार स्नेह। सीता की विदाई के समय वे रो पड़ते हैं।

शतानन्द : शतानन्द और जनक एक-दूसरे पर आश्रित हैं। नाटक में दोनों एक साथ आते और जाने दिखाये गये हैं। सीता स्वयंवर एव सीता विवाह में जनक के कार्य भार को हलका करने की प्रवृत्ति शतानन्द के व्यवहार से प्रबट होती है।

धशिष्ट : कुत्सगुरु धशिष्ट को केवल प्रथम और अंतिम बार राज्याभिषेक के समय दिखाया गया है ।

नाटक में रामायण युद्ध प्रसंग से संबन्धित जिन पात्रों की गणना की जा सकती है, वे हैं—हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण, दक्षिण, कपित्थ, सुमुख, दुर्मुख, सिंहनाद, कुम्भकर्ण, कंकालक एवं करक ।

हनुमान् के चरित्र में राम के प्रति भक्ति-भावना की धमिल्यक्ति है । सेतु-निर्माण तथा सेनासंगठन के प्रति ये अत्यन्त उत्सुकशील है । सेनापतियों को आदेश देते हैं कि वे पर्वत उठाकर लायें । इनका युद्धों के सञ्चालन में विशेष योगदान है ।

सुग्रीव एवं विभीषण भी राम के सहायक रूप में दृष्टिगत होते हैं । दक्षिण एवं कपित्थ दो कानर हैं । जिनका सेतु-निर्माण में विशेष महत्व है । सुमुख एवं दुर्मुख राक्षस-पक्ष के दूत हैं, जो विजटा को युद्ध का समाचार देते रहते हैं । करक और कंकालकहरी कार्य के लिये निपुण हैं । वे राक्षसराज को युद्धवार्ता से परिचित रखते हैं ।

सिंहनाद और कुम्भकर्ण राक्षसपरिवार के प्रमुख सदस्य हैं । सिंहनाद राक्षस का पुत्र है । वह राम तथा लक्ष्मण को खतकारता है । किन्तु शीघ्र ही इसके दुर्ग का दलन हो जाना है । वह राम के द्वारा मारा जाता है । इसी प्रकार कुम्भकर्ण और मेघनाद की मृत्यु लक्ष्मण और लक्ष्मण द्वारा बतसाई बई है ।

कपित्थ पात्र घटना-निर्देश के रूप में दिखाये गए है । प्रथम अंक में शुभ शौच एवं स्नान की अवतारणा, द्वितीय अंक में कृमिरिटि तथा नारव का प्रवेश, तृतीय अंक में गृध्रमिदुल सुवेग तथा चित्रशिखण्ड का प्रदर्शन, चतुर्थ अंक में उपाध्याय शिष्य का दिग्दर्शन, पंचम अंक में मायात्म्य की योजना, छठे अंक में रामदेव, सुमन्त्र एवं रत्नशिखण्ड का प्रवेश, सातवें अंक में सुमुख, दुर्मुख की अवतारणा, नवम अंक में यमपुरुष का अवतरण, तथा दशवें अंक में अस्त्रका एवं संका का मानवीय चित्रण कथानक में मनन्वय या समाप्ति की दृष्टि से किया गया है ।

परिचारक वर्ग के अन्तर्गत ग्रहस्त, प्रतीहार आदि आ सकते हैं । कर्पूरचण्ड तथा चन्दनचण्ड वंशालिख है जो ग्रहों की सूचना आशयदाना के योगदान के साथ देते हैं । अन्दी-माध्यन्दिन मन्त्र्या गुरु प्रभात की सूचना देता है । भाठर ऋचीक एवं पुलस्त्य, विद्यासागर हैं ।

इस नाटक में स्त्री पात्रों का बाहुल्य है। सीता की दो नामरहित सखियाँ, उनके साथ रहती हैं। हेमप्रभा भी उनकी अभिग्रहदया है। सौदामिनी चामर-धारिणी है। सिन्दूरिका यन्त्र-जानकी की सहेली है। प्रभञ्जिका रावण की परिचारिका है।

राजशेखर ने गंगा और यमुना का तथा संका के मानवीकरण द्वारा जमश, उन्हें समुद्रपत्नियों एवं दशकण्ठपत्नी के रूप में दिखाया गया है। लका दशकण्ठ की मृत्यु पर शोक प्रदर्शित करती हुई आत्महत्या के लिए उद्यत होती है किन्तु भलका उसे मानवना देती है।

कैकयी—कैकयी के चरित्र की विशेषता उसके निर्दोष चित्रण करने में है। राम वन गमन से वह घतिदुःखी है। अपने को कोसती रहती है। राम की माता के रूप में सुमित्रा और कौसल्या का भी चित्रण किया गया है।

त्रिजटा—राक्षसी होते हुए भी त्रिजटा सीता के प्रति सद्भाव रखती है। वह सदा सीता का हित चाहती है। वह सुमुख तथा दुर्मुख की सहायता से नरतक वध, कुम्भकर्ण-जागरण आदि के समाचार सीता को पहुँचाती है। रावण वध के पश्चात् त्रिजटा सीता के साथ पुष्पक पर चढ़कर अयोध्या की यात्रा करती है।

शूर्पणखा—रावण की बहिन है। वह राजवायं की सपादयित्री भी है। सीताहरण के लिए वह भूमिका बनाती है। कैकयी के वेश में वह सफलतापूर्वक राम-निष्कासन की योजना का क्रियान्वयन करती है। इस नाटक में शूर्पणखा की सत्रिय भूमिका है।

लोपाभुद्रा—राम अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के आश्रम में दो मिनट के लिए जाते हैं। आशीर्वाद लेकर पुन लौट आते हैं। लोपाभुद्रा साध्वी है तथा सौजन्य की भूति बतलाई गई है।

राजशेखर ने 'बालरामायण' के पात्रों की विशेषतायें अनेक पूर्ववर्ती राम-काव्यों से चुनी हैं। नवीनता को उद्भूत करने के लिए उन्होंने कतिपय पात्रों में एक विशेषता घतनाई है जैसे रावण के चरित्र में शृंगारिक भावनाओं का प्राधान्य, दशरथ में अपौरुष, कैकयी का निर्दोषत्व, आदि।

विद्वत्शालभजिका :

नेता—प्रमुख पुरुष पात्र राजा विद्याधरमन्त्र है। यह धीरललित नायक है। धीरललित नायक निश्चिन्त होता है। कलाओं में उसकी भासक्ति रहती है।

१ निश्चिन्तो मूढुरनिश कलापरो धीरललित. स्यात् । साहित्यदर्पण परिच्छेद ३-३३।३४

वह सुखी तथा मृदु स्वभाव का होता है। राजा विद्याधरमल्ल, राज्य की चिन्ता में मुक्त है। राज्य का सारा भार उसने अपने योग्य मंत्री भागुराज को सौंप दिया है। निश्चिन्त होकर वह अपना अधिकतम समय प्रमोदोद्योग में वन्यापीष्मादि ऋगुणों की चर्चा करता हुआ, विविध शीघ्रमो में रुचि लेता हुआ व्यतीत करता है। वह नायिका मृगांकावली के मौन्दर्य का रातदिन स्मरण करता है, किन्तु अपनी रानी को भी दुःखी नहीं देख सकता। वह उसे भी यथाशक्ति प्रसन्न रखने का प्रयास करता है। विद्याधरमल्ल कलाप्रेमी है, बहुतसे कवियों का ज्ञाता है। “काव्य में गान्धीयं, एव छन्दो-रीति-गुणो वा विन्यास” उसे गौघ्न ही प्रभावित करता है।

दशरूपककार ने मृदु का अर्थ—शृंगार-प्रधान एवं मुकुमार सत्वाचार यत्नाया है—“शृंगारप्रधानत्वाच्च मुकुमारसत्वाचारो मृदुरिति खलितः”^१ राजा विद्याधरमल्ल अत्यधिक शृंगारी है—उसके मन्त्र पुर में हजारे रानियाँ हैं तथापि स्वप्न-शटा नायिका के लिए वह दुःखी है।

“अन्नेऽग्निवासहस्रपरिवारस्य महाराजस्य किं तीए विणा विमूरदिति ?”

चण्डमहासेन नामक पुस्तकलेखक की कन्या कुवलयमाता स्नान करके निकली थी थी कि राजा ने उसे देखा और उस पर मुग्ध हो गया।

“चण्डमहासेनो नाम रामा—तस्मि दुहिषा कुवलयमाता नाम गम्मदा-भञ्जगुणतिष्णा देवदिहा हिम्रभ च मे पविता ।”

नाटिका के विषय में धनत्रय एवं विश्वनाथ का कथन है “अन्तपुर में नायिका को देखते सुनते से आहूट हुआ नायक नायिका से छिपकर डरत-डरता प्रेम करता है”—विद्याधरमल्ल के विषय में वह बात विन्तुल मध्य है। वह नायिका का रातदिन चिन्तन करता है किन्तु नायिका जैसे ही उसमें मिलने आती है और उसे महारानी के आने की सूचना मिलते ही, वह तुरन्त वहाँ से चला जाता है।

विभ्रमलंका विद्याधरमल्ल की प्रधान महिला है। वह स्पष्ट प्रणमा तथा नृपदशजा है। राजा ने शृंगारी स्वभाव की जानकर वह कुवलयमाता का विवाह राजा से कर देती है। परन्तु वह मानवती भी है। राजा के मुग्ध से प्रयासाहित और अमानुरक्त विषयक सबोधन सुनकर अन्तपुर को चला जाती है।^२ स्नेह पात्र शत्रियों के सम्मान का भी वह ध्यान रखती है। विदूषक द्वारा मंगला का मजाक उदास जाने पर खुद हो जाती है।^३

बात जानने का प्रयत्न करना है। राजा भी उसे अपना रहस्य प्रकट कर मन हल्ला कर देता है।

विदूषक !—अहो अस्म हिअभक्षेत्रो ता कि णु मु एदं—

ता जयापत्तु^१युध धाचक^२—तो वज्ररहस्येण ममावेदु म सिद्धवन्मसो ।
राजा—अये चारायण । सये । कथं न पचयामि, तघूमत्मुह्यन्वास्तिरहस्य हि
चेत सजिभक्ताचिन्ताभारमिव भविष्यति ।^३

वह भी राजा को सदा निष्पन्न सलाह देता है। राजा के अनागरिकत्व में पीड़ित रानी अग्रसन्न होकर जाती आती है। राजा उसकी स्थिति पर ध्यान नहीं देता तब विदूषक स्पष्ट शब्दों में उसकी भर्त्सना करता है। रानी के प्रति उसके मन में आदर है किन्तु जब रानी पशपात करती है तब वह उसके क्रोधित होने की या राने की भी परवाह नहीं करता।

चारायण जानि का ब्राह्मण है। वह मदा यशोपवीत और हाथ में वनदण्ड धारण किये रहता है।

एक दासी विदूषक को दुर्वासा कहती है जिसने उसके क्रीड़ी होने का तथा मलिन वस्त्र धारण करने का भवेत्त मिलता है। सम्भवतः चारायण विरक्त होता। राजा और विदूषक के कथन से हमकी पुष्टि होती है—

राजा—मये । त्वमंपोअभिखिदिन ।

विदूषक—वाह जाणिदो आनिहि दुं । ब्रह्मणी जाणादि जविदमोह, सा मा
अणदि तुमं पच्चक्खो कामदेवात्ति ।

राजा—अए सिमुखने सुको वदति ?

विदूषक—कि विम ?

राजा—अस्ति भवान् देव, कि पुनर्भूमिरिति ।

विदूषक.—को दुग्गणनयगाण कण देद ।

वह भी एक भोजनभट है। मोक्ष उसे अधिक प्रिय है—एसो सिविण अदडाहिं मोक्षणिं नाम उपगिमत्तमि^४—। वह उपमायें भी भोज्य पदार्थों की देता है। मिन्दुवार पुण्य उसे भात, अशोक के शुक्ल नव-निर्मित धृत, वामनी पुष्प ममूर तथा नवमल्लिका दधि के समान दिखती है। “मंवन्धि जणणुत्त भुज्ज विपि विद” ।^५

१ विदुशालभजिका-१-१६।१५

२ कर्पूरमजरी १-२६, २७, २९, ३२, ३३

वह भीरुता की व्याधि से भी ग्रस्त है। उसे सन्ध्या के समय निर्जन चौकी के पास ब्रह्मराक्षसों की बोली सुनाई देती है। सन्ध्या भूत-पिशाचों का आवास स्थान है। इस धारणा से वह अत्यधिक परेशान दिखाई देता है।

इम नाटिका से भागुरायण नामक मन्त्री को निकाल दिया जाय तो इम भाटिका का [धारम्य और अवसान प्रस्तावना के साथ ही साथ हो जायगा। भृगाकावली तथा राजा के पारस्परिक अनुराग के लिए उचित वातावरण का निर्माण भागुरायण हो के भाष्यग से होता है। यस्तुव इस प्रकार वह राजसचिव वा शाश्वत निभाता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि भृगाकावली में विवाह करते ही राजा समायाम चक्रवर्ती बन जायगा। अन्त में वह इम कार्य में सफल होता है। यह बुद्धिमान और नीतिज्ञ है। उसकी नीतिमत्ता से ही पश्चिम में मगा के उद्गम में लेकर पूर्व में ताम्रपर्णी तक का साम्राज्य कमचुरितमक केयूरवर्ष के अधीन हो गया।

चेटीक्षः—नायक भायिका एव देवी की परिचर्या का कार्य चेटीवृन्द करता था। भृगाकावली की महायिका विलक्षणा है। राजा की परिचारिका का काम मेखना पाली है। कुरंगिका, तरुविक और सुराधना सन्वेन-नहन में निपुण है। नाटिका में विलक्षणा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

अथ पात्रः—मण्डेसनाहक प्रतीहारी, लेखनाहक कुरंगक, विदूषक पल्ली ग्राहणी एव कुबलयमाला कुछ समय के लिए रममच पर दिखाई देते हैं।

कुबलयमाला कृन्तलराज चण्डमहासेन की पुत्री है। राजा उस पर आसक्त है, किन्तु कुबलयमाला को हम केवल विवाह के अवसर पर ही रंगभूमि में देखते हैं।

कर्पूरमंजरी :

द्वय काव्य में ब्रजानक का सौन्दर्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में निखरता है। इन नाटक में एक भी पात्र अनुपयुक्त या अनावश्यक नहीं है। राजा चण्डपाल, राजा विभ्रमलेखा, नायिका कर्पूरमंजरी, विदूषक नर्पिजस, भैरवानन्द, विलक्षणा, भादि भी गणना प्रमुख पात्रों में की जा सकती है एव मुखप्रणा प्रतीहारी की गौण पात्रों में।

भायक : चम्पा नगर का स्वामी चण्डपाल इस सट्टक का नयक है। वीर नलित नायक के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। वह सौन्दर्य प्रेमी है। वसन्त का

प्राकृतिक सौन्दर्य उसमें नूतन उत्साह का संचार करता है। वसन्त-विषयक उसके उद्गार देखिए—

पिए विभ्रम नेहए—एकको ग्रहं बह्दावभो तुजस । विभ्रमगव्वप-
अट्टाविभं तरुणीणं, वहावभ मलभमारुदं दोलिदाणव्वणीण, चारु-
पपिद पचम, कलथठि कठकंदलेसु कदलिप्रकदप्पककोप्रद दडधडिद
अडिमं, सिणिद्धवधुं वसुधरा पुरधीरविसारिअप्पसिदिप्पमाणे अचिणी
महुच्चव अहिच्छ पेक्खदु ।

प्रिय विभ्रमलेख । वसन्त वर्णन से मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूँ ।

तरुणियों में विलास और रव्य को उत्पन्न करने वाला, मलयपाल की हवाओं में लहराती हुई लतारूपी नर्तकियों को नचानेवाला, कोकिलों के कण्ठ समूह में पचम स्वर प्रेरित करने वाला, नव प्रादुर्भूत कामदेव के धनुष के दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रिय-सवधो कोप को दूर करने वाला, दग्धु-आन्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला, वसुधरा रूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव अपनी भावों को हृदयी बराबर फैलाकर इच्छानुसार देखो ।

यह सुन्दरी नायिका के प्रथम दर्शन में ही उस पर अनुरक्त हो जाता है और “अहह अच्चरिम अच्चरिम” कहकर प्रशंसात्मक विस्मय व्यक्त करता है ।

यह कला का भी पारखी है। मित्र विदूषक और विनयणा के कवित्व की रस-नुकूल सराहना तथा भवसर आने पर लुटियों का सकेत उनकी मर्मज्ञता को प्रकट करता है। शृंगारिक वर्णनों में उसने जिन छन्दों का प्रयोग किया है, तथा जिस शैली को अपनाया है वह उसकी विद्वत्ता की चोतक है। वह विनोदी एवं विलासी है। प्रारम्भ से अन्त तक हम उसे प्रमोदवनों, लताकुञ्जों, या रत्न-चतुरङ्गिका में पाते हैं। नायिका के दर्शन न होने में विरह वेदना की अनुभूति करने वाला यह नायक वास्तव में शृंगारी है ।

विभ्रमलेखा : विभ्रमनेखा प्रधान महिला या पट्टरानी है। स्वकीया मध्या नायिका से सारे गुण हममें विद्यमान हैं। मध्या नायिका विविध रति-नीतिओं में निपुण होती है। उसकी काम रिपाता बड़ी हुई दिखाई देती है। उसका यौवन विकसित रहता है। प्रणयालाप में उसे विमेष हिचक नहीं होती और न उसे रति में अधिक लज्जा का अनुभव होता है। वसन्त के प्रति उसके उद्गारों में प्रतीत होता है कि वह काम की क्षुधा से पीड़ित है। वह कहती है—

कराने में उसका प्रमुख हाथ है। वह तीखे व्यंग्यो से जीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। राजा-रानी को कटु शब्द सुनाने में भी कसर नहीं रखता किन्तु घबरा कर अपने पर उस विषमता को भूतकर मित्रता स्थापित कर लेता है।

विदूषक—ईरिस रामउल दूरे बज्जीअदि, अहि दामो बम्हणेण नम पडिण्णदा करेदि ।—गुण भागमिस्स अण्णे को वि पिम्वघस्सो अण्णेभीमदु—

इन वचनों के उपरान्त विदूषक चला जाता है। किन्तु भैरवानन्द के धागमन पर सारा क्रोध भूलकर फिर लौट आता है। क्रोध में वह ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करता है, जो ग्राम्य से प्रतीत होने हैं, किन्तु वह उच्चस्वरीय सवाद में भी दक्ष है। यह बात राजा के साथ प्रेमविषयक चर्चा के प्रसंग एवं निदाघ में उपयुक्त सामग्री के महत्व प्रसंग में दिखाई देती है।

ब्राह्मण होने के कारण वह राजपुरोहित का काम सम्हालता है। उसकी उचित्यो सट्टक में हास्यरस उत्पन्न करने वाले तत्वों में प्रमुख है।

भैरवानन्द : यह पाखण्डी चरित्र सट्टक में सोद्देश्य अवतरित किया गया है। सट्टक के प्राण इसी के हाथों में है। अभिसाधि-प्रवीण भैरवानन्द नायिका को लाना है और नायक से विवाह करवाता है। वह दम्भी, आत्मवचक और एक प्रकार से नास्तिक है। उसके सिद्धान्त जनगण के लिए घातक है—

रडा षण्डा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्जं भस पिज्जए छज्जए अ ।
भिक्षा भोज्ज धम्मखड च सेज्जा
कोलो धम्मो नत्स णी भादि रम्मो ॥

रण्डा, षण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को पत्नी रूप में ग्रहण करने की शिक्षा देने वाले एवं मद्यपान को प्रोत्साहन देने वाले सम्प्रदाय का वह अनुयायी है। तथापि इस सट्टक की कुंजी भी यही है। यदि भैरवानन्द न होता तो नायिका का वही पता ही न चलता। वस्तुतः नायक नायिका का प्रणय ही इन सट्टक की केन्द्रीय वस्तु है। इस दृष्टि में पाखण्डी एवं दम्भी होने हुए भी भैरवानन्द नाटक के लिए अत्यन्त उपादेय पात्र है।

अन्य गीण पात्रों में विचक्षणा, सुलक्षणा, सारगिका की गणना की जा सकती है। विचक्षणा एवं सारगिका रानी की सखियाँ हैं। विचक्षणा राजा एवं कर्पूरमगरी की भी सहायिका है। कर्पूरमगरी के प्रत्येक कार्य में वह सहायता करती है।

कर्पूरचण्ड और रत्नचण्ड बन्दी है, जो समय समय पर सन्ध्या, माध्यन्दिन एवं चन्द्रोदय आदि की सूचना देते हैं।

इस मटक के सभी पात्र अपना अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य लिये दृष्ट हैं। इन पात्रों की सहायता से कथानक चक्र अपने लक्ष्य को प्राप्ति करता दिखाई देता है। राजशेखर की अस्मित-सृष्टि के क्रम पर दृष्टिपात करने पर हम देख सकते हैं कि उनके पात्र या तो परिस्थितियों को बनाने हैं या परिस्थितियाँ उन्हें गढ़ती हैं। इनमें विद्वन्मालभजिवा का मन्त्री भागुरायण एवं कर्पूरमजरी का भैरवानन्द प्रथम श्रेणी में आते हैं। उक्त कृतियों के नायक नायिका द्वितीय श्रेणी में। यद्यपि इन कृतियों के विद्रूपक एवं महादेवियाँ ऐसे पात्र हैं जो बने बनावे चौखटे में ठीक बैठ जाते हैं तथापि राजशेखर की प्रचुर पात्र-सृष्टि सरम और सनु-नित है।

राजशेखर के रूपकों में रस-परिपाक :

राजशेखर की कृतियों में नवरसों की अभिव्यञ्जना मिलती है। 'बालरामायण' की प्रस्तावना में उन्होंने "वीराम्भुतप्रायरमप्रबन्धे" कहकर उक्त प्रबन्ध में वीर और अद्भुत रस को प्राथमिकता दी है तथापि उसमें अन्य रसों का भी परिपाक दिखाई देता है। उनकी अन्य दो कृतियाँ 'कर्पूरमजरी' एवं 'विद्वन्मालभजिवा' शृंगार रस में परिपूर्ण हैं। धन हम यह कहते हैं कि इनकी कृतियों में प्रमुख रूप से जिन रसों की अभिव्यञ्जना है—वे हैं शृंगार वीर और अद्भुत। इनके अतिरिक्त प्रमाणानुसार वरुण, धीमन्म, भवानक, रौद्र, हास्य और शान्त रसों का भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

शृंगार . शृंगार के दो पक्ष होते हैं—सयोग और वियोग। सयोग में नायक-नायिका का मिलन सुधात्मक अनुभूति प्रदान करता है। वियोग में प्रिय के अभाव में हृदय तीव्र वेदना में सन्तप्त रहता है।

बालरामायण नाटक में धननायक रावण आरम्भ से धन तक सीता के विरह में व्याकुल है। धन उसकी वेदना एवं विनाश विग्रहण की अभिव्यक्ति करते हैं। सीता के प्रथम दर्शन में ही वह कामपीडित हो उठता है। फलतः उसके अभाव में प्रकृति के वे उपादान जिनमें सीता के अगो का माध्य उसे दिखाता है, उसे सीता जैसे ही प्रतीत होते हैं।

कराने में उसका प्रमुख हाथ है। यह तीखे व्यंग्यो से शीघ्र ही उन्नेजित हो जाता है। राजा-रानी को बटु शब्द सुनाने में भी कसर नहीं रखता किन्तु अवसर आने पर उस विपमता को भूसकर मितता स्थापित कर लेता है।

विदूषक—ईरिस राम्रजस द्वरे वज्जीघटि, अटि दामो धम्हणेण मय पटिप्पदा करेदि ।—गुण आगमिस्स अण्णे को वि पिअवघट्ठो अण्णेषांभु—

इन वचनों के उपरान्त विदूषक चला जाता है। किन्तु भैरवानन्द के आगमन पर मारा क्रोध भूलकर फिर लौट आता है। क्रोध में वह ऐसे अपवादों का प्रयोग करता है, जो ग्राम्य में प्रतीत होते हैं, किन्तु वह उच्चस्वरीय सबाव में भी दस है। यह बात राजा के साथ प्रेमविषयक चर्चा के प्रसंग एवं निदाघ में उपपुनर सामग्री के महत्व प्रसंग में दिखाई देती है।

ब्राह्मण होने के कारण यह राजपुरोहित का काम सम्हालता है। उसकी उक्तियाँ सट्टक में हास्यरस उत्पन्न करने वाले तत्वों में प्रमुख हैं।

भैरवानन्द . यह पाखण्डी चरित सट्टक में सोदेश्य अवतरित किया गया है। सट्टक के प्राण इसी के हाथों में है। अभिसन्धि-प्रवीण भैरवानन्द नायिका को जाना है और नायक से विवाह करवाना है। वह दम्भी, आत्मवचक और एक प्रकार से नास्तिक है। उसके सिद्धान्त जनगण के लिए घातक हैं—

रटा चण्डा विक्खिदा धम्मदारा
मज्झं मम पिज्जए पज्जए च ।
भिक्षा भोज्य चम्मखड च मेज्जा
कोतो धम्मो ईस्स णी भादि रम्मो ॥

रण्डा, चण्डा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को पत्नी रूप में ग्रहण करने की शिखा देने वाले एवं मध्यपान को प्रोत्साहन देने वाले सम्प्रदाय का वह अनुयायी है। तथापि इस सट्टक की कुञ्जी भी यही है। यदि भैरवानन्द न होता तो नायिका का वही पता ही न चलता। वस्तुतः नायक नायिका का प्रणय ही इस सट्टक की केन्द्रीय वस्तु है। इस दृष्टि से पाखण्डी एवं दम्भी होन हुए भी भैरवानन्द नाटक के लिए अत्यन्त उपादेय पात्र है।

अन्य गौण पात्रों में विचक्षणा, गुनक्षणा, गारगिजा की गगना की आ गगनी है। विचक्षणा एवं गारगिजा रानी की सखियाँ हैं। विचक्षणा राजा एवं कर्पूरमञ्जरी की भी सहायिका है। कर्पूरमञ्जरी के प्रत्येक क्षण में वह महायया जाती है।

यथा—

इय भू गग्नेषी न पुनरलकानां विरचना ।

इद हेमाम्भोज विकसति न सीता मुखमिदम् ॥^१

पर्याप्त यह भ्रमरपक्ति है सीता की धलकरचना नहीं। यह सुवर्णकमल खिला है, सीता का मुख नहीं—

सारग-दृष्टिलसिते कलभापिते च ।

पुस्कोकिल-स्मितसरोरुहसौरभे च ॥^२

मृगनयनों में दृष्टि की कान्ति, कोकिलकण्ठ में कलभापित एवं सरोरुह के सौरभ में स्मित की छटा देखकर उसे यत्किंचित सतोष मिलता है, लेकिन—

इयं सता कापि निरन्तरच्छदा ।

प्रसूनगन्धाहुतपद्पदावलिः ।

अहो दधाना हरित नवाशुकम्

न मैथिली मोमदुकूलमुण्डना ॥^३

नील-परिधान पहनने वाली मैथिली कहाँ ? यह तो भू गो से आवृत सता है। हृदय को धीरज दिलाने वाली भ्रान्ति नष्ट हो गई, विरस और तीव्र हो रहा है। इस प्रकार रावण की सारी उन्मादावस्था एवं प्रलाप विप्रलम्भ गुंवार की उत्कण्ठ अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

बालरामायण के नायक रावण, कर्पूरमजरी के नायक चण्डपाल और नायिका कर्पूरमजरी तथा विद्वत्कालभजिका के नायक विद्याधरमल्ल और नायिका भृगावावली को विरह की समस्त दशाओं में गुजरना पड़ता है। देखिए, स्मृति की दशा—

न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता स्वस्था नितम्बस्थली

स्तोकोडेल्लवली-तरगमुदरं कण्ठस्तिर्यक् स्थितः ।

वेण्या पुनरावनेनन्दुभ्रमणे लब्ध स्तनातिगवम् ॥

आतास्तस्या श्वतुविधा तनुलता निध्याययस्या माम् ॥^४

उन्माद की अवस्था भी दर्शनीय है—

आत्पानीजनलोचनानां बहना लावण्यवत्सोलिनी—

नीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभाग्यपारस्वता

१. या० रा० ५।६४ २. या० रा० ५।६५

३. या० रा० ५।७२ ४. क० म० २।१

वेवेन्द्रीवरदीपिरा मम पुनः शृणारमञ्जीवनी
संजाताय मन्मथेन धनुषि तीक्ष्ण शरः पुद्गिलतः ॥ १

व्याधि का चित्त द्रष्टव्य है—

तापोम्भः प्रभृतिम्भः प्रचयवान् वाणप्रणातोनिजः
श्वासाः प्रेक्षितहारपटिततिराः पाण्डिनि मन्मथः ।
किं वाच्यन् कथयानि रात्रिमथिला तन्मायवानायेन
हस्तपट्टनियारितेन्दु मष्टमस्तत्माः स्थितिकर्तने ॥ १

रिरा में भीतल चन्द्रमा अग्नि-ता दाहक प्रकीर्त होता है । देखा नाथिवा
मुगारावली की दशा—

‘सोपानुद्धिते तपसापुपवनं द्वेष्टि प्रभामन्दरी ।
घातान् सत्यति चित्रेनितदभौ वेत्त विष मन्मथे
घाते वैश्वलमन्त्रिनीरिमलप्रस्तारस्यव्याजने
सहस्योत्तममरादाह्निरिषावसेन चित्तेव गा ॥ १

मुगारावली महान में रहने में उद्धिग होती है । उत्तम की छोड़ देनी है ।
चित्रोत्तम भाग्य कावपुद्ग में भी वह बहने दुखी है । यन्त्राभूषण को भी विष मन्म-
थी है । भाग्य की बन्धना में घोषी हुई वह कथिनी के पत्तो पर पड़ी रहती है ।

यह चन्द्र को बोझों हुए रहती है कि हे अग्रम चन्द्र ! विष की विरहाग्नि में
गायन के करीब का रूप किमोदाय भी मत कर ।

विषादिहमहोपा मन्मथमदगरेणा
मयि हलच ह्यमाणा । मा स्तुम कीटपार्श्व
इह हि तव मुदन्त प्लोदवीडो भद्रान्ते
दग्धरमुगारावलीममुगारा मन्मथः ॥ १

विश्वव्यापक के अग्रम होने का वह बोझें लगी है । गाथिवा का वह हल
चित्रोत्तम में गाथ का गुट बगल है ।

गाथिवा कर्तुमन्त्री को अर्थात् किन्तुनीय दान दही रीति रहती है—

मद विमर्तितारि दीप्यता मन्मथः
मा मन्मथः काटका मन्मथः ।
मद मन्मथ विमर्तित मन्मथः
मद मन्मथः मन्मथः मन्मथः ॥ १

धर्मात् विरह मे दिन घोर रात जितने सम्ये हो गए है वह उतनी ही लम्बी-
बायी गायें छोड़ रही है। वृषता इतनी अधिग बढ़ गई है कि भतन धरने वाले
घाँसुओं के गाय मणिवरण भी गिर रहे हैं। घोर क्या कहें, गरीर की बानी हुई
दुःखता के साथ उसकी जीविताशा भी घटती जा रही है।

विप्रमग्ध शृंगार का कितना मधुर परिणाम है? विरह की अनिम दशा मृत्यु
की रपर्ण करने की घोर धमसर हो रही है।

वरुण-रस : राजशेखर वरुण रस के आविष्करण मे भी मित्रहृत हैं। वरुण
रस के अनुभावों का चित्रण निम्न पद्य में कितना मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी है।

राजप्रमादो मे पसी हुई वोमलायी सीता अयोध्या से बाहर तीन चार पग ही
चलती है कि बसकर राम से पूछती है कि 'अभी घोर कितना क्षमता है।' पतन
राम का हृदय प्रवित हो जाता है। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है। नि ना
धारण प्रसंग है—

‘सद्यः पुरीपरिमरेऽपि निरीपमृन्वी ।

गत्वा जघात्त्रिचतुराणि पदानि सीता ॥

गन्तव्यमस्ति नियदिरप्यगृह्णुषाणा ।

रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावनारम् ॥ १

महाकवि तुलसीदास ने इस पद्य का छायानुवाद इन प्रकार किया है—

पुरते निवसी रघुवीरदधू धरि धीर दये मग मे डग डूँ,

झलकी भरि झालवनी जलकी पट सूख गये धधराधर बै

पिरि वृद्धति है अरुगो अब केतव पणकुटी बगिहंवित्र हूँ

सिय की लखि आतुरता पिय की भेदिया अति चाह असी जल रबै ।

सीता की बिदाई के अवसर पर सासारिक विषयो मे विमुक्त विश्वामित्र की
भी दशा आवुल हो जाती है। आँखों से अश्रु की अविरलधारा बह चलती है —

मासारिक वषोभिरेते सीताविरलेपजग्दभिः ।

द्रवतीव मनो वार्ष्णेविश्वामित्रगुनेरपि ॥ २

रादण के हृदय मे भी शोक की अनुभूति द्वारा कवि ने वरुण रस की चमत्कारी
व्यजना की है।

स मरत परिहार के विनाश से रावण को असह्य दुःख होता है। वह बारबार
मूर्छित हो जाता है और चेतना आने पर साधारण ध्यवित की तरह प्रन्दन करने
लगता है।

रावण—भाक्षय—

मूर्च्छांनिमग्नपुष्पकपुद्गलवदनमिन्दु-
स्वदन्तिदन्तुवनयै कृतकद्रुणयोः ।
सामूलतो मदनुजस्य भुजोभुजग-
भीमाकृतिश्रंतिरिति हा नृगरेण वृत्त ॥

इति मूर्च्छति—

रावण—हा वत्स ! का वत्स दशरुष्टेन नीतोऽसि ।

इति रोदिति—

मूर्च्छा, बेतना एवं वन्दन का यह नम किस कठोर हृदय को द्रवित नहीं करता ?

सीता को अग्नि में प्रवेश करने देश रावण-पत्नियों के हृदय दलित हो गए । रावण की मृत्यु के पश्चात् सोताभिभूता लता का प्रलाप करण रंग की चरम सीमा सम्मिश्र करना है ।

वीररम—राजशेखर ने वीररम का सजीव वर्णन किया है । वीरों का गर्वोक्ति-भारत, अस्त्रों का हाकार, म्यन्दनों की खनखवाहट और बाणों की सन-गनाहट पे सब हमारे सामने युद्धभूमि का मज्जा चित्र उपस्थित करते हैं ।

युद्ध में पूर्व राम लंकावर की अन्तिम बार चेतावनी दे रहे हैं—

‘भो लङ्कादेश्वर दीपता जगत्ता मम स्वयं याचने
कोऽपि ते मतिविभ्रमः स्मर नय तादापि त्रिविधवत् ।
मैव चेत् स्रग्दूषणश्रितिगमा लज्जामृदा पट्टरिष्य ।
पत्नी नीप सहिष्यैव मम अनुग्रहाग्यवन्धूत ॥’

अर्थात् भरे लताओं ! सीता को देखो । यह राम तुमसे स्वयं याचना कर रहा है । तुम्हें यह वैया भ्रम हो गया है । सीता माय का अनुसरण करो । मनी भी वृष्ट मित्रा नहीं है । अन्त्येष्ट गर-दूषण और त्रिगिष्य के मंदिर में विना अनुप-
वी इस पर पड़ा हुआ बाण देने वाला नहीं कर सकेगा । मम यों लंकाशेखर के प्रति कहीं कोई धर्म उचित वीररम के परिपात्र का सुन्दर उदाहरण है ।

इसी प्रकार सिंहनाद और राम, राम और परशुराम तथा रावण और परशुराम के संवाद बीररस से पूर्ण हैं।

हास्य : राजशेखर ने अपनी नाटिकाओं में अनेक स्थानों पर हास्य रस का पुट दिया है। इनके हास्योत्पादक पात्र विदूषक चारायण और पर्पिजन हैं। दोनों ब्राह्मण जाति के होते हुए भी निरक्षर भट्टाचार्य हैं। दोनों की विपत्ता हास्य का कारण बन जाती है।

भद्रभुत : योगी भैरवानन्द द्वारा नायिका का अवतारण, सीता के मायावी मस्तक का क्षेपण एवं विविध अस्त्रों का प्रयोग भद्रभुत रस की व्यञ्जना करता है।

धीमत्स : ताडकावध प्रसन्न धीमत्स रस को पुष्ट करता है।

सुख को विभीषिकाएँ, भवानक, रस, परशुराम एवं राम का वार्तावाप रौद्र रस को तथा आश्रम का पावन वातावरण शान्त रस को पुष्ट करता है। इस प्रकार राजशेखर की रचनाओं में रस का यथावसर प्रसंगानुकूल परिपाक दृष्टिगत होता है।

राजशेखर का प्रकृति-चित्रण :

राजशेखर की नाटिका एवं सट्टक में अन्तःपुर की प्रणयलीला का चित्रण है। इसलिये सामान्यतः उसका वातावरण प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्र से भिन्न है। प्रकृति के केवल उनी रूप का दर्शन हमें मिलता है जिस में उसे स्वच्छन्द विकास का अवसर नहीं और जो मालियों द्वारा नियंत्रित होकर राजोद्यान तक ही सीमित है। यह प्रकृति राजा के प्रेम-व्यापारों की उद्दीपिका एवं प्रेम की क्रीडास्थली है।

राजशेखर कुशल शिल्पी हैं। उनकी कुशलता का परिचय निम्न मूर्तान्त-वर्णन देखिये—

लोभाण लोभनेहि मह कमलवण अदण्ड कुणतो
मुचतो तिल्लभावो महम्म महरिस माणिणीमाणसेहि
मजिदुल रत्तमुत्तल्लविकिरणचम्भो चक्रवाएवकमित्तो
जादो अत्थाचलत्तो उवह दिणमणो पक्कणारमणिगो ॥१

अर्थात् मजिष्ठा राग से रंजित मूर्तों की तरह कान्तिमान, किरणों को धारण करने वाला, चक्रवाक पक्षियों का परममित्र, तथा पकी हुई नारंगी के समान लाल और

पीला मूँव सोमो की घोंघों के साथ साथ कमजबन को निमीरित भा करता हुआ मानिनियो के भान के साथ साथ अपने तेज को घटाता हुआ एरुम धन्वाधर की ओर जा रहा है ।

प्रकृति के प्रभाव और सौंदर्य का स्थाभाविक चित्रण उक्त श्लोक में हुआ है तथा प्रकृति के माध्यम में चण्डगान एवं कर्पूरमञ्जरी के विमोचन का गान भी ।

राजमेखर की गेयनी तुनिता की भाँति उद्देश्यों के मञ्जीव विर धारण में समर्थ है । वनप्रदेश का वर्णन देखिये—

ताम्बूलीनद्धमुग्धप्रभुन-तरुनमप्रभुनरे ताम्बूलीन-

पायं पायं बन्धुवीरुतवदधन नारिकेलीनगाम्भः ।

मेघ्यन्ता ध्योमदात्राधमजलजयिन-सैन्धमीमनिनीमि ।

द्विपूत-व्यूहरेती-जगिन-मुहुरारावराणा ब्रह्मन्ता ॥^१

पर्याप्त गान की बेलाँ से घिरे हुए मुगारी के वृक्षां के नीचे पड़े हुए शिम्बरों के ऊपर पैठार केने के पत्तों के दोले धन्वाधर नारिकेल के पत्तों का पानी की पीरग ताप में मिथिला लक आकाश मार्ग में बरि गई यात्रा के कारण उत्पन्न पत्तीने को गुच्छा देने वाले और कोमो की शीश के बाँव बाँव से गुँजते हुए गुग्गर वन प्रदेशों का उपयोग हमारी सेवा की महिलायें अपने महचरों के साथ करे ।

यहाँ वन प्रदेश की प्राकृतिक सुगन्धो ध्वन्यन्त मादक है वन शण्यरीछा का उद्गीर्ण कर रही है ।

राजमेखर द्वारा प्रकृति के मूढम निरीक्षण का चित्र चन्द्रोदय के एक वर्णन में लीजिये—

मन्धरा के लगातार बहने से भूमण्डल सतत और वृक्ष की तरह नीगा दिखाई देता है । तब पूर्व दिशा चाँदनी के कारण नये भोजपत्र के समान पीली पड़ गई है । मुचुकुन्द फूल की केसर के समान शोभा वाली किरणों को बरगाता हुआ चन्द्रमा धीरे धीरे अपनी कलाधो से पूर्ण हो गया है ।^२

भूमौने तिमिराणुबन्धमणिने भूमौहरे व्य टिठे ।

सगादा णवमुग्धपिजरमुही जोष्टाद पुव्या दिमा ॥

मुचतो मुचुकुन्दकेसरणिहातोहाणुफारे करे ।

घडो एकरुक्ताभेध म बडो मपुणविवरण ॥

बुबुध से रहित, चन्दनविहीन दशो दिशाओं को सजाने वाली, क्वणरहित, बिना कुण्डल की, ससार की शोभा लोभो को तृप्त एवं मृग्य करने वाली कामदेव की अस्थभूत चन्द्ररश्मियाँ आकाश में झट्टी हो रही हैं ।

अबुबुधमचदणं दध दिग्वा बह्मदणम् ।

अवकणमकुडल भुवनमद्वीभूगणम् ॥

अगोसणममोहण मध्ररलछणस्ताउह ।

मिध्रवकिरणावली णहसलम्मि पुत्तिज्जदि ॥^१

मेघों से शरमती, उन्मुक्क धाराओं की भाँति चन्द्रमा की किरणें दिशारूपी मुन्दरियों के मुख पर कपूर के पूर्ण का सेप करती हुई सी दिखाई देती हैं । सारे ससार के मन को प्रसन्न करने वाली चन्दन की तरह स्वच्छ और चिकरुण चाँदनी फैल रही है । ये चन्द्रकिरणें तीनों लोकों में काम का उद्दीपन कर रही हैं ।

दिसमवयसो नहमरह्मो ।

गिहुअणवदो धट्टहचन्दो ।^२

मडले समहरस्स गौरए दतपजरविलासचोरए ।

भादि लाछणमओ फुरतओ केलि कोइसतुलं धरतओ ॥^३

चन्द्रमा की रश्मियों में आलोकित पूर्ब दिशा के दिव्य भोजरत्न के समान पीत होने का आरोप, दिशाओं के लिये मुन्दरी का उपमान, आकाश में सरोवर एवं चन्द्र पर लाञ्छन मृग एवं केलि कोयल का अध्यागोप कवि की व्यापक फरपनासक्ति को व्यक्त कर रहा है ।

विविध अतुओं का भी अत्यन्त चित्रात्मक, रम्य और वस्पनात्मक वर्णन राजशेखर ने किया है । स्थानाभाव के कारण हम केवल यहाँ उनके द्वारा वर्णित वसत अतु के कतिपय प्रसंगों को उद्धृत करना ही पर्याप्त समझते हैं क्योंकि बनल का वर्णन शू गारी कवि की रचि और रागात्मकता के साथ ही उसके मूक्षम निरीक्षण का भी व्यक्त करता है ।

तरणियों में विलास और रवों को उत्पन्न करने वाला, मनवाचन की हवाओं से सहुराली हुई लतारूपी नर्तनियों को नचाने वाला, कोरिणों के कण्ठममूह में पञ्चम स्वर को प्रेरित करने वाला, मय जाग्रत कामदेव के धनुष दण्ड से प्रेमिकाओं के प्रियमदग्धों कोष को दूर करने वाला, वन्धुवान्धवों में प्रेम उत्पन्न करने वाला,

यसुन्दराक्षी रमणी का यह वसन्तोत्सव छायां को हृदयों के बराबर फैला-फैलाकर देखने योग्य है ।

इस ऋतु में कुकुम्ब राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियों के कपोलों की तरह चम्पा फूल पीना और बान हो गया है । मिचिन् बिलोये हुए दुग्ध की तरह सुन्दर मल्लिका भी खिल उठी है । मूय भाग में कारोवर्ष का तथा प्रथभाग में भीरो से युक्त पलाश कुमुम ऐसा लगता है जैसे कि इसके दोनों ओर दो भीरे बँडे हो और हमका रमराम कर रहे हों ।

वसन्त ऋतु में पाण्ड्य देश की रमणियों के कपोलों को रोपाचिन करने वाली, काशी देश की कर्मापिनियों के त्रिव लक्ष्मी प्रणयकोष को साव प्रान्तः मंग करने वाली, चोल देश की अरल नारियों को सशोक के लिये प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियों के केशपात्र को गिरियम बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों को अरने भालिगन पात्र में बांधती हुई मलयाचल की ठण्डी हवायें बन रही है ।

वसन्त में मलयाचल की हवायें सरा नगरी के बहिर्द्वार पर स्थित माताओं को हिलाती हुई, अमल्य ऋषि के आश्रम में अर्घान् दक्षिण दिशा में मन्द मन्द हिलती हुई, चन्दन और कर्पूर की सनाओं के सौरभ से युक्त ककोली सनाओं को कँपाती हुई, ताम्रलवणियों को मन्द मन्द नचाती हुई और ताम्रपर्णी नदी के जल का स्पर्श करती हुई हवा यह रही है ।

यह श्रृंग जितना सजीव है उतना ही मयार्य और उतना ही दूरगामी एव सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक भी ।

प्रकृति का मानवीकरण

राजनेश्वर ने प्रकृति में भी मानवीय भावनाओं का आखेरा किया है । रावण सीता के विरह में दुःखी है । इस शोक में उसने अरने चारों ओर की विशाल प्रकृति को भी सम्मिलित कर लिया है । अपने प्रत्येक यशु-पक्षी तथा वृक्ष-पत्ता को मानवीय समझकर उससे चर्चा की है ।

राग भी जब मार्ग न देने के कारण समुद्र पर बाणों की दृष्टि करने हैं तो बाणों से आहत हुआ समुद्र पुरष रूप धारण कर गया और समुद्र इन दो पत्नियों सहित समा याचना करता है । रावण का बध हो जाने पर सदा, जो रावण की पत्नी मानो गई है, विधवा हो जाने के कारण शोक प्रकट करती है और उत्तरी घड़ी भलका उगे धीरे-धीरे बँधाती है । यहाँ अन्धकार और सदा नारियों का मानवीकरण दर्शनीय है । जटायु पक्षी होकर भी सीता का कर्षण बन्धन मुनकर रावण से

नायिका के सौंदर्य में चम्पा, हरिदा, वाचन और केसर का मेल ही नहीं बैठ पा रहा है। प्रसिद्ध उपमानों का निरस्कार कर राजशेखर ने प्रतीप अवतार के आश्रय में नायिका के सौन्दर्य की रमणीय व्यंजना की है। कल्पित आभूषणों ने इसे आशेष का उदाहरण माना है—

नायिका के सौन्दर्य का प्रस्तुत उदाहरण भी दृष्टव्य है—

दन्दुलिप्त इवाञ्जनेन जडिता द्रष्टुमृगीषामिव
प्रमृगानारुणमेव विद्रुमलता शशमेव हेमवृत्ति ।
पार्ष्ण्यं कलया च बौक्लिषधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतम्
सीताया पुरतश्च हन्त निजिना वर्ता सयहो इव ॥१॥

पर्याप्त सीता के मुख के सम्मुख चन्द्रमा मानों कानिष्ठ-युता लय रहा है। उसके नेत्रों के सम्मुख हरिणियों की दृष्टि जड़-सी हो रही है, आँठों की मात्सी के आगे विद्रुमलता की मरणिशा उड़ गई-सी जग पड़ती है और मोने की क्षाति अगशोभा के समक्ष बानी पड़ गई है, उराली मोठी बोनो के आगे कोमल की दूर ऐसी लगती है जैसे कर्कशता में भर उठी हो और कंग के समक्ष मोंर के पक्ष ऐसे लगने हैं जैसे किरी की काम के न हो।

यहाँ सीता के भग के अनिष्टव सौंदर्य को सूचित करने के लिये चन्द्रिका, हरिणियों की दृष्टि, विद्रुमलता, मोने की क्षाति, बौक्लिष वधुओं के पक्ष और मूर-मखों की निन्दा द्वारा सौन्दर्यातिरेक को व्यक्त किया गया है। यहाँ प्रस्तुतप्रशंसा का उचित विन्यास हुआ है। कल्पना के चित्रों की विविधता के लिये राजशेखर ने दृष्टांत अन्वहार का प्रयोग किया है। कल्पनाओं के सहारे वे दृष्टांतों की लड़ी जोड़ने चले जाते हैं। इस अन्वहार को स्पष्ट करने के लिये केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

यव पानव्या ज्योत्स्ना भूतभुवनवर्मापि तृपिते—

मृणाली तन्तुभ्य मिधमरचना कृत भवतु ।

यव का पानवियों वन वकुलदाप्ता परिमल

कर्व स्वप्न साक्षात् कुवलयदूग कल्पयतु ताम् ॥२॥

अर्थात् मुझ के अन्दर ऐसी चाँदनी को व्यासे कहाँ भी पाते हैं? कल्पना के तन्तुओं ने दम्बर-रचना कहाँ हो सकती है? मौलिकरी के पुत्रों की गन्ध कहाँ नापी या तीनों जा भवती है? स्वप्न साक्षात् कैसे हो सकता है? इसी तरह उम मृदुरी कमलनयनों की प्राप कल्पना मात्र कर सकते हैं।

उपप्राकाराद्य प्रहिणु नयनेतकंय मनाक्
अनाकषे कोय गलितहरिणः शीतकिरणः ।
समावदप्राप्तेरुपवन-चकौरैरनुसृतः

किरञ्ज्योत्स्नामण्डं वनवलिपाकप्रणयिनीम् ॥^३

अर्थात् तनिक चारदीवारी पर दृष्टि डालो । जरा सोचो, यह कौन सा चन्द्र है । न आकाश में स्थित है, न अक्ष में मृग को धारण किये है । देखो उपवन के वनों पराम रोक कर उसकी ओर आकृष्ट हो रहे है और उमंग स्वच्छ ज्योत्स्ना छिड़ रही है ।

नायिका के मुख को मृगहीन चन्द्रमा कहकर कवि ने अपनी मूढ़ या परिचय दिया है । नायिका के मुख की इस प्रशंसा में प्रतिशयोक्ति वा सौंदर्य दर्शनीय है ।

नायिका यौवनावस्था में पदापेक्ष कर रही है । यह बात पर्यायानवार के माध्यम से अत्यन्त कुसन्ततापूर्वक व्यक्त की गई है—

शोणोवन्धस्त्यजति तनुता मेध्यते मध्यभाय
पद्भ्या मुक्तास्तरनगनय सधिता शोचनाभ्याम् ।
पते वक्षः कुक्षमचिवतामद्वितीय तु वक्षत्रम्
तद् माताया गुणविनिमय कल्पितो यौवनेन ॥^४

शरीर में इसका जघनस्थल अत्यधिक क्षीण था । अब उसकी क्षीणता मध्यभाग में ग्रहण कर ली । शरीर की चंचल गति अब नयनों में आ गई है । पहले इसका वक्ष एकाकी था अब उमने कुचों में मित्रता धारण कर ली है । और वक्षस्थल की अद्वितीयता मुख ने ग्रहण कर ली है ।

शृ गाररस से मिकल विविध व्यापार करने वाली नितवन का निम्नता सुन्दर आलंकारिक वर्णन है—

म्यञ्चरुञ्चितमुन्मुख हस्तिनरत्नानूतमाकेकरम् ।
व्यावृत्त प्रसरत्प्रसादि मुकुल सत्प्रेम कम्प्रस्थिरम् ॥
उद्धुम्भान्तमपाङ्गवृत्ति-विवक्ष मञ्जतरगाकुलम्
वक्षः साधु च वन्ति रमवशादेर्कमन्यक्रियम् ॥^५

तिरछी, कुचित, उन्मुख, उल्लसित, भावभरी टेढ़ी, बलप्राई हुई, फैली हुई, सम्मिश्र, अघमृदी, प्यार भरी, कम्पित, स्थिर, उर्ध्वतित, भतवाली, बिखरी, विरसित, गड़ी

हुई, तरंगित झील भजन चितवन एक है पर शृंगार रस में डूबी होने के कारण उसने व्यापार भ्रमेक है ।

मनुचन्द भलवार पर आघातित नेत्र ना यह व्यापार-वैविध्य दर्शनीय है ।

विद्वज्जालभजिवा के नागदी श्लोक में भी गई वामलोचनाओं की प्रशंसा में व्याघात की लटा दृष्टव्य है—

दृशा दग्धं मनमित्र जीवयन्ति दर्शय याः ।

विरपाक्षस्य जयिमीस्ता. स्तुये वामलोचना ॥^१

अर्थात् विरपाक्ष की दृष्टि में जन्मा दिये बड़े काम को अपनी दृष्टि में ही पुनः जीवित कर बाररजी को परास्त कर देने वाली उन वामलोचनाओं को नमस्कार है ।

प्रवर्ति की रमणियाँ हो रतिवर्म में निपुण होती हैं, कैयन्त झुलना कह देने पर अकृति-रमणियों की निपुणता की प्रतीति पाठक को नहीं हो जाती किन्तु "चन्द्रिका के पान में चकोरियाँ ही चतुर होती हैं" यह कथन बात को आभाषिक बना देता है । प्रतिबन्धमूषमा भलवार की यही उपादेयता है—

चकोर्यं तव चतुराक्षचन्द्रिकापानकर्मणि ।

आवन्त्य एव निपुणा सुदुघो रतनर्मणि ॥^२

उत्तरोत्तर उत्कर्ष का एक उदाहरण देखिये—

पृथ्वि स्थिरा भव भुजवम धारयिता

तत्र कूर्मराज तदिदं त्रितय दधीषा ।

दिक्कुजरा । कुरुन सत्प्रितये दिधीषा

देव करोति हरकामुनः माततज्यम् ॥^३

राम शिष्यबन्धु ब्रह्मा रहे हैं । घट पृथ्वी को समेत किया जा रहा है और शीपनाग और विष्णुओं को समस्त अपने पूर्ववर्तियों को सम्हाल रखने को कहा जा रहा है । उत्कर्ष की इस श्रद्धा में राम के पौरव का महत्व स्वयं सूचित होता है ।

नीच श्लोक में बिहारी नायक की दशा बितने प्रभावपूर्ण ढंग से व्यञ्जित हुई है—

पर जीष्ठा उष्ट्रा मरलमरिखो चदणरतां

खरनखारो हारो रयणिपनषा देहनवणा ।

मुणाली बाणाली जवइ अजलददा तणुलदा

वरिट्टा ज दिह्वा नमलवपणा सा मुणपणा ॥^४

१. विद्वज्जालभजिवा १-२ ।

२. मानरामायण १-४८ ।

३. वानरामायण १०-८२ ।

४. कर्पूरमञ्जरी २-११ ।

धर्यान् जब से उम गुनवता को देखा है तभी से चाँदनी गर्म मालूम पड़ती है, चन्दन का लेग बिप भी तरह प्रतीत होता है और हार घाव पर नमक की तरह लगता है एवं रात्रि की ठण्डी हवायें भी शरीर को झुनझुती हैं । कमल नान बागों की तरह लगते हैं । स्नान करने पर भी शरीर जलता ही रहता है ।

बिरही राजा का एक भन्व चित्र भाग रूपक के माध्यम से साकार हो उठा है ।

एगो विभ्रजस्तो हगो विभ्र विभ्रवरमानसी, करी रिभ्र
मभ्रकरवामो मुणालदवदंडो विभ्र घणघम्ममिलाणो रिपदीणा ।

दीवो विभ्र विभ्रनिभ्रच्छामो पमादपुणिमाचन्तो विभ्र
पदुरपरिकरवीणा विट्ठदि ॥^१

विभोगी नायक की सतप्तदशा, भल्लिनता, यकावट आदि के लिए मानमरोहर में विलीन हुए हैं, प्रवण्ड सूर्यानेत्र से छुल्ले हुए कमलनाल, कान्तिहीन दीपक, श्मशान-कालीन चन्द्रमा ह्यादि का सादृश्य उपस्थित करने में कितना सटीक और सजीव चित्र उपस्थित हो गया है । एक स्थान पर रवि ने लिखा है कि—

सह दिवर्तानसाहि दीहरा सासरवा

सह मणिवलएहि बाहप्रारा मलनि ।

तुह मुहम विघोए तीभ्र उब्बिबिरीए

सह म तणुलदाए दुब्बला जीविदासा ॥^२

बिरहानुल नायिका को दिन रात बड़े लम्बे प्रतीत होते हैं । उतना ही दीर्घ उसात वह लेती है । बाष्पधारा और मणिकरण साथ साथ गिर रहे हैं । जितना उसका शरीर दुर्बल हो रहा है उतनी ही जीवितोशा भी घटती या रही है । सहोक्ति के उक्त प्रयोग से विभोगिनी नायिका का यह चित्र और अधिक मर्मस्पर्शी हो गया है ।

राजनेर ने प्रकृति के चित्रों को अधिक सजीव और सक्षम बनाने के लिये विविध भलकरणों का प्रथम लिया है । मध्याह्नकाल का एक दृश्य देखिये—

घत्ते पद्ममता दलेप्पुरपरि ख वणंताल द्विप

शप्यस्तम्बरमान्निचछनि शिखी मध्येशिखण्ड शिर ।

मिष्यालीदमृणालकोटिरमसाद् दप्पादुर शूकरो

मध्याह्ने मटिषण्ण वाच्छति निजच्छायो महावदंमम् ॥^३

१. कर्पूरमञ्जरी २।९ ।

२. कर्पूरमञ्जरी २।९ ।

३. विद्वसातभजिका ३।२६ ।

प्रपत्ति-पदमलना को दलने का इच्छुक हाथी, दीपहर की गर्मी में व्याकुल होकर अपने ऊपर अपने बड़े बड़े कानों को चला रहा है । बामो के रसास्वादन को त्यागकर मयूर अपने पक्षों के घनदर छिप रहा है । सुमर ने कमल की जड़ को खोदकर खाना बन्द कर दिया है और भैमा अपने शरीर पर लेप करने के लिये गहरे बीचड़ को इच्छा कर रहा है ।

यहाँ कवि की भूयस् निरीक्षण शक्ति से स्वभावोक्ति का कुशल निरूपण हो गया है । चन्द्रकिरण वर्णन में कवि की कुशलता सराहनीय है—

प्रकुटुममचदण दमदितावहूमडण
प्रकवणमकुडल भुवधमडलीभूषण ।
भसोसणमभोहण भभरनछणस्साउह
मिभनकिरणायली प्पुव्वलम्मि पुमिज्जदि ॥

प्रपत्ति कुटुम से रहित, चन्दनविहीन, बरों बिछावों को सजाने वाली, कंकणरहित, बिना कुण्डल की, लोगों को सुप्त एवं मुग्ध करने वाली कामदेव की प्रसन्नभूत चन्द्ररश्मिमाँ आकाश में इकट्ठी हो रही हैं ।

यहाँ चन्द्ररश्मिमाँ बाम के अभ्युध हैं किन्तु शोषण-भोहन-हीन । बिना कारण के ही कामदेव के अस्त्रों का कार्य करने वाली ये चन्द्ररश्मिमाँ विभावना से भलहत हो उठी हैं ।

वस्तुतः राजशेखर द्वारा प्रयुक्त किसी भी अलंकार की सूची बहुत दूर तक बढ़ाई जा सकती है । यहाँ हमारा उद्देश्य उनके प्रत्येक अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत करना मात्र नहीं है । हमने केवल कुछ अलंकारों को लेकर उनकी अलंकार-योजना का प्रदर्शन किया है । उनकी अलंकारसृष्टि भावोपयोगी एवं सूक्ष्म निरीक्षणपूर्ण है । उनके अलंकार प्रयोग की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे एक ही चित्र में कई अलंकार सफलता से गुंथ सकते हैं जैसे नायिका के रूप चित्रण के लिये उन्होंने प्रतीप, अश्रुतनुप्रशमा एवं प्रतिगयोक्ति का प्रयोग किया है । विरहावस्था की दशा वर्णित करने में विरोध, रूपक एवं सहोक्ति की सृष्टि की है ।

अन्त में हम यह सकते हैं कि राजशेखर के अलंकार प्रयोग में उनके पाहिल्य एवं सूक्ष्मनिरीक्षण की छाप है । फलतः उनकी अलंकार-योजना स्वाभाविक सहज और स्पष्ट हो गई है ।

छन्दोविधान

राजशेखर के काव्य में प्रयुक्त शार्दूलविश्रीदित छन्द की उत्कृष्टता देखकर क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ “सुवृत्ततिलक” में यहाँ तक कह दिया था—

शार्दूलविश्रीदितैरिव प्रस्तातो राजशेखरः ।

शिखरीव परं वक्त्रे मोल्लेहहृच्चक्षेत्र ॥

यद्यपि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में २३ छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु समग्र रूप से उनके छन्द सविधान की ओर दृष्टि डालने पर भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि “शार्दूलविश्रीदित” छन्द का प्रयोग ही उन्होंने प्रचुर परिमाण में किया है। यदि “शार्दूलविश्रीदित” को ही राजशेखर के काव्यों का बलेश्वर-विधायक छन्द कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उक्त छन्द के पदवात् हम भाव-आवृत्ति एवं छन्दो-वैविध्य की दृष्टि से बिन छन्दों से उनके काव्य की सुशोभित पाते हैं वे हैं—वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, स्रग्धरा, मन्दात्राणा, मालिनी, आर्या, पृथ्वी, रघोदत्ता, इन्द्रवज्रा, वधस्थ, उपजाति, पुष्पिनाषा, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, शालिनी, शिखरिणी, हारिणी, प्रहर्षिणी दक्षिवन्दना, हचिरा, गीति, उपगीति एवं हरिगीति ।

राजशेखर की छन्दोयोजना के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि उन्होंने विभिन्न प्रसंगों, अनुजों तथा भावों के लिये भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। निम्न तालिका में उक्त योजना की विवृत रूप में प्रस्तुत किया गया है—

विषय

प्रयुक्त-छन्द

- | | |
|-----------------|--|
| नान्दी | .. शार्दूलविश्रीदित, पुष्पिताषा, आर्या, स्रग्धरा, मालिनी, पद्मपावक एवं शिखरिणी । |
| भरतवाक्य | .. शार्दूलविश्रीदित स्रग्धरा, स्वागता । |
| मञ्जन वन्दना | .. शार्दूलविश्रीदित शिखरिणी, स्रग्धरा । |
| रामस्तुति | } .. शार्दूलविश्रीदित । |
| उपदेश | |
| आशीष | |
| स्नेहाभिव्यक्ति | |
| चन्द्रोदय-वर्णन | .. वसन्ततिलका । |
| | .. शार्दूलविश्रीदित, पृथ्वी, स्रग्धरा, दक्षिवन्दना मालिनी, हारिणी तथा शिखरिणी । |

पशुवात्—

वसन्त

- .. शार्दूलविश्रीदित, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, मन्दात्राणा, आर्या, मालिनी

राजशेखर

शिशिर	.. सगंधरा, पय्यावक्त्र ।
ग्रीष्म	.. शार्दूलविक्रीडिन ।
वर्षा	.. सगंधरा, पुष्पिताग्रा ।
शरद	.. शार्दूलविक्रीडिन, वसन्ततिलका ।
हेमन्त	.. सगंधरा, आर्या ।

मायिका वर्णन—

शौर्दूलविक्रीडिन

.. शार्दूलविक्रीडिन, शिखरिणी, वसन्ततिलका,
उपजाति, मालिनी, वनस्यविल ।
.. मालिनी, सगंधरा, शिखरिणी ।
आर्या, मन्दाक्रान्ता, सगंधरा ।
.. उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, स्वायता ।

विरहिणी

दोगात्रीदा

चर्चरी नृत्य

रस—

१. शृंगार

२. वीर

३. करुण

४. अद्भुत

५. वीर

६. रोद्र

७. भाग्य

शार्दूलविक्रीडिन, शिखरिणी, वसन्ततिलका,
मालिनी, हरिणी ।

वसन्ततिलका, सगंधरा ।

वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, पय्यावक्त्र सगंधरा ।

वसन्ततिलका ।

शार्दूलविक्रीडिन ।

शार्दूलविक्रीडिन ।

शार्दूलविक्रीडिन, मन्दाक्रान्ता ।

राजशेखर की एक और विशेषता है निरन्तर एक ही छन्द द्वारा किमी विषय की प्रतिव्यक्ति । "अर्थानुरूप-छन्दमत्वम्" की उक्ति उनके लिये सार्यक प्रतीत होती है ।^१

काव्य-दोष

प्रायः सभी आलोचकों ने काव्यदोषों का विस्तृत विवेचन और वर्गीकरण किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने अवश्य यह कहकर दोषों की उद्देश्य की है कि उन्होंने महान् गुन्दर गूँस्त्रियों से अपने को उन्मत्त किया है, ऐसे महात्माओं के दोषों का उद्घाटन करना आलोचकों के लिये दोषपूर्ण है—

ननु गूँस्त्रिमहत्या छोटिममना महात्मनां दोषोदोषमात्मन एव दूरणं भवति ।^२

१. राजशेखर के ग्रन्थों में प्रयुक्त विविध छन्दों की तालिका परिशिष्ट में देखिये ।

राजशेखर के ग्रन्थों से, अलंकारों ने दोषों के जो बहुत से उदाहरण लिये हैं, उसका कारण उनकी लोकप्रियता है । हम यहाँ राजशेखर के ग्रन्थों में पाये जाने वाले प्रमुख दोषों पर विचार करेंगे ।

वाक्य-दोष

१. अभवन्मत सबन्ध — वह दोष है जहाँ किसी पद का अभिप्रेत सबन्ध अथवा मन्वय उत्पन्न न हो सके । जैसे—

आपाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तिकेयो विजेय.

शस्त्रव्यस्त सदनमुदधिभूरिय हन्तकारः ।

अस्त्येवैतत् किमु कृतवता रेणुकाकण्ठ-बाधा

बद्धस्पधंस्तव परशुना सज्जते चन्द्रहास' ॥

भार्गव परशुराम । माता का मसा काटने वाले, तुम्हारे इस परशु का स्पर्श करने में मेरा यह कृपाण लज्जित हो रहा है, अन्यथा । यहाँ भार्गव परशुराम की निन्दा के प्रकाशन के लिये प्रयुक्त मातृकण्ठ के छेदन के कर्तव्य के साथ परशु का सबन्ध स्थापित नहीं हो सकता । अतः 'अभवन्मतसबन्ध' का यहाँ निर्वेशन हो रहा है ।

वस्तुतः यहाँ परशु की निन्दा के द्वारा भार्गव परशुराम का अधिक्राधिक तिरस्कार किया जा रहा है । अतः इसे दोष न कहकर कवि-कौशल कहा जाना उपयुक्त होगा । साहित्यदर्पणकार और उनके अनुयायियों ने इसे कविदौशल कहा भी है ।

२. भग्नप्रक्रमत्व — बिना कारण के किसी क्रम अथवा परिपाटी को छोड़ देना भग्नप्रक्रमत्व दोष कहलाता है । जैसे—

उबन्धच्छन्ना भू स च पतिरपा योवनशतम् ।^१

यहाँ यदि 'मिता भूपत्यापा स च पतिरपाम्' कर दिया जाय तो भग्नप्रक्रमत्व दोष दूर हो जायगा और अर्थ की अपेक्षित ऐनप-प्रतीति निर्विघ्न रहेगी ।

अर्थदोष : अर्थ दोष के एक भेद अस्थानयुक्तत्व का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है । अस्थानानुयुक्तत्व वह अर्थदोष है जिसमें वाक्यार्थ अनुपयुक्त स्थान पर समाप्त हो जाता है, जैसे—

प्राज्ञा शत्रुशिखामणि-व्रणयिनी आस्ताणि चतुर्नव,

रक्तिभूतपत्नी पिनाकिनि पद लकेनि दिव्यापुरी ।

उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेहम्बरो लभ्यते

स्याच्चेदेय न रावणः क्व नु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः ।^१

रावण के लिये कहा गया है कि जिसकी आज्ञा मुकुट-मणि की मांति इन्द्र की भी गिरांप्राय है, जिसके लिए शास्त्र दिव्यदृष्टि का काम करते हैं, जिसकी शिवभक्ति सर्वविदिन है, जिसका दिव्य स्थान लकापुरी के नाम से प्रसिद्ध है और जिसका जन्म ब्रह्मा के महान् वश में हुआ है भला उसके समान अन्य वर वही मिल सकता है । हाँ, बात केवल एक है कि वह रावण है और सब गुण सर्वत्र रहते ही कहाँ हैं ?

यहाँ 'स्याच्चेदेय न रावण' पर ही बाध्य समाप्त हो जाना चाहिए, क्योंकि रावण पद से रावण का वर रूप में निषेध किया गया है किन्तु "पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः" यह उक्ति तात्पर्य के विपरीत कथन पुष्ट करती है । अतः यहाँ अस्थानुयुक्तत्व दोष है ।

अर्थान्तरसंक्रमित बाध्यध्वनि : "क्व न पुनः सर्वत्र सर्वे गुणा" में रावण के समस्त गुणों की अनुपादेयता ध्वनित होने के कारण 'अर्थान्तरसंक्रमितबाध्य-ध्वनि' भी लक्षित हो रही है ।

अनौचित्य कबि जब भावविभोर हो जाता है, उस समय किंचित अमावधानी भी अनौचित्य को जन्म दे देती है ।

(क) प्रबन्धानौचित्य या वृत्त का अनौचित्य इतिहास-सम्मत तथ्यों के विपरीत वृत्त का अनौचित्य प्रकट करता है । सीता-स्वयंवर में सम्मिलित राजम-पति रावण की यह उक्ति देखिये—

यत्पार्वतीरुठुचग्रहणे प्रवीणे पाणौ स्थित पुरभिद शरदा मह्यम् ॥
गीर्वाणमारवणनिमित्त-गात्रमत्र तन्मेषितीक्ष्णघन घनुराविरस्तु ॥^२

रावण ने कहा कि मेषिणी को खरीदने का मूल्य वह धनुष वही प्रत्यक्ष होवे । इसे गुनरत्न जनक कहते हैं—“घाविरस्तु समगर्भमम्भवथा सीतया” स्वयं उद्भूत जानकी के माथ वह धनुष प्रगट हो” जनक के इस वचन से ऐसी प्रतीति होना है कि वे गच्छामणि रावण को जानकी देना चाहते हैं । किन्तु राजमराज को शिरशिप-मुरखी बन्धा का दान प्रबन्धानौचित्य का निर्माण करता है ।

(ख) घञरत्नानौचित्य . इसी प्रकार घोरवण्ड राम द्वारा ताड़ना को ताड़ना देना तथा ब्रिजके बानों के पास नेत्र ज्वेल हो रहे हैं ऐसे परशुराम के साथ मृदु छेड़ना घञरत्नानौचित्य का सिद्धान्त करना है । देखिये—

‘ज्यायान् धन्वी नवधृतघनुस्ताम्रहस्तोदरेण
धनक्षोदव्यतिकरपटुस्ताडकाताडनेन ।

वर्षाभ्यर्णस्पृलितपलित क्षीरकण्ठे न साधं
योद्धुं चाच्छन्न कथमभुना तज्जते चन्द्रहासः ॥१

धनुर्धारियो मे सर्वश्रेष्ठ, क्षत्रियो के विनाश करने मे सदाय, जिनके कानों के पाम के केश ज्वेत हो रहे हैं (अर्थात् जो बुढ़ापे की ओर अग्रसर हो रहे हैं) ऐसे महाबली परशुराम, नये नये धनुषे धारण करने के कारण जिनकी हथेली छाल हो रही है, जो ताडका का विनाश कर सके हैं, इतना ही नहीं जो अभी तक क्षीरकण्ठ बहे जा सकते हैं, ऐसे रामचन्द्र के साथ युद्ध की इच्छा रखते हुए स्वयं ही लग्नन क्यों नहीं हो रहे हैं ।

क्षीरकण्ठ राम की अवस्था एवं बाढंक्ष्यपलितकेश, परशुराम की अवस्था का अत्यधिक अन्तर अवस्थानौचित्य को पुष्ट कर रहा है ।

(ग) रसशेष अनुचित विशेषणों से रम के पोषण मे बाधा होती है । जैसे—

नाले शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतो समिद्धारिषे ।
शश्वत्खड्गभुजङ्गचन्दननरी श्रीशेषधाने श्रिय ।
भालाने जयवुञ्जरस्य मुहुरा कन्दर्पदर्पे चिरम् ।
श्री दुर्योधनद्रोणि विप्रमत्तने तीन जगन्नन्दनि ॥१

अर्थात् महाराज दुर्योधन का पराक्रमशील बाहु, बीरत्नरूपी कमलिनी का नाक-दण्ड है, मुद्गरूप ममुद्र का बाँध है, खड्ग रूपी भुजयमो के निर्य नन्दनवृक्ष है, राग्य-श्री का श्रीशेषधान है, विजयवुजर को बाधकर रखने वाली शृ खला है और मृग-लोचनाओं के लिये वामदेव का दर्प है । उनकी छाया मे विधान्त यह मारा सत्कार परमानन्द को प्राप्त करे ।

इन पद्य मे दुर्योधन की भुजा के लिये बठिन विशेषणों के बीच वामननाल जैसे कोमल शब्द का प्रयोग अत्यन्त अनुचित है । क्योंकि बीर रम के पोषण मे यह बाधक है । अतः रम मे विरसता उत्पन्न हो रही है । वाक्यगत धनौचित्य भी उत्पन्न हो गया है ।

एक और उदाहरण देखिये—

एतस्याः स्मरणम्बरं वरत्नसमं परीक्ष्यो न यः
स्निग्धताऽपि जनेन दाहमयं प्रमथ्यस्य पापमाप् ।

निर्वीयीकृत-चन्दनोपघविधौ तस्मिन्तद्वत्कारिणो ।

ताजस्फोटममी स्फुटन्ति भणय सर्वेषुपि हारखण्डम् ॥^१

इस श्लोक में प्रमुख रम विप्रलम्भ शृंगार होने के कारण माधुर्य का होना आवश्यक है । किन्तु 'तद्वत्कारिणो ताजस्फोटममी स्फुटन्ति' के प्रयोग से भोजगुण उत्पन्न होने के कारण अनौचित्य का संचार हो गया है ।

रावण के प्रति परशुराम की इस उक्ति में सम्प्रदानानौचित्य है—

तद्वाच्य स दशाननो मयगिरा दत्ता द्विजेभ्यो मही ।

तुभ्यं ब्रूहि रमातलात्त्रिदिवसो निर्जित्य किं दीयताम् ॥

पदांशगत अवाचकत्व दोष बालरामायण के रामरावणीय प्रक में परशुराम के प्रति रावण की इस उक्ति में अवाचकत्व दोष है—

आपाचार्यस्त्रिपुरविजयी बानिकेयो विजय

शस्त्रव्यस्त मदनमुर्धधर्मुरिय हन्तकार ।

अन्वैवैनत् किम् कृत्वता रेणुकाकण्ठबाधा

यद्धम्पद्वन्तव परशुना सज्जने चन्द्रहास ॥^२

यहाँ 'विजय' इस पद में यत् प्रत्यय 'क्त' प्रत्यय के अर्थ में प्रयुक्त है जो अवाचक है । अतः यहाँ अवाचकत्व दोष स्पष्ट दीख पड़ रहा है ।

अर्थान्तरैकपदता दोष : रामचन्द्र के साथ सीता को बनवान के लिये छोड़ जाने पर गुमन्त दशरथ को समाचार दे रहे हैं—

ममूचरणपात गम्यता भूगदभी ।

विरचय मिचयान्त मूर्ध्नि धर्मं बठोर ।

तदिनि जनपुत्रीलीचनेरधुबर्भ ।

पथि पदिनयधृभिर्बोक्षिता मिक्षिता य ॥^३

यन जाने समय राहगीरो की (साथ चलने वाली) स्त्रियों ने छाँया में छाँगू भरकर जनवतनया को देखा घोर गमलाया कि हमों-भरी भूमि पर हनके हनके पैर रखकर चली । धूप तेज हो रही है इसलिए गाड़ी का जन्ना गिर पर टाप लो ।

यहाँ 'तदिनि' में तद् भन्द दोषपूर्ण है । 'तद्' शब्द 'धर्म' बठोर तत् मिचयान्त विरचय' इस प्रकार का हेतु रूप पूर्वाश्रं में प्रयुक्त होना चाहिये । किन्तु केवल इस एव पद का प्रयोग उत्तरार्ध में किया गया है इसलिए यह अर्थान्तरैकपदता दोष' को अभिप्रेत कर रहा है ।

विशेष-परिवृत्ति दोष : नायिका भृगांकावली के वियोग में आनुर राजा विद्याधरमत्स्यदेव आकाशभाषित के रूप में सेवको को 'भो' शब्द में संबोधित कर रहे हैं—

श्यामा श्यामलिमानमानयत भो सान्द्रैर्मपीकूचकै-
मन्त्रं तन्त्रमुत प्रयुज्य हरत श्वेनोत्पलाना धियम् ।
चन्द्रं धूर्णयत क्षणान्च कणश कृत्वा शिलापट्टके
येन द्रष्टुमहं क्षमे दद्य दिशास्तद्वक्त्रमुद्राङ्किताः ॥^१

हे सेवको ! गहरी काली स्याही की कुचियों से रात्रि को काला कर दो और चन्द्रना को पत्थर की शिलापर रखकर कण कण में पीस डालो जिसमें मैं दसो दिशाओं को उसकी मुख मुद्रा से अंकित देख सकूँ ।

यहाँ रात्रि के लिये केवल 'श्यामा' शब्द का उपयोग उपयुक्त नहीं है । यदि चन्द्र है तो चाँदनी रात का उल्लेख होना चाहिये । किन्तु यहाँ श्यामा शब्द से अंधेरी रात्रि का बोध द्रष्ट होने के कारण विशेष परिवृत्ति दोष भासित हो रहा है ।

रसबोध . वर्णन प्रकृत रस के परिपाक का पोषक होना चाहिये अन्यथा अनवशीर्तन नामक रस-बोध होता है ।

कर्पूरमजरी की प्रथम जवनिका में राजा और रानी वसन्त के सौंदर्य का वर्णन करते हैं जो प्रसंगानुकूल है । किन्तु बोध में ही उस मूल प्रसंग को छोड़कर चारण द्वारा वर्णित वसन्त-वैभव की प्रशंसा करने लगते हैं । यहाँ प्रकृत रस के अनपकारक का विस्तृत वर्णन तदोप है ।

व्याकरण-दोष : प्राकृत प्रत्यय 'इल' का प्रयोग केवल महासप्ती में होता है किन्तु राजशेखर ने भाषा की परम्परा के विरुद्ध 'बालरामायण' में शौरसेनी में 'कोकूहलिल्ल' का प्रयोग किया है जो दोषपूर्ण है ।

उपर्युक्त दोष राजशेखर की विज्ञान ग्रन्थ-सम्पदा की तुलना में अत्यल्प है । शृणोत्कर्ष के समुद्र में ये दोष जल की कुछ मैती बूंदों के समान विमीन हो गये हैं ।

काव्य-सौन्दर्य

काव्य के उपकरण शब्द और अर्थ हैं । अनोरम वर्ण-योजना एवं शब्दों का उत्कृष्ट चयन काव्य में सौष्ठव उत्पन्न करते हैं । शब्दानुसार भी काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं । आन्तरिक सज्जा का मय्यध अर्थ के साथ रहना है जिसका आधार शब्द-शक्ति और उक्ति-वैचित्र्य है । नवि स्वानुभूति को अभिव्यक्ति-योग्य के

माध्यम से व्यक्त करता है । छन्द काव्य को बेयत्ता प्रदान करने है । ये सभी मिलकर काव्य सौष्ठव का निर्माण करने है । प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं विषयों पर विचार किया जायगा ।

भादसीन्दर्य या अर्धव्यवनन : राजसोखर की पद-सरचना अभीष्ट अर्थों की व्यञ्जना तथा उनकी प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करती है । भूला झूलती नायिका का एक राक्षसचित्र देखिये—

रणतमणिचेखर अणजणतहारळडं
फलकणिर्दकिणिणी म्हरमेहवाडवर ।
दिलोलवलभावली अणिदमजुमिजारव
ण वम्म मणमोहण मप्सिमुहोम हिदोलण ॥^१

मणिनूपुरों के झकार से युक्त, हारवली के शन शन शब्द में पूर्ण, बरघनी की छोटी छोटी पण्डियों के सफुर शब्द से युक्त यह चन्द्रमुखों का झूला झूलना किमके मन को मोहित नहीं करता ?

यहाँ 'रणतमणिचेखर' 'अणजणत' 'फलकणिम मजुमिजारव' आदि पदों की वर्ण-मैत्री बानों को तो खुद लगी ही है, साथ ही इनकी स्वनि आन्दोलित झूले का साक्षात् चित्र भी उपस्थित करती है । झूला झूलन का एक अन्य चित्र देखिये—

गामन गोवअवहूपपेगिदामु ।
दोलामु विरममवदीमुनिविट्टिट्टी
ज जादि छजिदपुग्गरहो दिणमो ।
तेणव्व होति दिमहा अइदीहदीहा ॥^२

गाती हुई गोपियों के चरणों में आन्दोलित एवं मन को हरण करने वाले झूले पर गुरु की दृष्टि लगी हुई है, जिसमें उनके घोड़ों की गति अस्त-व्यस्त हो जानी है, और एव निश्चय गति में बढ़ता है । इसी कारण दिन अधिक लम्बे हो जाते हैं ।

इस पद्य में ग गु ङ बनों की समुक्त ध्वनियाँ मात्रों गोपियों के चरणों के घन-रूप ताल दे रही हैं । यह त्रिमशान वर्ण-मोन्दर्य का निदर्शन है ।

इस प्रकार राजसोखर ने ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा अपनी अभिव्यक्ति को न केवल अर्थव्यक्त की दृष्टि से अपितु शरीर की दृष्टि से भी संपूर्ण और मनोरम बना दिया है ।

शब्द-सौंदर्य : राजशेखर ने यद्यपि शब्द-शक्ति के संवध में धरना कोई सैद्धांतिक मत प्रस्तुत नहीं किया, तथापि इतना निश्चित है कि शब्द के व्यापार संबंधी तथ्यों में वे भत्तीभाति परिचित थे। यही कारण है कि वे अपनी रचनाओं में वाचक शब्दों द्वारा भी उच्चकोटि के सौंदर्य की सृष्टि कर सके हैं। उदाहरणार्थ ग्रंथ चन्द्र के लिये—भगवान् त्रिलोचन जिने शीर्ष पर धारण करते हैं (जं भगवं तिलोचणो सीसे समुद्रहृदि)^१ ; मृगचूर्ण रूपप्रसाधन के लिये—प्रतोः सह त्रिसे शोहृद प्राप्त करता है—(जेण समोभनरु दोहनलहृदि)^२ ; कान के लिये—‘जुहिट्टिल जेठभाभरणामधेय भग’^३ तथा उत्तरासाङ्गापुरस्तर गच्छतगामधेय भग जुपल^४, हाथ के लिये—“उत्तरफणुणोनुरस्सरणकूब्रतगामनेधं भग”^५ आदि शब्दों का वाच्यायं-मौन्दर्य बनना भूगर्हित हो रहा है कि इनके स्थान पर अन्य समानार्थक शब्दों का रखना काव्य के सौन्दर्य को नष्ट करना होगा।

शब्दालंकार : शब्दालंकार में अनुप्रास, यमक और श्लेष अनिवार ही ऐसे हैं जो भाषा-सौंदर्य में विशेष रूप से वृद्धि करते हैं। अनुप्रास में भाषा के अन्तर्गत चमरकृति उत्पन्न होती है। राजशेखर ने अपनी रचनाओं में रम-व्यञ्जना के लिये इन तीनों का ही आश्रय लिया है। परन्तु इन में भी उनका सर्वाधिक लगाव अनुप्रास के प्रति है। यही कारण है कि उनकी अधिकांश पंक्तियों में इस अलंकार की छटा दीख पड़ती है।

तत्र च शरानिकरधर्पणे, क्षितितननिधर्पणे सुमदधर्पणे, वातर मनोपर्वणे परस्पर प्रतिहनिधर्पणे कीलातपधर्पणे, सोमहर्पणे च महारम्भे गगरगरम्भे ।^१

यहां पद के अन्त में धर्पणे, धर्पणे, धर्पणे, धर्पणे, धर्पणे धर्पणे, धर्पणे रम्भे आदि शब्द मधुर संगीत की सृष्टि कर रहे हैं।

मूलेमूले पथि विटपिनां मेदिनी दीर्घमाग्ने

शुष्माकण्ठी पिपति सतिर निशरे निशरे च ।

जातव्राता निमिषनि ह्य वन्दरे वन्दरे च

स्थाने स्थाने वर्तति च मति बद्धवागाभिवाधा ॥^२

उक्त इतोर के प्रथम पद्य में ‘मून’ द्वितीय में निशरे तृतीय में ‘वन्दरे’ और चतुर्थ में ‘स्थाने’ की आवृत्ति हुई है। यहाँ अनुप्रास का प्रचाल होमरता एवं मूलम मौन्दर्य की प्रभावशाली रूप में धारण करना है।

१. क० म० १।२०-२१ पंटी की उक्ति। २. वही १-२० पंटी की उक्ति।

३. वही १-२०-२१ विद्वत्पंक्ति।

४-५. वही १-२०-२१ विद्वत्पंक्ति उक्ति।

राजसेन के समक अनकार की छटा भापा को रमणीयता प्रदान करती है।

देखिये—

दृष्टुदहोदंष्ट्रदृष्टोदमर पुरपतनष्टकोष्ठप्रकोष्ठम् ।
स्फारस्पर्क् पृष्ठपीठोहठदनितशिराकन्धराकाण्डगण्डम् ॥
मन्मन्म धनडिम्भ चटदिनिविचटम्मुण्डपिण्ड प्रनष्ट ।
खण्डीशोच्चण्ड-दृष्टानकच दृष्ट दृष्ट चन्द्रहामस्तूणेदु ॥

यहाँ मुण्ड, पिण्ड, नष्ट, दृष्ट, खण्ड में ण्ड की, कोष्ठ, प्रकोष्ठ में ठ की; मन्मन्म में म् की और चटत्, विचट में चट की आवृत्ति न केवल युद्ध की बाह्य छवि को प्रकट कर रही है बल्कि युद्ध की भयकरता को भी सूचित कर रही है।

राजसेन अनुग्राम एवं धमन के समान श्रेष्ठ अनकार का भी कुशलता से प्रयोग करते हैं। वानर मनु-ग्रन्थ के लिये जिन साधनों का चयन कर रहे हैं, वे हैं—

देव देवद शिव—रहमुम्मुनिदतमानमान, महत्पम्मामिदपहरणमग्गमग्ग
गमुहागदहिल्लान्तान दूम्मानामिदकुमुमराहत्तपाडन यप्पणन्दोलिदविमानमान
रहमुच्छनिदपटन्नकेमरकेमर गहिदमच्छगमग्गमग्ग नोदिदकुमुममग्गमदण
पभट्टदृष्टदिदमग्ग-मग्गमपग्गदृष्टरत्तिदावामादाम कग्गुमलदग्गमग्गमग्ग
उल्लपीनपीपन निमग्गदृष्टिगवक्कग्गग्गग्ग णग्गपह्णग्गग्गपग्गपग्गपग्ग
पह्णग्गीकदाटलपग्ग-गण्डमेज्ज मग्गुग्गोच्छुनिद पग्गग्गपग्ग वाणग्गनम् ।

उन उदाहरण में गज्ज, नान, पाडन मान केमर, मग्गद गदण मग्गन पत्ताम, पीपन, कक्कह, पग्गग्ग आदि शब्द श्रेष्ठभूत हैं। यज्ञा वदि या वार्ध-दण्य वाग्ग-मीदय को पुष्ट कर रहा है।

उक्ति-वैचित्र्य : “प्रष्टउगोडगौ गदीशानिह भणिनिगुणा निचने वा नवेनि ।

उक्ति-वैचित्र्य उनमें वाच्य का मध्यम है। इसमें शारा में वह धार या जानी है जो धर्म को लीला बनाने में सहायता प्रदान करती है। यहाँ वैचित्र्य शब्द में हमारा अभिप्राय भणिनिगुण या उक्ति-धर्म-वैचित्र्य-अर्थ मन्त्रार्पणात्ता में है जिसके लिये भरवर्ती आचार्य पुनः ने कथना शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि राजसेन ने उक्ति-वैचित्र्य की पण्डिता के इस प्रयोग में वह उक्तिों के विभिन्न रूपों का प्रस्तुतीकरण अनुचित न होगा।

(१) विशेषण-व्यक्ता : वियोगिनी नायिका की दशा के इस चित्रण में विशेषण-व्यक्ता का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

दाहोद्गम प्रसूतिम्वच प्रचयवान् वाप्य प्रणालोचित ।
 श्वासा. प्रेक्षितदीपदीप्तलतिकाः पाण्डमि मम वपु ।
 विचान्यन् वचयामि रातिमस्मिन्ना त्वन्मार्गवानामने
 हस्तच्छत्रनिवृद्धचन्द्रमहसस्तस्या. स्थितिर्वर्तते ॥

हे नायक, तुम्हारे विरह में नायिका के शरीर का दाह पानी को मुखा देने वाला है, घाँसू नागी में बहने योग्य हैं, उष्ण नि श्वास द्विलती हुई प्रखलित दीपनाभा के समान है और सारा शरीर मछेंदी में डूबा हुआ है । और मधिर क्या कहें? वह सारी रात अपने हाथ के छत्र में चाँदनी को रोके हुए तुम्हारी प्रतीक्षा में तुम्हारे मार्ग की ओर वाले झरोखे में बैठी रहती है ।

यहाँ दाह, वाप्य, श्वास और वपु इन विशेष्यों के साथ 'प्रमम. प्रसूतिम्वच' 'प्रणालोचित' 'प्रेक्षितदीपदीप्तलतिका' और 'पाण्डमि ममम्' विशेषणों के प्रयोग में अत्यधिक आलता बढ़ गई है ।

(२) शब्दव्यक्ता उक्त उदाहरण में 'प्रसूतिम्वच' शब्द प्रसूति पति इति इस विग्रह के अनुसार प्रसूतिपूर्वक पञ्धानु से 'परिमाणे पच' सूत्र से लग्न प्रावप्य और 'वित्यनव्ययस्व' में भुम् का आगम होकर बनता है । वियोगिनी के शरीर में इतना दाह है कि यदि थुल्लू भर पानी लिया जाय तो वह लग भर में तप्त होकर उड़ जायगा । यहाँ प्रसूतिम्वच में स्वभाव सुन्दर मुद्र प्रत्यय रचना की शोभा को उत्पन्न करने वाली किसी अपूर्व शब्दव्यक्ता को परिपुष्ट कर रहा है ।

(३) वैतिर्वैचित्र्यव्यक्ता नायिका का शरीर विरहाधिक्य के कारण पाण्डुता में डूब रहा है । वियोग के दुःख में पीने पड़ जाने के निमित्त 'पाण्डमि मम वपु' का प्रयोग किन्ना ओभनीय है । यह वृत्त वैचित्र्यव्यक्ता को स्पष्ट कर रहा है ।

(४) निद्रुर्वैचित्र्य व्यक्ता : भिन्न-भिन्न निद्रुओं में सामानाधिकरण्य के प्रयोग में उत्पन्न शोभा कुछ अपूर्व होती है । इसे साहित्यशास्त्री निद्रुर्वैचित्र्य-व्यक्ता कहते हैं ।

रावण के वचनों में यह वचनता दीख पड़ती है—

मत्पारोपणकर्मणापि बहवो वीरघ्नं त्साजिता ।

कार्यं पुञ्जितबाणमोक्षरपनुस्तदोभिरेभिर्मया ।

स्त्रीरत्नं तदगर्भसम्प्रभमितो तन्मयं च लीलामिता

तेनैषा मम फुल्लपद्मवज्रनी जाना दृशा विभुनि ॥^१

जिसके पारोपण के व्यापार ने ही बहुतों को वीर घ्न में मुक्त कर दिया है, उन्हीं घनूप पर मुझे अपनी उन भुजाओं में बाण चढ़ाना है जिसने मुझे प्रयोजिता स्त्रीरत्न की प्राप्ति होगी । घन ये मेरी क्षीमां आश्रित किये हुए वरमों के समूह के समान सुशोभित हो रही है ।

यहाँ 'दृशा विभुनि' के स्वीकृत और फुल्लपद्मवज्रम् के नपुमस्त्वित् होने तथा उन दोनों का समानाधिकरण प्रयोग होने में विद्वत्चिन्त्यवस्था का बोध हो रहा है ।

तमम्बना मामिनकल्पकाली प्रबालबालम्बजवेन तस्य

उरस्थलेऽश्वोऽयं दक्षिणेन सर्वाभ्युद सौरभमगराव ॥^२

बायु के द्वारा वर्णित बालबाला के बालपानव रूप अङ्गन में दक्षिण पवन ने उसके उरस्थल पर सर्वाभ्युद मुरधिवान्ना अगस्त्य जिवेर दिया ।

इस संदर्भ में 'सर्वाभ्युद सौरभम्' नपुमस्त्वित् और 'अगस्त्य' पुल्लिङ्ग का समानाधिकरण प्रयोग लिङ्गवैकल्यवस्था को पुष्ट कर रहा है ।

(५) वर्णविशाल वक्रता : मञ्जुव वर्णविशाल द्वारा वायु में चारुत प्रसूटित होता है । सीता स्वयंवर के अवसर पर मिथिलापुरी आने हुए रावण के मत्पारोपण को दिये हुए आदेश में वर्णविशालवचना दीख पड़ती है—

ताम्बूमीनदभुगधनमृततन्मत्प्रमले मानुशाभि

पाय पाय वसाचोऽननवदनदल नारवेलीकलाम्भ ।

मेवमन्ता व्योमपावाधमज्जनजगित मैन्यमोपनिनोधि

दर्शदूत गृहकेनोरुनित कुतकुतागवहान्ना वनान्ता ॥^३

यहाँ पाय पाय, वदनदल, दारुदूतगृहकेनोरुनित कुतकुतागवहान्ना, वनान्ता आदि में दो दर्श अंगों के एक साथ द्विवचन में वचना उत्पन्न हो गई है ।

वर्णविन्यास से उत्पन्न सौष्ठव का दूसरा उदाहरण सीता की प्राप्ति न कर सकने के कारण उन्मत्त रावण की चकोरो को सम्बोधित कर कही गई उक्ति में लक्षित होता है—

अयि पित्त चकोरा वृत्तनमुन्नाय कण्ठान्,
 प्रमक्खलनचञ्चलान्तरिमित्रा ।
 विरहविधुरिताना जीवितत्राणहेतो
 भवति हरिणनशमा येन तेजो दष्टि ।

इस छन्द में वृत्तम्, उन्नाय कण्ठान्, चञ्चलान्तरिमित्रा, त्राणहेतो हरिणनशमा आदि पदों की एक साथ योजना में वर्ण-विन्यास जन्म मौद्रय की सृष्टि होती है ।

(६) वचनवैचित्र्यवक्ता : “मैथिली तस्य दारा ।”

यह रावण की उक्ति है । यहाँ मैथिली एक वचन और दार बहुवचन में प्रयुक्त है । इसीसे यह वचनवक्ता या प्रत्ययवक्ता का उदाहरण है । इसी प्रकार मैथिली शब्द स्त्रीलिङ्ग और दार पद पुलिङ्ग होने के बाष्ण् लिङ्गवक्ता की भी प्रतीति हो रही है ।

(७) प्रकरण-वक्ता : जहाँ एक नाटक के भीतर दूसरा नाटक प्रयुक्त होकर गाँव प्रबन्ध की सर्वस्वभूत अलीकृष्ट वक्ता को पृष्ठ करता है उसे शास्त्र-कार प्रकरण वक्ता कहते हैं । राजशेखर द्वारा बावगमापण नाटक में सीता-त्वयन्तर नामक नर्माहु की न्यायना प्रकरण-वक्ता का उदाहरण है ।

राजशेखर के उक्ति-वैचित्र्य के अध्ययन में स्पष्ट है कि उन्होंने हम तत्त्व या प्रपञ्ची त्वनाम्ना में जिस वीक्षण के साथ दिव्यता किया है वह उन युग के किसी अन्य कवि में नहीं मिलता । ये प्रयोग न केवल शास्त्रीय दृष्टि में विशेष हैं अपितु साहित्यिक मौद्रय की दृष्टि में भी महत्त्वपूर्ण हैं ।

राजशेखर में हम नाद-मौद्रय, जगद-मौद्रय, शब्दों की अलङ्कृति एवं वक्तावृत्ति का उचित विन्यास यत्र-तत्र पाते हैं । यह उनके औचित्य-विरोध का ही प्रदर्शन नहीं करता प्रयुक्त वाक्य-मौद्रय को भी शिथिल न कर देता है ।

राजशेखर की भाषा

राजशेखर ‘रविगात्र’ में । उस समय रविगात्र की उपाधि में यही विभूति हो गयता था जो कवि विभिन्न भावस्थो विभिन्न प्रवृत्तों और ईश्वर रणों में

काव्य-निर्माण करने में समर्थ होता था।^१ राजनेश्वर की कृतियों को देखकर उनकी 'कविगङ्गा' उदाधि की साधेका स्वयम्बु हो जाती है। वे मङ्गल के प्रकाश पण्डित थे। उन्होंने न केवल ज्ञानविद्या में अपनी धारित मानवी मङ्गल की साहित्यिक परम्परा की समुच्च बनाये रखा, साथ ही धार्मिक मयात्रा का ध्येय प्राप्त भाषा की मङ्गल का उद्धार में प्रतिबद्ध रह चुकेका साहित्यिक रूप दे दिया। उनके पुत्र में विभिन्न प्राचीन भाषाओं की प्रवृत्ति थी। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्राचीन भाषाओं के शब्दों का भी समान्य प्रयोग किया। इस प्रकार राजनेश्वर की भाषा में मङ्गल, प्राङ्गल एवं देशज शब्दों का समन्वय हो गया है।

राजनेश्वर की सप्तमृत राजनेश्वर की सप्तमृत व्याकरण-परिनिष्ठित, परि-
भाषित एवं प्रोढ़ है। इनके द्वारा प्रयुक्त मङ्गल शब्दोंकी एवं वृत्त शब्द-रूप
निर्माण करने की क्षमता शक्ति है। एवं शब्द के लिये अनेक पर्याय का प्रयोग
उनके समुद्र शब्द भाषाशास्त्र का सूचक है। उदाहरणार्थ निम्न के पर्यायशब्दों
शब्द, जिनका प्रयोग राजनेश्वर ने अपने ग्रन्थों में उन्नेय किया है, इस प्रकार है—
नीललोहित,^२ हस्तमोहि,^३ भृगुनि,^४ पिताही,^५ विगीत,^६ वाक्नीति,^७ भीरु,^८
महेस्वर,^९ १३,^{१०} निर्निष्ठ,^{११} हर,^{१२} महादेव^{१३} भग^{१४} १५ इन्दुशेखर^{१६} शम्भु,^{१७}

१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० ४५ मनु तत्र तत्र भाषाविषयेषु तेषु तेषु प्रबन्धेषु
तस्मिन्तस्मिन्भरते स्वयम्भु ग कविगङ्गा ।
२. बालरामायण अ० १ पृ० १२, अ० ३ पृ० ८१, अ० ४ पृ० १०२, अ० ६
पृ० १३३ । ३. वही अ० १ पृ० १६, अ० २ पृ० ४२, अ० ३ पृ० ६१ ।
४. वही अ० १ पृ० १३, २६ । ५. वही अ० ६ पृ० १२, ९८ काव्यमीमांसा
अ० ९ पृ० ८४, अ० ११ पृ० ६० । ६. बालरामायण अ० ४ पृ० ८१ ।
७. बालरामायण अ० ३ पृ० ३६ । ८. वही अ० १ पृ० १८, अ० २ पृ० ६० ।
९. वही अ० १ पृ० १९, २१, २४ । १०. वही अ० १ पृ० १८ । ११. वही
अ० २ पृ० ४३, ४८, अ० ३ पृ० ६५, अ० ४ पृ० ९४ । १२. वही अ० १
पृ० २१, अ० २ पृ० ३१, ३२, ३६ । काव्यमीमांसा अ० १३, ८९, अ० १५
पृ० ८५ । १३. वही अ० २ पृ० ४१, अ० ३ पृ० ८२ । १४. वही अ० १
पृ० २२, २९; अ० २ पृ० ४५, अ० ३ पृ० ६२, ७८ । १५. वही अ० १
पृ० २३; काव्यमीमांसा अ० १२ पृ० ६३ ।

पशुपति,^१ चण्डोक्त,^२ उमापति,^३ अर्धनारीश्वर,^४ जम्भारि,^५
 गिरीशपति,^६ घूर्जटि,^७ चन्द्रशेखर,^८ कण्ठेन्दुचूडामणि,^९ शितिकण्ठ,^{१०}
 मृगाकचूडामणि, त्रिनयन,^{११} भवानीपति,^{१२} स्थानु,^{१३} विरूपाक्ष,^{१४} द्व्यम्बक,^{१५}
 त्रिलोचन,^{१६} नीलकण्ठ,^{१७} भवानीवल्लभ,^{१८} शशिशेखर,^{१९} वृषभध्वज,^{२०}
 दृषध्वज,^{२१} त्रिपुरज्जोषी,^{२२} वृषलाटन,^{२३} मधेन्दुमोहि,^{२४} पार्वती-प्राण-
 नाथ,^{२५} इन्दुमोनि,^{२६} चन्द्रचूडामणि,^{२७} वृषभलाटन,^{२८} त्रैलोक्य,^{२९}
 सदाशिव,^{३०} भाललोचन,^{३१} प्रेननाथ,^{३२} ईश्वर,^{३३} परमेश्वर,^{३४} प्रीतेन्दुमौलि,^{३५}
 शूलधारिण,^{३६} त्रिपुरान्तकर,^{३७} भवानीसन्ना,^{३८} वृषारू,^{३९} शंकर,^{४०} रुद्र,^{४१} श्यामकण्ठ,^{४२}
 दिगम्बर,^{४३} दिग्वाससु,^{४४} शूनी,^{४५} चन्द्रचूट,^{४६} मुड^{४७} ।

१ बालरामायण अ० १ पृ० २२, अ० २ पृ० ४४, ४८, ५१, काव्यमीमांसा
 अ० १२ पृ० ६३ । २ वही अ० १ पृ० २७, अ० २ पृ० ४६, अ० ३ पृ०
 ८०, ८२ । ३ वही अ० २ पृ० २९; अ० ३ पृ० ७७ । ४ वही अ० १० पृ०
 २८८, कर्पूरमञ्जरी १, २८, २९ । ५ वही अ० २ पृ० २९ । ६ वही अ० २
 पृ० ३२ । ७ वही अ० ३ पृ० ८० काव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७२ ।
 ८ वही अ० ३ पृ० ७३, अ० ४ पृ० ९६ । ९ वही अ० २ पृ० ३७ ।
 १० वही अ० ४ पृ० ८८ । विद्वत्कालभजिका अ० ४, १४, १५ । ११ वही
 अ० ३ पृ० ५३ । विद्वत्कालभजिका अ० ४, २७ । १२ वही अ० २ पृ० ४३,
 ४५; विद्वत्कालभजिका अ० १, २२ । काव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७६ । १३ वही
 अ० ४ पृ० ८७ कर्पूरमञ्जरी ३ २०, २१; काव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७२ ।
 १४ वही अ० २ पृ० ४१, अ० ३ पृ० ६५, ८१; अ० ४ पृ० ८६ । १५ वही
 अ० २ पृ० ४२ । १६ वही अ० २ पृ० ५१ । १७ वही अ० २ पृ० ७८ ।
 १८ वही अ० ३ पृ० ८० । १९ वही अ० ३ पृ० ८२ । २० वही अ० ४
 पृ० ८८, ९२ । २१ वही अ० ४ पृ० ८८ । २२ वही अ० ४ पृ० ९१ ।
 २३ वही अ० ४ पृ० ९३ । २४ वही अ० ४ पृ० ९५ । २५ वही अ० ४
 पृ० १०० । २६ वही अ० ४ पृ० १०९ । २७ वही अ० ४ पृ० ११६ ।
 २८ वही अ० ४ पृ० ११९ । २९ बालरामायण अ० ३ पृ० २५३ ।
 ३० वही अ० ९ पृ० २६१ । ३१ वही अ० ९ पृ० २६१ । ३२ वही
 अ० १० पृ० २९० । ३३ काव्यमीमांसा अ० १६ पृ० ८६, ८७ । ३४ वही
 अ० १३ पृ० ७२ । ३५ वही अ० ११ पृ० ६० । ३६ बालरामायण अ० २
 पृ० २९ । ३७ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १६ । ३८ बालरामायण अ० ३
 पृ० ९७ । ३९ वही अ० ३ पृ० ७९ ।

राजशेखर के ग्रन्थों में सीता के भी अनेक नाम मिलते हैं । जैसे पृथ्वीपुत्री,^१ कमलाक्षी, मृगाक्षी, सलिताक्षी, वृशाक्षी,^२ जनकनन्दिनी, राममहिणी,^३ वैदेही,^४ मैथिली,^५ जनकराजपुत्री,^६ जानकी,^७ जनकतनया,^८ धरणी-सुता,^९ जनकात्मजा,^{१०} जनकराजवन्दा,^{११} अगर्भसम्भवा,^{१२} धीर सीर-ध्वजान्मजा ।^{१३}

रामचन्द्र के भी अनेक नामों की जानकारी बालरामायण से प्राप्त होती है । यथा-रामभद्र,^{१४} राम,^{१५} राघव,^{१६} दाशरथि,^{१७} रघुनन्दन,^{१८} सीतापति,^{१९} रघुपति,^{२०} जानकीवल्लभ,^{२१} रघुश्रामणी,^{२२} मातङ्गैकबुलप्रकाशनिलक,^{२३} ललांक्य-रक्षामणि,^{२४} रामदेव,^{२५} दशरथनन्दन,^{२६} बालनारायण,^{२७} भरताग्रज,^{२८} कोशलनरेन्द्र-नन्दन,^{२९} रघुकुलचन्द्र,^{३०} मंगिलीनाथ,^{३१} रघुभुञ्ज,^{३२} दशकण्ठसूदन,^{३३} कौशल्यातनय^{३४} ।

रावण की नामावली भी दृष्टव्य है—दुर्धरतपोविशेषपरितोषितारविन्दामन,^{३५} त्रिभुवनैकमल,^{३६} हेलावन्दीकृतमहेन्द्र,^{३७} कपिशलोमगवाह,^{३८} अहल्याजार^{३९}

१ वही अ० १० पृ० २८६ । २ वही अ० १० पृ० २८४ ।
 ३ वही अ० १० पृ० २८१ । ४ वही अ० ५ पृ० १३९ । ५ वही
 अ० २ पृ० ५७, ६३, अ० ५ पृ० १४२ । ६ वही अ० ५ पृ० १२४ ।
 ७ वही अ० ३ पृ० ५७, ६४ । ८ वही अ० ३ पृ० ५७ । ९ वही अ०
 १ पृ० १६ । १०. वही अ० १ पृ० १९ । ११ वही अ० ५ पृ० १२३ ।
 १२ बालरामायण अ० १ पृ० १४ । १३ वही अ० २ पृ० ३२, अ० ३
 पृ० ५६ । १४. वही अ० २ पृ० ४८ । १५ वही अ० ६ पृ० १७७ ।
 १६. वही अ० ४ पृ० ११२ । १७ वही अ० ५ पृ० १४४ । १८ वही
 अ० ६ पृ० १४९ । १९ वही अ० ७ पृ० १७३ । २० वही अ० ७
 पृ० १७९ । २१ वही अ० ७ पृ० १८३ । २२ वही अ० ७ पृ० १८९ ।
 २३. वही अ० ८ पृ० २१५ । २४ वही अ० ९ पृ० २१९ । २५ वही
 अ० ३ पृ० ५७, अ० ६ पृ० १६० । २६ वही अ० ९ पृ० २७० । २७ वही
 अ० १० पृ० २९३ । २८. वही अ० १० पृ० ३०७ । २९ वही अ० ६
 पृ० १५६ । ३०. बालरामायण अ० १० पृ० २७७ । ३१. वही अ० ९
 पृ० २६१ ।

द्रुहिणप्रणप्ता,^१ लङ्केन्द्र,^२ लङ्काभर्ता,^३ निजाचरणति,^४ दशानन,^५ पुलस्त्यापत्य,^६
 दशकण्ठ,^७ दशवदन,^८ पीतस्थ,^९ दशनन्धर,^{१०} पातकंकरलिक, विरञ्च-
 कुलकलङ्क, लङ्कोपपति, कुवेरवरो,^{११} सन्नन्दननन्दन,^{१२} निशाचरचत्रवर्ती,^{१३}
 नक्तचिरचत्रवर्ती,^{१४} राक्षसेन्द्र,^{१५} पुलस्त्यपुत्र,^{१६} पुलस्त्यनन्दन,^{१७} राक्षसचत्रवर्ती,^{१८}
 दशमुख^{१९} और दशग्रीव^{२०} ।

पार्वती के लिये भिन्न पदों का प्रयोग किया गया है पार्वती,^{२१} हरवल्लभा^{२२}
 मृडानी,^{२३} चामुण्डा,^{२४} देवी,^{२५} हिमाद्रिमुता,^{२६} महेश्वरवल्लभा,^{२७} भवानी,^{२८}
 भगवती,^{२९} गिरिमुता,^{३०} अचलमुता,^{३१} उषा,^{३२} गिरिदुहितर^{३३} रंदाणी,^{३४}
 गिरिजा,^{३५} गिरीन्द्रमुता,^{३६} एव गौरी^{३७} ।

इसी प्रकार परशुराम के लिये जामदग्न्य,^{३८} परशुराम, आश्रमवैद्यानय,
 श्रुत्यर्पवीधीगुरु,^{३९} भार्गव, भर्गशिष्य, रेणुरापुत्र, गिरिजवालशिष्य,^{४०} भृगुपुत्र,

१. वही अ० ८ पृ० २१४, २५३ । २. वही अ० १ पृ० २३, अ० ७ पृ० १८३ ।
- ६ वही अ० ६ पृ० १५६ । ८. वही अ० २ पृ० ५७, अ० ६ पृ० १६० ।
- ५ वही अ० ५ पृ० ११५ । ६ वही अ० १ पृ० १५, अ० ३ पृ० ६४ ।
७. वही अ० १ पृ० २२, अ० ३ पृ० ६३ । ८ वही अ० २ पृ० ३६, ४३, १८
- ९ वही अ० १ पृ० १२, अ० २ पृ० ३८ । १० वही अ० २ पृ० ४७ ।
- ११ वही अ० २ पृ० ४६ । १२ वही अ० २ पृ० ४२ । १३. वही अ० २ पृ० ३६ । १४. वही अ० १ पृ० २७ । १५. वही अ० १ पृ० २० ।
१६. वही अ० १ पृ० २१ । १७. वही अ० १ पृ० २० । १८. वही अ० १ पृ० १६ । १९ वही अ० २ पृ० ३२ । २० वही अ० १ पृ० १९ ।
२१. वही अ० १ पृ० २५ । २२ वही अ० १ पृ० २३ । २३ कूर्मपुराण अ० ४, १९ । २४. बालरामायण अ० २ पृ० ३२ । २५ वही अ० २ पृ० ४५ ।
- २६ वही अ० ४ पृ० ९५ । २७ वही अ० २ पृ० ४८ । कूर्मपुराण १।६ ।
२८. बालरामायण अ० ४ पृ० ९३ । २९ वही अ० ४ पृ० ९६ । ३०. वही अ० ४ पृ० ९५ । ३१ वही अ० ४ पृ० १०९ । ३२. वायव्यमीमांसा अ० १३ पृ० ७१ । ३३ कूर्मपुराण अ० १.३ । ३४. वही अ० १, २९, ३० ।
- ३५ बालरामायण अ० १ पृ० १० । ३६ वही अ० ८ पृ० ३२ ।
- ३७ वही अ० २ पृ० ३८, ४३, ५१, ५२, अ० ३ पृ० ८६ ।

हनुमेश्वरारिणिष्य,^१ नीललोहितारिणिष्य,^२ रणुकेष्य,^३ जमदग्निमूत्र,^४ भृगुनन्दन,^५
जमदग्न्यपाय,^६ भार्गवपुङ्गव,^७ जमदग्निज,^८ चण्डीजणिष्य,^९ रेणुकामुन^{१०} ।

ममुद्र के निवे भागीरथीवल्लभ,^{११} जलनिधि,^{१२} समुद्र,^{१३} पयोधि,^{१४}
अम्भोधि, ध्रुवनिधि, वारानिधि,^{१५} जलधि,^{१६} अम्बुधि,^{१७} तरणिणीनाथ,^{१८}
रत्नाकर,^{१९} अग्निष्य,^{२०} जलधन,^{२१} साबद,^{२२} भागीरथीनाथ,^{२३} पीयूषकर,^{२४}
पद्मवन्तभ,^{२५} नदीनाथ,^{२६} अर्णव,^{२७} महार्णव,^{२८} शकटानघ,^{२९} धक्कूपाद,^{३०}
वारिराशि,^{३१} महोदधि,^{३२} ये शब्द प्राये हैं ।

राजशेखर के कोष में अनुकरणात्मक शब्दों का प्राचुर्य है जिनके प्रयोग में
भाषा में मीन्द्र्य और अभिव्यञ्जना का समावेश हुआ गया है । ये शब्द हैं—विरह-
साविह,^१ सुग्रिमसुग्रिम,^२ स्वन्दावस्वन्द,^३ मटमटित,^४ रम्भारम्भादित,^५
तारातारादिष्य,^६ कहरहारव,^७ कोष्ठप्रकोष्ठ,^८ कोटरदण्ड,^९ भसभञ्ज,^{१०}
चञ्चपत्र,^{११} पराङ्मुकपरमूर्ख,^{१२} मनुक्त-मकुन्त,^{१३} चतुरङ्ग-चतुरङ्ग,^{१४}
मातङ्गमातङ्ग,^{१५} स्थन्दनस्थन्दन,^{१६} अनौरसमनोरस^{१७} ।

१ बालरामायण अ० २ पृ० ६० । २ वही अ० २ पृ० ६२ ।
३ वही अ० ६ पृ० ९१ । ४ वही अ० ६ पृ० ९५ । ५ वही अ० ४
पृ० ९५ । ६ वही अ० ६ पृ० ९७ । ७ वही अ० ४ पृ० १०० ।
८ वही अ० ६ पृ० १०४ । ९ वही अ० ६ पृ० १०९ । १० वही
अ० ७ पृ० १०३ । ११ वही अ० ७ पृ० १०६ । १२ वही अ० ७ पृ० १०७ ।
अ० १० पृ० २९८ । १३ वही अ० ७ पृ० १०८ १०९ । १४ वही
अ० ७ पृ० १०८ । १५ वही अ० ७ पृ० १०९ । १६ वही अ० ७ पृ०
११११ । १७ वही अ० ७ पृ० ११३ । १८ वही अ० ७ पृ० ११९ ।
१९ बालरामायण अ० ५ पृ० २७ । २० वही अ० ४ पृ० २७ ।
२१ वही अ० ६ पृ० १०९ । २२ वही अ० ४ पृ० १०९ । २३ वही
अ० ५ पृ० १३३ । २४ वही अ० ५ पृ० १३३ । २५ वही अ० ५
पृ० १४६ । २६ वही अ० ६ पृ० १४५ । २७ वही अ० ७ पृ० ११९ ।
२८ वही अ० ७ पृ० २०१ । २९ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३० वही
अ० ७ पृ० २०१ । ३१ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३२ वही अ० ७
पृ० २०१ । ३३ वही अ० ७ पृ० २०१ । ३४ वही अ० ७ पृ० २०१ ।
३५ वही अ० ७ पृ० २०१ ।

राजशेखर को कुछ शब्दों से विशेष लगाव है । इन्होंने इन शब्दों की आवृत्ति एवं उनका उचित वित्यास किया है । ये शब्द हैं—यौष्ठीयरिष्ट,^१ पाप्मासिक,^२ मासल,^३ माञ्जिष्ट,^४ सौविदल्ल,^५ दुग्धमुग्ध,^६ पाद्मुग्ध,^७ मौन्नागत,^८ उपनिपद्,^९ भ्रमुंव स्व,^{१०} द्विभे,^{११} कौदण्ड,^{१२} कौदण्डदण्ड,^{१३} वण्ड,^{१४} डामर,^{१५} धामणी,^{१६} और ग्राम^{१७} । राजशेखर ने कपितपय शब्दों का प्रचलित अर्थ से भिन्न रूप में प्रयोग किया है । परन्तु उनमें कही विमर्श नहीं माने पाई । उदाहरणार्थ— सनाभि का प्रयोग समान अर्थ में, भून का उच्च के अर्थ में, विलिन का मिथित के लिये, वन का सामान्य वृक्ष समूह के लिये, प्रणमिनी का सुन्दरी के लिये एवं परिभ्रम का भ्राति के लिये प्रयोग ।

इनकी रचनाये कतिपय नूतन किन्तु रमणीय शब्दावली में विभूषित हैं । यथा—पुराणमौक्तिकमणिच्छायै^१स्सममुच्छ्रयच्छविश्वन्दमा,^२ वासविशाल^३ परिणामस्पुटित-दाहिमी-कन^४ सीनागुह,^५ कुसगुह,^६ वीक्षायुह,^७ स्मरलेखवाचन-केलीप्रदीप,^८ पारदरसकुम्भिन,^९ पारदरससिक्कन^{१०} ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजशेखर की संहिता उनके मौल्य पांडित्य से मण्डित है ।

१. विडगालमञ्जिका अ० १, ६, ३५-३६, अ० ८, १-२ । २. वही १।१७-२५ । ३. वही १।१२, १८, २६, ३६; ३।१६-१७ बालरामायण ४।१०-११; ७।६४-४५ । ४. विडगालमञ्जिका १।१, ३।०-१-२, बा० रा० ३।१०, २४, ८५; ५।२६, ३८ । ५. वही १।६; बा० रा० १।४०-४१, ४।५६-५७ । ६. वही १।३९, ३।८, बा० रा० ५।३८ । ७. वही १।९, ३।१-२; बा० रा० ५।५८-५९ । ८. वही १।३३-३४; २।३-४; ४।१-२ । ९. बा. रा. ३।७-८; ४।०-१-२, २९, ६८ । १०. वही १।६१, २।२९-३०, ५० । ११. वि. भ. १।११-२३, बा० रा० १।६२ । १२. वही १।४१, ४७, ४३, ४५, ७०, ७३, ८३, ४।१७, २३, ७२, ७८; ५।३२, ६५८ । १३. वही १।६१, ४७, ६१; ५।२६ । १४. वही १।४६, ६१-६२; २।२९; ३।८९, ३०, ८२, ४।१९ । १५. वही १।४६; २।७, ३४, ५८, ३।३७ । १६. वही ३।१०; ४।५०-५१ । १७. वही ५।६-७, १८-३६ । १८. विडगालमञ्जिका १।११ । १९. वही १।११ । २०. वही १।११ । २१. वही १।१४-१५ । २२. वही १।२९ । २३. वही १।१ । २४. वही १।२७ । २५. वही ३।११ । २६. वही ३।१७ । २७. वही २।१६

राजशेखर की प्राकृत

प्राकृत भाषा राजशेखर के ग्रन्थों में प्राकृत का पूर्ण विकसित रूप दृष्टिगत होता है । बर्पूरमञ्जरी सट्टक की रचना प्राकृत में ही है । बालरामायण के नीच पाठों के सवादों में तथा विद्वत्तात्मजिका के कल्पित पात्रों के सम्भाषण में इसी भाषा का व्यवहार किया गया है । राजशेखर का प्राकृत के प्रति प्रेम निम्न पंक्तियों में ध्वनित होता है ।

परमा सात्किण्वधा पाठयन्थां वि होह मुउमारो ।

पुरामर्माह्लाण जेतिममिहत्तर तेतिम पिमाण ॥^१

सम्भूत भाषा में की गई रचनाएँ नीरस होती हैं, प्राकृत की रचनाएँ ही मधुर होती हैं । जिस तरह पुष्प कटोर होने हैं उसी तरह सम्भूत रचनाएँ कटोर होती हैं । जिस तरह स्तिषा मुकुमार होती है उगी तरह प्राकृत रचनाएँ मधुर और मुकुमार होती हैं ।

राजशेखर ने अपनी रचनाओं में प्राकृत के शौरसेनी एवं महाराष्ट्री इन दो भेदों का ही प्रयोग किया है । इसके बाव्य में शौरसेनी वच के लिये तथा महाराष्ट्री वच के लिये प्रयुक्त है ।

शौरसेनी शूरसेव जलपद के निवासियों की भाषा की खोजवाला की भाषा शौरसेनी कहनाभी थी । शौरसेनी प्राकृत की प्रकृति सस्कृत ही है ।

महाराष्ट्री प्राकृत प्राकृत शब्द का प्रयोग साधारणतः महाराष्ट्री प्राकृत के लिये ही किया जाता है। इस भाषा की उल्लेखनीय विशेषता इनके स्वरबाहुल्य में है । शौरसेनी भी अपनी विशेषताओं के अनुरिक महाराष्ट्री प्राकृत पर प्रभावित है । बर्पूरमञ्जरी सट्टक में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री के सर्वों का प्रयोग निम्न रूप में उल्लेख है —

मराकृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
अय	अय	अट्ट
तपा	तथा	तट्टा
यथा	यथा	यट्टा
वयम्	वयम्	वट्टम्
इह	इह	इट्ट

संस्कृत	गोस्वामी	महाकाव्यी
तन	तपो	तपो
इदम्	इदम्	इधम्
इति	इति	इद
जानानि	जानादि	जाणाद
इदानी	देनु	देउ
भयानि-नु	भोदि-नु	होई-हो
भविष्यति	भविस्सति	होद
सभने	सहदि	गहइ
वतने	वसति	वसई
प्रवर्तनाम्	पवतदु	पवतउ
तिष्ठति	चिष्ठति	थह
हरति	हरति	हरइ
वक्ष्यताम्	वक्षिअदु	कहिनउ
प्रियताम्	करिअदु	किअउ
दुखपने	दिसति	दिसइ
भण्यते	भणिअति	भण्णइ
वृत्त	विद	वअ
गन	गद	गअ
जात	जाद	जाअ
हित	हिद	हिअ
प्रानीत	प्रानीद	प्रानीअ
स्थित	मिद	मिअ
स्पर्शित	धाविद	धाविअ
कलित	कलिद	कलिअ
कथित	कथिद	कथिअ
घटित	घटित	घटिअ
दमित	दडद	दहअ
पुष्टित	पुष्टिद	पुष्टिअ
भूत	भरिद	भरिअ
निवेष्टित	निवेसिद	निवेसिअ

सम्वृत	श्रीरसेनी	महाराष्ट्री
अवतीर्ण	प्रोदिल	अवदन्न
अद्भुत	अच्यप्रभुद	अम्भुध
असरित	प्रमविद	प्रमद
अप्रुति	पहुदि	पहुड
आकृत	पाउड	पाउध
अस्वृत	मववद	मववध
अनोरप	मनोरप	मनोरह
अरवत	मरगद	मरग
मिधुन	मिपुन	मिधुन
रति	रदि	रड
रीति	रीदि	रीय
वाड	वाड	वाध
तोप	मोद	मोध
सरग्वनी	गरस्वदि	सरगद
सरित	मरिद	मरिध
मग्मध	मग्मध	मग्मह
दिवम	दिवम	दिधद

राजशेखर ने वपुंगमञ्जरी में श्रीरसेनी एवं महाराष्ट्री के उन सम्वृत मूलक शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है जिनके रूप दोनों में एक ही है ।

श्रीरसेनी एवं महाराष्ट्री

सकृत	मुणाव
मुणाव	वेण्ट
बुग	विर्मादिध
मुगगुणा	मधमालन
मुगमालन	रिक्क
मदश	मुल्ल
जीर्ण	वेगज
वेण	मोतिध
मोतिध	मुणाद
मुणाद	

किङ्कणी	किकिणी
फलक	फलिम
शृङ्खला	मिथिना
महोत्सव	महूसव
अधकार	अधआर
स्वप्नक	मिविणम

राजशेखर की मौलिकता उनके नूतन शब्द प्रयोगों में है। जैसे सिम्बल के लिये दिल्म एवं मिदिल का प्रयोग, सट्टी का हिल्ट प्रयोग (सता एव यष्टि रूप में) यष्टि के लिये सछिनी का प्रयोग तारुण्य के लिये सनिम राजा के लिये ठक्कुर शब्द का प्रयोग प्राकृत में निगान्त मचीन है। इन शब्दों पर कन्नौज की स्थानीय बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

व्याकरण की शुद्धता : राजशेखर की प्राकृत व्याकरण परिनिष्ठित है। दसका भाषा का मूल आधार व्याकरण है। व्याकरण की दृष्टि में शुद्धशुद्धता के प्रति राजशेखर पूर्णतया जागरूक है। कतिपय प्राकृत शब्दों के विवेचन में यह कथन स्पष्ट हो जायगा।

व्याकरण की दृष्टि से कुछ प्राकृत शब्दों की समीक्षा

धनुह^१ — 'धनुपो वा'^२ धनुष् शब्द के प्राकृतिकरण में धत्त्यन्त व्यञ्जन का ह हो जाता है।

सारिच्छो^३ — 'अत समृद्ध्यातो वा'^४ — सहृद्ध्य शब्द के प्रादि आकार का जो हो जाता है।

गिडाल^५ — 'पक्वाङ्गार-मलाटे वा'^६ तथा एषवादेरत इम्ब वा भवति — मूत्र में सलाट का गिडाल या गडाल होता है।

मीन्ल^७ — 'उदोडादे'^८ — मूत्र में भार्द्र का मीन हो जाता है।

दूसह^९ — 'लुकि दुगो वा'^{१०} — दुस्मह शब्द के दुर को दू होकर दूसह बन जाता है।

१.	कर्पूरमञ्जरी २।३	१अ शब्दानुशासन १-२२
२.	वही २।३	२अ शब्दानुशासन १-२२
३.	वही ४-१९	३अ शब्दानुशासन १-४४
३	वही २-२०	३अ शब्दानुशासन १-४७
४.	वही १-२८, ३-१, ४-४७	५अ शब्दानुशासन १-८२
५.	वही ४।१	५अ शब्दानुशासन १-११५

घोर^१ — 'घोत्कूप्याण्डी-तूणीर-कर्पूर-स्थूल ताम्बून-गुड्डी-मूत्ये'^{१७} मूल से स्मूल का घोर रूप होता है ।

तोणीर^१ — उपयुक्त सूत्र से ही तूणीर का तोणीर हो जाता है ।^{१७}

दूहव^३ — 'उत्वे दुभंग-मुभगे घ'^{३७} मूल से दुभंग का दूहव हो जाता है ।

चिहुर^४ — 'निकप-स्फटिक-चिहुरे ह'^{४७} — चिहुर के क का इस नियमा-नुसार ह हो जाता है ।

बम्मह^५ — "मन्मथे घ"^{५७} — मूल से मन्मथ के म का व हो जाता है ।

हरिप्रदु^६ — "रचो हरिप्रन्द्रे"^{६७} — मूल से हरिप्रन्द शब्द के प्र का म हो जाता है ।

धूभा^७ — "दुहितृ-भगिन्योधूभा-बहिष्यो"^{७७} — मूल से दुहितृ का धूभा हो जाता है ।

आदत^८ — "मलिनोभय-भक्ति छप्सारब्ध-पदानेर्मइलावह-मिप्पि-छिक्ता-उत-माइक्"^{८७} मूल से आरब्ध शब्द आदत में परिवर्तित हो जाता है ।

मिप्पि^९ — "उपयुक्त सूत्र से ही भक्ति शब्द का रूप मिप्पि होता है"^{९७} ।

बैहलिप्र^{१०} — "वैहुर्यम्यवैहलिप्र"^{१०७} मूल से वैहुर्य शब्द को वैहलिप्र आदेश हो जाता है ।

बाहिर^{११} — "वैहुरी बाहि-बाहुरी"^{११७} बाहि शब्द का इस मूल से बाहिर आदेश हो जाता है ।

१ वही २।२७, ४४, ३।६।१९ १म शब्दानुशासन १-१२४ । २ वही २।१६ । २म शब्दानुशासन १-१२४ । ३ वही ३।२३ । ३म शब्दानुशासन १-१९२ । ४ वही २।२१ । ४म शब्दानुशासन १-१८६ । ५ कर्पूर मजरी २-३, १८, ३९, ३।११ । ५म शब्दानुशासन १-२४२ । ६ वही २-४० । ६म वही २-८७ । ७ वही २।१९।१९ । ७म वही २-१२६ । ८ वही ४-९, १-४ । ८म वही २-१, ३८ । ८क प १-४ १म-शब्दा० २-१३८ । ९ वही १-३४ । ९म वही २-१३३, २-१३८ । १० वही १-३४ । १०म वही २-१४० । ११ वही क० प० १-१४, १८-२० । ११म वही २-१४४, २।२।१।१।१८ ।

घर^१ —“गृहस्य घरापती”^{१३}—इस मूत्र पर गृहशब्द घर में परिवर्तित हो जाता है ।

पण्डित^{१४}, तुग्मि^{१५}, धवनिम^{१६}, तर्जिम^{१७}, त्वस्य डिमा-तणी वा^{१८}

मूत्र से पण्डित तुग्मि, धवनिम और तर्जिम शब्द के त्व प्रत्यय डिम में परिवर्तित हो जाते हैं ।

उपरोक्त वर्णनय उदाहरणों में स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर की प्राकृत इतनी व्याकरण सम्मत है कि भाचार्य हेमचन्द्र ने राजशेखर की प्राकृत के आधार पर शब्दानुशासन में प्राकृत शब्दों का विवेचन किया है, यह कहना अति-शयोक्ति न होगी ।

राजशेखर द्वारा प्रयुक्त प्राकृत भाषा पर दृष्टि डालने से हमें दो बातें अवगत होती हैं । एक तो यह कि उन्होंने देशज शब्दों को उद्धारना में अपनाया है ।

कन्दोद^१, रिछोली,^२ हनुवोली,^३ (हलबुन्नापा) छइल्ल,^४ टप्परवणी^५
टैटाकराल,^६ बक्कर,^७ निर्मिमल,^८ बुक्का,^९ भवडल्ल,^{१०} वरिल्ल,^{११}
उन्निमियर,^{१२} बडिल्ल,^{१३} चचरीमो,^{१४} चग,^{१५} मोलम्माविम,^{१६} मरह,^{१७}

१ वही १-१६ । १७ वही २।१५४ । २ वही १।३६, ३।६ ।
१८ वही २।१५४ । ३. वही २।४१ । १९ वही २।१५४ । ४ वही ३-१९
६ वही २।१५४ । ६ बा० रा० पू० ६९, २०२, २४२, २५९, वि० भ०
१-१९।२० । ७ बा० रा० पू० ६५, ६६, ७५, १९४, २०९, २४०, वि० भ०
पू० ३।२२।२३ व० म० ३-२० । ८ बा० रा० पू० १५०, २००, क० म०
१-४, ३-३४ । ९ क० म० १-५, ३-९ । १० क० म० १-१८, २० ।
११ बा० रा० ११, वि० भ० ३।३-४ । १२. बा० रा० पू० ८ । १३ बा०
रा० ९ । १४ क० म० १-२० । १५ बा० रा० पू० १४१, क० म० ४-१२ ।
१६. क० म० १-१२ । १७ क० म० १-२७ । १८ वि० भ० १-४
१९. बा० रा० १२६, व० म० १-३१-३३ । २०. वि० भ० १।३१।३४ ।
२१ क० म० २-२३, ३-३० ।

‘देव पेकञ्जदु अणवरप्रविण्णदणधुमिणचुण्ण विम्व धम्मर विरमन्तं
भुवणसम्पन्नमरिदं रम्यसमुद्गमं विम्व वित्थारमन्तं विदिदं सप-दिण्णपप्राण
विम्व धरणिमण्डलं दममन्न विट्ठिमवमुत्तराफेनमन्नं रवितुत्तराण उच्छलित-
धूतित्तपयत्तिलीकिमभूमिमारसणेण किम्वहानुगहं भूधववड्णो सेमस्म
वीरज्ज दसणणिवेमिधवेसविम्वसपमुलत्तणेण असुइयवित्थारं विज्जाहरोहि
पयोमिविमदट्ठमण्णकन्दोट्ठमरणिवारणदिण्णपाणि पिद्धिववणत्तणेण जुत्तिल्लम
धच्छराहि पच्छाटकारगुणिज्जन्तकण्ठे कण्ठमकिणिगीत्तणकारजाणिज्जन्त
मग्गय हेमारवसूदज्जन्ततुरग बहुमिण्णणिविडणमन्नाटिमवक्कड्डकार-
कण्ठज्जन्तधोमुक्क अणपरिपमपिडिआणिज्जन्तरिकखरक्खमवाणर चउरङ्गवल-
पहुलपरणमवो हसमुलम्मिधरेणुविरइअणीरज्जान्धमारं समरक्ख दट्ठे ।’

सेतु निर्माण के वर्णन के लिये समासबहुल भाषा का प्रयोग किता उचित है ।
देखिये —

‘गुरुगुहामुहरपट्टट्टममरा तरक्खणिसण्णमखिचिन्कखका
विम्वसिलाम्लरूपडिडित्तिप्पिसुटमुक्कमोत्तिक्करमिधदणियम्मा तत्तप्पहड्ड-
सेयात्तज्जिलक्का जत्तनिमडपत्तणानिमिन्दमवरणा चिरवीसम्भामविम्वकमत्तणा-
हमण्ठकुलत्तिमिणित्तरड्डकन्दरुद्धन्ता उच्चरि निक्कणमहिहरपग्गवत्तिडणमण्ण
सिक्किण कृणन्ति मित्ठुच्चमत्तवया ।’

समास-बहुल भाषा के ऐसे अनेक उदाहरण वालरामायण में बिजरे पड़े हैं
किन्तु वे सब समयानुसूल भाव-व्यञ्जन के लिये ही हैं ।

महाँ हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न होता है, वहाँ वे आविद्ध
(समास रहित) शैली का आशय लेते हैं । कैकेयी का शोक-प्रदर्शन इस
आविद्ध शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, यथा

‘कैकेयी (सवरण) भग्नवदि राममदसाणु सीदाजणि वसुन्धरे रन्ध
देहि अमं पणइज्जो भाग्यादि गृहजलवसूसमागमे पडिन्निव्हा ण जीविहं परिमं ।
हा जाद भरद भातिधदुज्जत्तकलविदा कव दे मुह दसदस हा ताद संभाविदोअमि
दुक्खेण हा मम्म निट्ठमिवाअमि हा कोसल्ले सत्तिदाअमि हा भुमत्ते सरीरमेत्ती-
कदाअमि (इति रोदिति) ।’

१. वालरामायण अ० ७।६४-६५ । २. वालरामायण अ० ७।४९-५० ।

३. वालरामायण ७।१९ ।

राजशेखर यथावसर अपनी कृदन्तप्रियता का भी परिचय देते चले हैं । वर्तमानकालिक कृदन्तो का रविर विन्यास देखिये—

‘अण्णोण्णजुञ्जतजलहन्तिस्तथा वरलोसकेलिणिलुक्कतगिरिरिस्त्रिणो
लखिज्जततिथसेदसिधुरवघवा समुल्लसतपीऊलसेसा दीसतदेवदुमपादवाल-
वाला अवलोहज्जतनाराधणमूअरसमुच्चरिदधार्णिवेडिनुक्कणट्ठाणा वित्थ-
रतकोत्पुहुमगोत्तमणिकरविदपाअलज्जवाला उज्जतलच्छीवातविनामुद्देमा
सापपचपचजणजणोत्तमणिणीसखिणीसणाहा ससभमव्वमतकच्छद्विडिभगग्गमा
पमडिज्जतदामोदरणिहाविमुद्दसअणिज्जसेसरमणिज्जामट्ठतिमिगोत्तमिनिज्जतति
मिगिला णिअर भरति ।’^१

लखिज्जन्त, दीसन्त अवलोहज्जन्त, वित्थरत, पमडिज्जन्त गिलिज्जन्त
वर्तमानकालिक कृदन्त के रूप हैं ।

भूतकालिक कृदन्तो का मनोहर प्रयोग इस वाक्यावली में देखा जा सकता
है—

अज्जउत्त होमोहज्जतहुदधहा विवरिज्जतकयमुत्ता पठिज्जन्त वट्ठवरणा
वाणिज्जन्त धम्मसास्त्रासणिवेस धम्हरीत्ताणा ससार गण्ठिणिट्ठवणा ।^२

राजशेखर प्रसंगानुसार अपनी तद्विप्रियता का परिचय भी देते हैं यथा—

‘यथा यस्य संज्झोदमव भैरवीय तौम्बुरवमोमापतमादंनारीश्वरमैन्दुशेखर
मन्तकान्तकर बालकूटीयं जम्भारिभुजस्तम्भन दधमद्योग्मायि माम्मय
मैपुरमन्धकामुरीयमित्यपरंमप्यपरिमेय चित्र चरित्रजातमाचक्षते । तस्य भगवन्-
श्वैष्टापरीक्षाया को नाम परमेष्ठिवैकुण्ठावपि । किं पुनर्मूर्ध्निरिति ।’^३

राजशेखर की रचना शैली के विविध उदाहरण हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाने
हैं कि उनकी रचना शैली में वैदर्भी, पावाली, एवं गौड़ी रीति का उचित विधान
हुआ है । समरागण की भयानकता एवं युद्ध की विभोषिका के प्रदर्शन के लिये
उन्होंने भोजगुण युक्त कठोरवर्णों एवं दीर्घसमासों से पूर्ण गौड़ी रीति का आश्रय
लिया है, विन्तु हृदय को स्पष्ट करने वाले भावों के लिये (यथा-रामवनगमन
के पश्चात् नैकेयी के शोक प्रदर्शन या रावण वध के उपरान्त वैश्वव्यत्यया
लका की शोशमिव्यक्ति में) उन्होंने घसमाय या मध्यममास रचना का धरण
रिया है । बालरामायण की शैली प्रायः गौड़ी है । विदशालमजिना एवं

'कर्पूरमञ्जरी' की गरम रचना द्वारा वैदर्भी एवं पांचानी के समान की पूर्ति हुई है। नायिका के मोहदे-भर्त्सने में माधुसूदन युक्त पदरचना के द्वारा वैदर्भ भावों का प्रकटन किया गया है। उन्होंने पदसुन्दरता में छोटे छोटे समासों में युक्त 'पांचाक्षी' शैली का धारण माना है। उक्त शैलियों के प्रयोग में उनके धनैक वर्णन जो सम्भवतः मीरम और बोलित हो गये थे, ध्वनित रहित, गरम और हृदयपाती हो गये हैं। उनकी नाट्यशैलियों में इन तीनों शैलियों का विभाग पाया जाता है। और यह हम जान का भी सम्भव है कि वे शैलियों के दान मंत्री हैं ध्वनि प्रसन्नानुसार शैली ही उनका दानीय प्रण बनती है।

निष्कर्ष हम प्रारंभ राजशेखर की रचना शैली एवं उनके द्वारा व्यवहृत मञ्जरी, प्राकृत एवं देशज भाषा के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने भाषा-मन्त्री प्राचीन परिपाटी का विनोदन कर देशराम के उपयोगी तत्त्वों को लेकर नव्यानीय प्रभावी के साथ उनका धूर्त सम्मेलन करने उपरान्त साहित्य की सृष्टि की है। इस भाषा प्रयोग के द्वारा प्राचीनता की रक्षा भी हो गई है और भविष्य के मन्त्रियों के लिये भी एक प्रकल्प हुआ है।

राजशेखर की नाट्यकला

नाट्यकला की दृष्टि में राजशेखर के नाटकों का समीक्षण करने पर ये कुछ कथारार निम्न होते हैं। जहाँ तक कर्तु का प्रश्न है, राजशेखर का क्षेत्र सीमित है। वालरामायण एवं वालभारत की ब्याप्त्यु रामायण एवं महाभारत के प्रथम आख्यान में सज्ज है तथा विद्वान्नामजिका एवं कर्पूरमञ्जरी की लोचन पर आधारित। प्रथम दो के विन्यास में राजशेखर ने परम्परा के पालन के साथ ही उचित मौनिकता का भी संश्लेषण किया है जिसका कथानक के प्रसंग में विवेचन हो चुका है।

राजशेखर के पात्र बड़ी कुशलता से निर्मित हैं। वे सामान्यतः एक ही घरा-तन पर स्थित हैं। विद्वान्नामजिका और कर्पूरमञ्जरी दोनों की महारथी विभ्रम-नेत्रा नाम धारण करती है।

राजशेखर के मवादों का भी विशेष महत्व है। चाहे बातनिर्णय हो या कोई दृश्यवर्णन, यह बहुत दूर तक चलाता है। वही वही पर सीमा का प्रति-धमन भी कर जाता है। अच्छा है कि यह दोष केवल वालरामायण में ही दिखाई देता है।

खण्ड ३

राजशेखर का आचार्यस्व

मध्वार्थशासनमिदं कति नो कवन्ते
यद्वाद्मत्र श्रुतिघनम् चकार्ति चक्षुः ।
शिल्प्यस्ति यद्वचमि वम्नु नव सदुक्ति-
मन्दाभिषा म धुरि तस्य गिरपरिद्रा ॥

राजशेखर का आचार्यत्व

साहित्य-शास्त्र के इतिहास में राजशेखर का स्थान, उनकी अनेक मौलिक उद्घाटनाओं तथा वाक्य-शास्त्र को समृद्ध करने के शान्त विशेष गौरवशाली है। उनके आचार्यत्व की आधारशिला उनका एक मात्र ग्रन्थ वाक्यमीमांसा है। उन्होंने इस ग्रन्थ में अपने लिये राजशेखर शब्द का प्रयोग केवल एक बार "व्याकरणोत्पादकमीमांसा ब्रह्मणो राजशेखर" शब्द का ही प्रयोग प्रायः इस उक्ति द्वारा किया है। इस ग्रन्थ में मेखन ने लिये यायावरीय के शब्द का ही प्रयोग प्रायः हुआ है। इसलिये इस प्रना में उन्हें यायावरीय नाम से संबोधित करना अधिक उपयुक्त होगा।

कवि, कविता और कविता शक्ति के सर्वप्रथम वैज्ञानिक निरूपण का श्रेय यायावरीय को ही प्राप्त है। उन्होंने अविर्त्स्य नामक अधिवरण में कवि-भेदों एवं कविचर्या का जो चित्रण किया है, उसे परबनी आचार्यों ने आदर्श रूप में स्वीकार दिया है। यायावरीय ने पूर्वजनों आचार्यों द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुगमन, यहाँ तक कि कभी कभी उनके द्वारा प्रतिपादित तथ्यों का यथावत् उद्धरण करते हुए भी अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा वाक्य के नवीन मानदण्ड निश्चित दिये हैं जो आज भी आचार्यों के दृश्यदर्शन में सहायक सिद्ध होते हैं। वे कवि शिक्षा सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। यायावरीय के परबानु क्षेत्र, अरिनिह, अमरचन्द्र तथा देवेश्वर आदि आचार्यों ने भी उनके पथ का अनुसरण कर, कविशिक्षा-विषयक ग्रन्थों की रचना की।

अनकारशास्त्र के इतिहास में यायावरीय ही सर्वप्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'वाक्य' के अर्थ दिया है। उनकी सम्मति में साहित्य पञ्चमी विद्या है क्योंकि यह वार्तिका आदि प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित चारों विधाओं—आन्वीक्षिकी, खरी, वार्ता तथा दृष्टान्तों का निरूपण सा है।

“प्रातृबीशिकी त्रयी वार्ता दण्टनीनिश्चतस्रो विद्या ।” इति कौटिल्यः । पञ्चमी साहित्यविद्या इति याज्ञवल्कीयः । मां हि चनमृणामपि विद्याना निष्यन्द । साहित्य के क्षेत्र में काव्यपूर्वक की प्रवृत्तियों एवं भुवनकोश का सजीव चित्रण याज्ञवल्कीय की निजी एवं मौलिक देन है । वाक्यशास्त्र के समस्त विषयों को अपने ग्रन्थ में स्थान देकर समन्वय-प्रणाली से ग्रन्थ का प्रणयन याज्ञवल्कीय की नृननता का जागृत्यमान प्रमाण है । ये मौलिक उद्भावनायें तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा उनका मुक्त रूप में ग्रहण प्रमदित रूप में याज्ञवल्कीय के आचार्यत्व को प्रेतिष्ठित करना है ।

प्राचार्यत्व : प्राचार्य शब्द प्राश्नोपसर्गपूर्वक चर्चा प्रातृ प्रत्यय होकर बनता है । इस शब्द का व्युत्पत्तिशब्द ग्रन्थ—वेदाध्यापक अथवा वैदिक मन्त्रों का व्याख्याता है ।^१ महर्षि मनु की मन्मति में जो द्विज शिष्यों को गृहस्थ वेद का अध्ययन करवाता है उसे प्राचार्य कहते हैं ।^२ रिन्दु साहित्य शास्त्र में किसी निशिष्ट मन्त्रदाय अथवा सिद्धांत के प्रतिपादन एवं पोषण विद्वान् ही प्राचार्य अभिधान में सम्मानित हो सकते हैं । वाक्यशास्त्र के आचार्यों की कगौड़ी है (१) मौलिकता, (२) सूक्ष्म दृष्टि एवं (३) स्पष्ट प्रतिपादन । काव्यमीमांसा में राजशेखर ने तीनों समताओं का स्पष्ट परिचय दिया है । अतः उन्हें प्राचार्य कहा जाना उचित है ।

ग्रन्थ का अभिधान : उचित अभिधान का चयन, ग्रन्थकार की बुद्धिमत्ता का परिचायक है क्योंकि समीचीन अभिधान पुस्तक के बह्वच्य को स्पष्ट रूप से प्रगट करता है । काव्यमीमांसा जीप दो बातों की व्यञ्जना करता है—वाक्य एवं मीमांसा । बर्हि के द्वारा जो कार्य सम्पन्न हो, उसे वाक्य कहते हैं—कवेरिद कार्यभावो वा । मीमांसा शब्द का व्युत्पत्तिशब्द ग्रन्थ है ‘विचारपूर्वक तत्त्व का निर्णय करना’ ।^३ जैमिनि प्रणीत पूर्वमीमांसा में कर्मकाण्ड के तत्त्वों का विचार-पूर्वक निर्णय मिलता है । इसी प्रकार उत्तर-मीमांसा में वेदांत के तत्त्वों का निर्णय

१ शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०। आश्-चर्-प्रत्य-वेदाध्यापक ।

२ वैदिकमन्त्रव्याख्याकर्ता । तत्पर्यायः मन्त्रव्याख्याकर्तृ ।

३ शब्दकल्पद्रुम—प्रथम भाग २।१४०—“उपनीयं तु यं शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः । सकृप सरहस्यं च, तमाचार्यं प्रवक्षते” इति मानव ।

४. कविकल्पद्रुम—सतीय भाग—“मीमांसा स्त्रीमान्—“विचारे स्वार्थे मन्” विचारपूर्वकतत्त्वनिर्णये तत्प्रतिपादकः ग्रन्थः । कर्मकाण्डविषयमन्त्रेण द्विवि-धस्तः । कर्मकाण्डविषयमन्त्र-निर्वाक्यो ग्रन्थो जैमिनिप्रणीतः स च पूर्व-मीमांसत्वेन प्रसिद्धः ।”

प्राप्त होता है। काव्यमीमांसा ग्रन्थ में काव्यतत्त्वों का सूक्ष्म विवेचन, अन्य आचार्यों के मतों का प्रस्तुतीकरण तथा अन्त में स्वमत का निर्णयपूर्वक स्थापन होने के कारण इस ग्रन्थ का काव्यमीमांसा अभिधान अद्वय, यथार्थ है। दूसरी बात, यायावरीय ने जिस युग में पदार्पण किया था, वह भीमासको का युग था। उनके चिन्तन पर युग की प्रतिच्छाया का होना स्वाभाविक है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति काव्यमीमांसा नाम से ही देखी जा सके।

काव्यमीमांसा का अर्थ - काव्यमीमांसा अद्वय अधिकरणों का ग्रन्थ बनलाया जाता है, किन्तु अब तक इसका कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है और बही महित्यनगत से काव्यमीमांसा नाम से व्यवहृत है। हम ग्रन्थ की रचना करते समय यायावरीय ने कुछ ग्रन्थों को आदर्श रूप में अपने सम्मुख रखा है।

इसके प्रथम अध्याय शास्त्र-संग्रह की रचना कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं मातृभाषायायीय कामसूत्र पर आधारित है। तीनों में एक एतद्विषयक स्थलों के तुलनात्मक अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

काव्यमीमांसा	कामसूत्रम्	अर्थशास्त्रम्
(१) तत्र कविरहस्य सहस्रा- शःसमाप्तासीत्, श्रौतिकमु- क्तिगर्भः, रीतिनिर्णयं सुवर्ण- नाम, श्रौपनिषदिकं कुचमारः इति । ^१	तत्प्रसंगाच्चारात्मकः : साधारणमधिकरणप्रो- वाच सुवर्णनामः साम्प्रयोगिक कुचमार श्रौपनिषदिकम् । ^२	..
(२) हत्यकारणं प्रकीर्ण- त्वात् मा किञ्चिदुच्चिच्छि- द्वतीय प्रमोदका (नी) शर्वती सक्षिप्य सर्वमर्थमल्प- ग्रन्थेनाष्टादशाधिकरणी प्रणीता । ^३	(२) एव बहुभिरावा- यैस्तु च्छासुं खण्डशः प्र- णीतमुत्तमं कल्पमभूत् । सक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन- ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम् । ^४	(२) यावन्तमर्थं शास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्राय- शास्त्राणि सहस्रैक मिदमर्थं शास्त्रं कृतम् । ^५

१. काव्यमीमांसा—भायकबाड ओरियण्टल सीरीज—अध्याय १ पृ० १ । -

२. कामसूत्रम्—१११-१८१११ ।

३. काव्यमीमांसा—भायकबाड ओरियण्टल सीरीज अ० १ पृ० १

४. कामसूत्रम् १११-१८१११ ।

५. अर्थशास्त्रम् १११ ।

काव्यमीमांसा के दूसरे अध्याय में यायावतीय ने विद्यास्थानों के सन्दर्भ में, विद्याओं की परिगणना करते हुए बार्हस्पत्य, श्रौशनस, मानव एवं कौटिल्य के मत दिये हैं । यहाँ कौटिलीय अर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण के समूचे अंश ही राजशेखर ने ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिये हैं । वास्तव में वे कौटिल्य के अत्यन्त अज्ञानी हैं । कौटिलीय अर्थशास्त्र के विद्या-समुद्देश प्रकरण एवं काव्य-मीमांसा ग्रन्थ के कविहरस्य अधिकरण के शास्त्रनिर्देश अधिकरण से उद्धृत निम्नलिखित अंग इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं—

काव्यमीमांसा

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति-
विद्या । त्रयी वार्तादण्डनीतियस्तिन्नो
विद्या इति मानव । त्रयीहि वार्तादण्ड-
नीत्योरूपदेष्टी ।^१

‘वार्ता दण्डनीतिर्व्ये विद्ये इति बार्ह-
स्पत्या ।

‘दण्डनीतिरेवैका विद्या इत्यौशनसा
दण्डमयादि कृत्स्नोलोक स्वेपु स्वेपु
कर्मन्ववतिष्ठते ।

‘आन्वीक्षिकी त्रयी वार्तादण्डनीतिश्च-
तन्नोविद्या’ इति कौटिल्य । आभिधेयार्थो
यदिद्यास्तद्विधाना विद्यात्वम् ।^२

अपिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता ।
आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ताना योगक्षेमसा-
धनो दण्डस्तस्यनीतिर्दण्डनीति ।^३
तस्यामायसा लोकयात्रा ।^४

अर्थशास्त्रम्

आन्वीक्षिकीत्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चे-
विद्या । त्रयी वार्ता दण्डनीति श्वेचि
मानवा । त्रयीविशेषोऽह्मान्वीक्षि-
कीति । वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्ह-
स्पत्या सहरणमात्र हि त्रयी लोक-
यात्राविद इति ।^५

दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसा ।
तस्या हि सर्वे विद्यारम्भा प्रति-
बद्धा इति । चतस्रएव विद्याइति
कौटिल्य । आभिधेयार्थो यदिद्या त-
द्विधाना विद्यात्वम् ।^६

कृषिपशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता
आन्वीक्षिकीत्रयीवार्ताना योगक्षेम-
साधनो दण्ड । तस्यनीति, दण्डनीति ।^७
तस्यामायसा लोकयात्रा^८ सामर्थ्य-
जुर्वेदास्त्रयी । अथर्ववेदेतिहासवेदी

१ काव्यमीमांसा—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।

२ अर्थशास्त्रम् १।२।१

३ काव्यमीमांसा—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।

४ अर्थशास्त्रम् १।२।१

५ काव्यमीमांसा—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० ४ ।

६ अर्थशास्त्रम् १।२।१

७ काव्यमीमांसा गायकवाड ओरियण्टल सीरीज पृ० २ ।

८ अर्थशास्त्रम् १।३।१ ।

रहस्य अधिकरण के सत्रहवें अध्याय में भूगोल का मन्त्रित किन्तु स्पष्ट चित्रण है । इसका भी प्रायः वायुपुराण में साम्य है ।

काव्यमीमांसा के 'कविकर्षो राजकर्षाव' नामक दसवें अध्याय के अनुशीलन से स्पष्ट है कि यामावरीय अपने शब्दों में वस्तुवाचन के नागरश्रवत् प्रकरण भी दोहरा रहे हैं ।^१

काव्यमीमांसा के एकदश द्वादश एवं त्रयोदश अध्यायों में चर्चित वृणदिपयक मतों का यत्किञ्चित्पञ्चमीय आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक^२ है । प्रलकारों के विभाजन के लिये यामावरीय ने आचार्य रुद्रट के काव्यावधार सूत्र का महारा लिया है । दोनों के एतद्विषयक स्थलों के तुलनात्मक अवलोकन में यह बात स्पष्ट हो जाती है—

रुद्रट काव्यालंकार	यामावरीय काव्यमीमांसा
यमक	यमक
अर्थात्कार-वास्तव-श्रीगम्य प्रतिषेध	शब्दश्लेष
श्रीगम्य	श्रीगम्य
प्रतिशय	प्रतिशय
शब्दश्लेष	शब्दश्लेष
द्विविधमकर	उभयालंकार
चित्र	चित्र

उन्होंने काव्य की शास्त्रा के लिये आचार्य भरत, रीतिनिरूपण के लिये आचार्य रामान, शक्तिप्रतिपादनार्थ आचार्य रुद्रट एवं वाङ्मय विभाजन के निमित्त आचार्य उद्भट तथा भामह का सहारा लिया है । काव्यमीमांसा से विवर्धित होता है कि राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के चिन्तन का स्थान-स्थान पर उपयोग किया है । परन्तु पूर्वजाओं द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का रूप उनके मूढम चिन्तन द्वारा निम्नर उठा है ।

निम्न प्रकार राजशेखर को अपने पूर्ववर्ती छोटे बड़े समस्त शास्त्रकारों के साहित्य-विषयक विविध मतों का मूढम ज्ञान था, उसी प्रकार से पूर्ववर्ती कवियों के एवं नाटककारों की प्रायः सभी महत्वपूर्ण कृतियों से सुपरिचित थे । उन्होंने केवल उनका विविध भारतीय शब्दों में प्रयोजन किया अर्थात् अपने भारतीय विवेचन

१. वाममूत्र १-४-१

२. काव्यमीमांसा व० १० पृ० ४-९

३. ध्वन्यालोक . ४-१०

में यथाप्रसंग उनका भरपूर उपयोग किया है । निम्नलिखित सूची इन तथ्य को स्पष्ट करती है.—

ग्रन्थ या ग्रन्थकार	काव्यमीमांसा (गायकवाड़ ओरिविष्टन सीरीज की पृष्ठ संख्या)	ग्रन्थ जिनके उद्धरण उपलब्ध हैं उद्धरण सन्दर्भ
१. ऋग्वेद ..	६	३-८-१०-३
२. अग्निज्ञानशाकुन्तलम् ..	१२	७-१२
३. रघुवंशम् ..	१३	६-५७-६-८२
४. कुमारसंभवम् ..	१२	३-६७
५. वैष्णोसंहारम् (महानारायण)	१९	१-२३
६. अग्निज्ञान शाकुन्तलम् ..	२४	२-४५
७. ऐतरेय-ब्राह्मण ..	२५	७-१५-२, १५-१९
८. ऋग्वेद ..	२८	२-१ ११-७
९. निरुक्त ..	२८	३-४-३
१०. वैष्णोसंहारम् ..	३२	१-१२-१-१५
११. किरातार्जुनीयम् ..	३२	९-३९
१२. शतपथ ब्राह्मण ..	३५	५-१-२
१३. महानारायणोपनिषद् ..	३५	१-२-२
१४. सूर्यशतकम् ..	३५	८९
१५. विजयोर्वशीयम् ..	३५	४-१७
१६. रामायणम् (त्रिविंशधाकाण्ड)	३६	३४-१८
१७. जानकीहरणम् (कुमारदास)	३६	१२-३६
१४. विजयोर्वशीयम् ..	३५	४-१७
१६. रामायणम् (त्रिविंशधाकाण्ड)	३६	३४-१८
१७. जानकीहरणम् (कुमारदास)	३६	१२-३६
१८. दायुपुराणम् ..	३६	अध्याय ६७
१९. शिशुपालवधम् ..	३६	१-४६
२०. भगवद्गीता ..	३७	२-१७
२१. महिम्न स्तोत्रम् ..	३७	५
२२. कामयूत्रम् ..	२९	२-१-३, ९-१३
२३. कुमारसंभवम् ..	४०	३-७०

राजशेखरं

२४. रघुवशम्	..	४१	६-६०
२५. शिशुपालवधम्	..	४१	३-८
२६. शिशुपालवधम्	..	४२	१-१
२७. कुमारसंभवम्	..	४४	६-३६
२८. घमरगतक (धमरुक)	..	४७	२९, ४९, १९
२९. मालतीमाधवम्	.	४८	१
३०. कुमारसंभवम्	..	४८	४-४१, ३-७२, ६-१९
३१. किरातार्जुनीयम्	.	५८	३-१०
३२. शिशुपालवधम्	..	५४	२-७३
३३. वृन्दावन धमरुकाव्यम् (मानाक)	..	५७	१-१
३४. नारदस्मृति.	..	५९	२-३०
३५. शिशुपालवधम्	.	६०	११-६४
३६. गौडवहो	.	६२	८८-९२
३७. काममूत्रम्	.	६७	१०१
३८. विज्ञका (कवयित्री)	..	६७	
३९. किरातार्जुनीयम्	..	७०	९-२३
४०. जानकीहरणम्	.	७२	८-८५
४१. किरातार्जुनीयम्	.	७३	९-३२
४२. मालतीमाधवम्	..	७६	३
४३. कादम्बरी	..	७६	२
४४. रघुवशम्	..	७६	६-६४
४५. कुमारसंभवम्	..	८१	१
४६. शिशुपालवधम्	..	८४	२-४
४७. कुमारसंभवम्	.	८४	१-४४
४८. किरातार्जुनीयम्	..	८५	९-२२
४९. रघुवशम्	..	८५	२-२५-९-९३
५०. भेषदूतम्	.	८६	१-४७
५१. शिशुपालवधम्	..	८६	२-४३
५२. कादम्बरी	..	८८	२-
५३. सूर्यगतकम्	.	९५	१३
५४. भेषदूतम्	..	९६	२-१२
५५. कुमारसंभवम्	..	९६	१-१

५६. हनुमन्नाटकम्—	..	९७	३-५०
५७. तैत्तिरीय संहिता	..	९९	१-४-१४-१
५८. सूर्यशतवम्	..	९९	५५ —

इसके प्रतिरिक्त सैकड़ों श्लोक जिन्हें उन्होंने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है, (यायाबरीय) की स्वप्रतिभा के द्योतक हैं ।

काव्यमीमांसा ग्रन्थ की रचना की पद्धति का इतना परिचय देने के पश्चात् अब ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय का समीक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

काव्यमीमांसा के वर्ण्य-विषय

कविरहस्य अधिकरण के प्रथम अध्याय में लेखक द्वारा काव्यमीमांसा की पूर्व-नियोजित रूपरेखा दी गई है । लेखक की योजना के अनुसार काव्यमीमांसा छठारह अधिकरणों में विभक्त की गई है तथा ये अधिकरण अध्यायों में । अधिकरणों के नाम प्रथम इस प्रकार हैं —

कविरहस्य, श्रौतिक, रीतिनिर्णय, भानुप्रामाणिक, यमक, शब्दशब्दोक्त-वास्तव, श्रोतव्य, अतिशय, अर्थस्लेष, उभयालम्भारिक, वैमोक्षिक, एकान्वित्य, शीघ्र, रसाधिकारिक, दोषाधिकरण, गुणोपादानिक एवं भूषणनिर्णयिक ।^१ आजकल इन छठारह अधिकरणों में केवल कविरहस्य अधिकरण ही उपलब्ध है । दैवयोग ने प्रथम अधिकरण के छठारह अध्यायों का नाम निर्देश भी प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय में मिलता है । ये नाम हैं—शास्त्रमंगल, शास्त्र निर्देश, काव्यपुरोत्पत्ति, पदवाक्यविवेक, पाठप्रतिष्ठा, अर्थानुशासन, वाक्यविषयः, कविविशेष, कविचर्चा, राजचर्चा, वानुप्रसार, शब्दार्थहरणोपाय, कविमाध्व, देशकालविभाव एवं भक्तुसौज्य^२ । श्रुतिधा के लिये हम इन गमस्त अध्यायों के निम्न वर्ण्य-विषयों को निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं —

१. काव्य सिद्धान्त ।
२. कविनिष्ठा-सम्प्रदाय ।
३. काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय और राजशेखर ।
४. साहित्यशास्त्र की काव्यमीमांसा की देन ।

१. काव्यमीमांसा अध्याय १—पृ० १

२. काव्यमीमांसा—अध्याय १ पृ० १-२ ।

वाक्य-निर्माण

इस प्रथम गुरु के ध्वनित, वाक्यान्त, वाक्योद्ग, वाक्य प्रवेशन, वाक्य की आगता, वाक्योद्ग, वाक्यान्त के गौर, वाक्यार्थ की परिधि एवं वाक्य में वाक्य निवृत्त-गुरु की अभिव्यक्ति का गौरव है ।

वाक्य का लक्षण : साहित्यशास्त्र सभी वाक्य आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि में वाक्य के स्वरूप का निर्णय दिया है राजनेगर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के वाक्यान्तों का ऐतिहासिक भेद में अनुनीयन करने के कारण वाक्य का निर्णयित लक्षण प्रस्तुत किया है—

गुणवदन्तुः स वाक्यम् ।^१

अन्यत्रो घोर गुणों में गुण वाक्य को वाक्य कहते हैं । उसी दृष्टि में वाक्य ही वाक्य है, परन्तु यह वाक्य साधारण न होकर गुण और अनन्तर में गुण होता आता है । गुण तथा अनन्तर—इन दोनों में राजनेगर का आग्रह गुण पर ही अधिक है । उन्होंने वाक्य को गुणमय कहा है तथा अनन्तरों का स्थान गुणों की प्रवेशा भी माना है । उन्होंने अनन्तरों को केवल अनन्तर रूप में स्वीकार किया है । उनके लक्ष्य में वाक्य-गुण की अतिरिक्ता, उनके गुणमय तथा अनन्तरों में विद्यमान होने में है ।

गम प्रगल्भो मधुर उदार चोदनी चामि । ... अनुप्रासोपमादयश्च स्वामनुरागि ।^२

आचार्य राजनेगर का गुणों एवं अनन्तरों के प्रति आग्रह उनके निष्कर्षों के अनुकूल है । एक विद्वान् अनन्तरों के साथ-साथ वे महान् बलि भी थे । वाक्य में भावपक्ष तथा वलापक्ष दोनों के प्रति वे समान रूप से जागरूक थे । वाक्य में गुणों की गता होने का अर्थ है—उत्कृष्ट रसपरिपूरक । यही रस भावपक्ष की आत्मा है । वलापक्ष के अन्तर्गत उन्होंने अनन्तरलौकिक का महत्व माना है । इन वाक्य के दोनों पक्षों को पुष्ट करने के लिए वाक्य में गुण तथा अनन्तर दोनों की अनिवार्यता का आग्रह उचित ही है ।

पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित वाक्य-लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन में आचार्य राजनेगर के वाक्य-लक्षण की ऐतिहासिक समीक्षा सरलता से की जा सकती है । आचार्य मामह ने 'शब्दायी सहितौ वाक्यम्',^३ कहकर वाक्य का लक्षण

१ वाक्यमीमांसा अध्याय ६ पृ० २४ । २ वाक्यमीमांसा अध्याय ३ पृ० ६ ।

३ वाक्यान्तर—मामह १।१६ ।

स्विर किया है। उनके मत में शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं किन्तु ये शब्द और अर्थ दोषहीन होना चाहिये। आचार्य रुद्रट ने सामान्य रूप से 'ननु शब्दार्थो काव्यम्',^१ कहकर भामह की पदावली को ही दोहरा दिया है। भेद इतना ही है कि चारुतापूर्ण शब्द और अर्थ के उपादान पर ही उन्होंने बल दिया है। ये दोनों आचार्य काव्य में शब्द और अर्थ को समान महत्व देने के पक्षपाती हैं। कुछ आचार्य ऐसे हैं जो काव्य में केवल शब्द को ही अधिक महत्त्व देने हैं। इनमें आचार्य दण्डी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। दण्डी के अनुसार काव्य का लक्षण है—

'शरीर तावदिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली ।'^२

अर्थात् काव्य का शरीर ऐसी पदावली से बनता है जो कवि के अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हो। अर्थ से व्यवच्छिन्न पदावली काव्य है। उपर्युक्त आचार्यों में भामह तथा रुद्रट ने काव्य को शब्दार्थगत अर्थात् शब्दार्थोन्मेषिष्ठ माना, जबकि आचार्य दण्डी ने शब्दमात्र को ही काव्य स्वीकार किया है।

काव्यमीमांसा का काव्यलक्षण पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों के नितान्त भिन्न प्रतीत होता है। उन लक्षणों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह भेद स्पष्ट हो जायेगा—

भामह—शब्दार्थो सहितौ काव्यम्^३

रुद्रट—ननु शब्दार्थो काव्यम् ।^४

दण्डी—शरीर तावदिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली ।^५

राजशेखर—गुणवदलकृतञ्च शक्यमेव काव्यम् ।^६

काव्यमीमांसार ने काव्य लक्षण में आचार्य भामह, रुद्रट के समान शब्द और अर्थ की अथवा दण्डी के समान पदावली का उल्लेख नहीं किया है। वे काव्य को काव्य मानने के पक्ष में हैं। उन्होंने लक्षण में दो प्रमुख शब्दशक्तियों—गुण और अलंकार का उल्लेख किया है। वाचन वा काव्यलक्षण इसी प्रकार का है—

'वाक्यशब्दोऽथ गुणालंकारमसृज्यो शब्दार्थयोरन्तरे ।'^७

वाक्य शब्द, गुण और अलंकार में असृज्य शब्द और अर्थ के बिने प्रयुक्त होता है। अत्र स्पष्ट देखा जा सकता है कि काव्यमीमांसा का काव्यलक्षण मृदुल वाचन से प्रभावित है।

१. काव्यालंकार—रुद्रट—३१।

२. काव्यादर्श—दण्डी—१-१.११०।

३. काव्यालंकार—भामह—१.११६।

४. काव्यालंकार—रुद्रट—३.१।

५. काव्यादर्श—दण्डी—१.१.११०।

६. काव्यमीमांसा अध० ६ सू० २६।

७. काव्यालंकारसूत्र—वामन—१.१.१।

काव्य लक्षण का मूल्यांकन वस्तुतः लक्षण अतिव्याप्ति तथा अन्व्याप्ति दोनों दोषों में सुप्त एवं मत्तुनिष्ठ होना चाहिये । इसमें वैकटिकगुरु गुणों का समावेश होना उचित नहीं । काव्यमीमांसाकार का काव्य लक्षण अतिव्याप्ति में दूषित है । रस को काव्य की छात्मा मानने के कारण प्रायः आचार्यगण रस की अभिव्यक्ति के लिये गुणों की उपस्थिति आवश्यक मानते हैं । वे काव्य में चारुत्व के लिये भ्रलकारों की भी अनिवार्य मानते हैं । फिर भी यदि निगूढ भाव में देखा जाय तो मानना होगा कि गुण काव्य के अन्तरङ्ग तथा भ्रलकारों के बहिरङ्ग [गौरव] की वृद्धि में सहायक हैं । वे काव्य की शोभा के लिये आवश्यक तो हैं किन्तु उन्हें काव्य रूप के प्राधावरु धर्म मानना उचित नहीं है । ये दोनों तत्त्व वाञ्छनीय होने पर भी अनिवार्य नहीं रहें जा सकते । शौचविहीन मनुष्य मानवता में से विरहित तो नहीं बहू जा सज्जत और न अमृषणों से रहित सुन्दरी स्त्रीत्व में ही विहीन मानी जा सकती है । अतः काव्यमीमांसाकार ने अपने काव्य लक्षण में गुण और भ्रलकार दोनों का समावेश करके लक्षण को अतिव्याप्ति से दूषित कर दिया है फिर भी यह काव्य परिभाषा, उपेक्षणीय है, ऐसी बात नहीं है । राजशेखर ने रस को काव्य की छात्मा माना है ।

‘रसवन एव नियन्ता युक्तो न नीरसस्य ।’

अतः गुणों और भ्रलकारों की मत्ता व रसाविष्करण के महायक रूप में ही स्वीकृत करने में । भले ही उनकी काव्य परिभाषा में यह आशयपूर्ण रूप से स्पष्ट न हो पाया हो ।

परम्परा साहित्यकारों ने राजशेखर के द्वा मन्त्र को अन्तर्नीति समझा है । और उन्हो नन्वी पर उन्होने अपने काव्यलक्षणों का निर्माण किया । मम्मट के विद्वान काव्यलक्षण का एक अंग ‘सगुणावनमृति’^१ तथा भोज की परिभाषा ‘निर्दोष गुणवत् काव्यम् अतारारैल्लतम्’^२ इसका प्रमाण है । हेमचन्द्र के काव्यलक्षण का ‘सगुणी सास्वदारी’^३ वाग्मट का ‘सगुणी प्रायः साधकारी’^४ तथा विद्यानाथ का ‘गुणालकार-महिती’^५ से प्रबल होता है कि ये सभी आचार्य राजशेखर के काव्यलक्षण में प्रभावित थे ।

१ काव्यमीमांसा प्र० १ पृ० ४५ ।

२ काव्यप्रकाश — मम्मट — १-४-१ ।

३ सरस्वतीकण्ठाभरण — भोज

४ काव्यानुशासनविवेक — हेमचन्द्र — पृ० १६ ।

५ काव्यानुशासनविवेक — वाग्मट — पृ० १५ ।

६ प्रतापसूत्र्यसंग्रह — विद्यानाथ — पृ० ४२ ।

काव्यहेतु : काव्यनिर्माण का सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले साधन काव्य-हेतु अथवा काव्यकारण कहे जाते हैं। प्रायः सभी आचार्यों ने काव्य-हेतु पर विचार व्यक्त किया है। केवल वामन ने काव्यहेतु के स्थान पर वाग्धातु शब्द का व्यवहार किया है। काव्यहेतुओं पर सर्वाधिक विस्तारपूर्वक विचार काव्यमीमांसा में ही मिलता है। राजशेखर के मत से केवल शक्ति ही काव्य का हेतु है।

तावुमायपि शक्तिमूढमासयत् । सा केवलं वाच्ये हेतुः इति याज्ञवल्कीयः ।
विप्रमरति च ना प्रतिभा-व्युत्पत्तिभ्याम् । शक्तिनृत् के हि प्रतिभा व्युत्पत्तिरमंगी
शक्तस्य प्रतिभानि शक्तश्च व्युत्पद्यते ।^१

अर्थात् शक्ति का विस्तार प्रतिभा और व्युत्पत्ति के द्वारा होता है तथा प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विज्ञान में शक्ति बारणीय होनी है। आचार्य रूद्र भी शक्ति को काव्य का प्रधान हेतु मानते हैं। किन्तु उन्होंने प्रतिभा को ही शक्ति के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने कहा है कि एतद्विस्तृतं हिं परं अर्थो वा अनेक एषो मे विस्फुरणं होता है तथा कमनीय पद स्वयं कवि के गामने प्रति-
भासित होते हैं। इसका एकमात्र कारण है शक्ति—

मनसि सदा मुनमाधिति विस्फुरणमनेरधामिषेयस्य ।

अश्लिष्टानि पदानि च विभान्ति मन्त्रामगौ शक्तिः ।^२

- इस विषय में काव्यमीमांसा का मत रूद्र में समानता रखता है। क्योंकि राजशेखर स्वयं कहते हैं—“शक्तिशब्दश्चायमुक्तः प्रतिभाते च”^३

शक्ति को प्रतिभा में उक्तचित कर दिया जाता है। इस सन्दर्भ में उन्होंने श्यामदेव तथा मदन के मतों का उल्लेख किया है। आचार्य श्यामदेव ने काव्य कर्म में स्वयं अधिक सहायक वस्तु ममाधि मानी है, जिसे वे जिन की एतादृश कहते हैं—

‘वाच्यमंजि’ स्वै ममाधि यः व्याप्रियते’ इति श्यामदेव । मदन एतादृश ममाधि ।^४

ममाहित होने वाला विल ही अर्थों का उन्मीलन करता है। आचार्य मदन मन्त्राम को वाच्य-वर्धे मूढमगो अधिन उपयोगी स्वीकार करते हैं—

१. काव्यमीमांसा पृ० ४५० ११ ।

२. वाच्यवचन—रूद्र—१-१३ ।

३. काव्यमीमांसा पृ० ४५० ११ ।

४. काव्यमीमांसा पृ० ४५० ११ ।

उनकी दृष्टि से शब्द और अर्थ का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त करके, शब्दार्थ के ज्ञाताओं का मत्स्य एव परिचर्या करके और अन्य लेखकों के निबन्धों को पढ़कर काव्य-न्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये। भामह के पश्चात् आचार्य दण्डी ने काव्योत्पत्ति के साधन रूप में प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को आवश्यक बतलाया है। इनके मत में प्रतिभा पूर्व जन्म के संस्कारों पर आधित रहती है। प्रतिभा से वचन कवि भी यदि यत्नपूर्वक शास्त्र की उपामना करे तो उस पर सरस्वती अवश्य अनुकम्पा प्रकट करेगी।^१ वे प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को काव्य-सम्पदा मानने के पक्षपाती हैं।^२ आचार्य दण्डी के पश्चात् वामन ने काव्यहेतु का विवेचन किया है। उन्होंने काव्यहेतु के लिये काव्यांग^३ शब्द का प्रयोग किया है। काव्यांगों के अन्तर्गत लोकर, विद्या और प्रकीर्ण—इन तीनों का समावेश है। लोकर का तात्पर्य लोकवृत्त^४ से है। विद्या से समस्त शास्त्र-ज्ञान^५ का बोध होता है तथा प्रकीर्ण के अन्तर्गत अन्य कवियों की कृतियों का परिचय, काव्य रचना का उद्यम, काव्य कला के मर्मों की उपामना, रचना में अधिक से अधिक उचित शब्दों के विधान का अभ्यास तथा कविःत्र वीज प्रतिभा एव चित्त की एकाग्रता की गणना की गई है।^६

इस प्रकार आचार्य वामन प्रतिभा को कवित्व का बीज मानने पर भी व्युत्पत्ति और अभ्यास का समान महत्त्व देने हैं। वामन के परवर्ती आचार्य रुद्र ने 'काव्यहेतु' के अन्तर्गत—प्रतिभा-व्युत्पत्ति तथा अभ्यास का महत्त्व स्वीकार किया है,^७ तथापि 'शक्ति' को उन्होंने काव्य का प्रधान कारण माना है। उनके विचार में शक्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

‘मर्तासि सदा शुभभाषिणि विस्फुरणमेतदध्याभिधेयस्य ।

अक्लिष्टानि परानि च विभानि यस्यामगो मयि ।’

चित्तने एकाग्र होने पर अर्थ अनेक प्रकार से विस्फुरित होने लगते हैं तथा कमनीय पद स्वयं प्रतिभासित होते जाते हैं। इस कार्य को सहायित करने वाली वस्तु 'शक्ति' कहलाती है।

१. काव्यादश—दण्डी १-१०४। २. काव्यादश—दण्डी—१-१०३।

३. काव्यालंकारगूत्र—वामन-१-३-१। ४. काव्यालंकारगूत्र—वामन-१-३-३।

५. काव्यालंकारगूत्र—वामन-१-३-१-१। ६. काव्यालंकारगूत्र—वामन-१-३-११

७. काव्यालंकार—रुद्र—१-४। ८. काव्यालंकार—रुद्र—१-१५।

व्युत्पत्ति : राजशेखर ने प्राचीन प्राचार्यों के मत का उल्लेख करते हुए व्युत्पत्ति का अर्थ 'वहुवृत्ता' दिया है ।^१ परन्तु उनका अग्रना मत इसमें भिन्न है । उनके अनुसार—

“उचितानुनितविवेकव्युत्पत्ति इति यापावरीय ।”^२

उचित और अनुचित के विवेक को व्युत्पत्ति कहते हैं । इस प्रसंग में उन्होंने पूर्ववर्ती प्राचार्यों के मत का उल्लेख किया है जो प्रतिभा और व्युत्पत्ति के तारतम्य में व्युत्पत्ति को ही थोड़ा मानते हैं । उनके विचार से व्युत्पत्ति यदि के अशक्ति-जन्य समस्त दोषों को दूर कर देती है ।^३

किन्तु गमन्यवधारी प्राचार्यों राजशेखर प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों को समान रूप में उपादेय मानते हैं ।

ऊपर राजशेखर तथा पूर्ववर्ती प्राचार्यों द्वारा वर्णित 'काव्यहेतु' का जो परिचय दिया गया है, उससे स्पष्ट हो जाना है कि राजशेखर ने 'शक्ति' को 'काव्यहेतु' स्वीकार करते हुए भी प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को साम्यता दी है । प्रतिभा को वे अन्य दो (व्युत्पत्ति और अभ्यास) में श्रेष्ठत्व प्रदान करते हैं । वे कहते हैं कि मेधाविरह और कुमारदाम आदि कवि जन्म से ही ग्रन्थ थे, किन्तु उनके काव्य में यदापि का जो सजीव चित्रण मिलना है, उसका एकमेव कारण प्रतिभा है—

प्रतिभाक्त पुनरपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव यथा मेधाविरह-कुमारदामादयो जात्यग्रा कवय भूयन्ते ।^४

किन्तु भागे कमकर उन्होंने प्रतिभा और व्युत्पत्ति के गमन्य पर अधिक धन दिया है ।

प्रतिभाव्युत्पत्ति मित्र ममवेते श्रेयस्यौ इति यापावरीय ।

जैसे लावण्य के बिना गुन्दर रूप पीका है और रूप-सम्पत्ति के बिना लावण्य अपरिपूर्ण है उसी प्रकार प्रतिभा और व्युत्पत्ति एक-दूसरे से हीन होने पर निरर्थक होती हैं । विरलर प्रयोग करते रहने को उन्होंने प्रशंसित कहा है । धन में वे काव्य की सफरता के बिना प्रतिभा-व्युत्पत्ति और अभ्यास की समान महत्ता स्वीकार करते हैं । इनके मत में यह तुल्य समन्वय है—

१. काव्यमीमांसा प्र० ५ प्र० १६ ।

२. काव्यमीमांसा प्र० ५ प्र० १६ ।

३. काव्यमीमांसा प्र० ५ प्र० १६ व्युत्पत्ति श्रेयसी इति मङ्गल ।

४. काव्यमीमांसा प्र० ४ प्र० १२ ।

५. काव्यमीमांसा प्र० ५ प्र० १६ ।

दुश्मिन्त्व च काव्याङ्ग-विद्यास्वस्थ्यासकर्म च ।

कवेषोपनिषत्तन्त्रिस्तयमेकत्वं दुर्लभम् १९

काव्य प्रयोजन — राजशेखर के अनुसार आनन्द, कीर्ति, धन प्राप्ति, शिष्य-हित, हितोपदेश, राजोपकार एवं लोकरुचि काव्य के प्रयोजन हैं । मुनिशानुमार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन में से कनिष्ठ प्रयोजन कवि के स्वयं के लिये हैं । उन्हें कविनिष्ठ कहते हैं । कुछ प्रयोजन पाठक या श्रोता में संचिद्यत होते हैं । अतः उन्हें पाठकनिष्ठ कहना उचित होगा । कविनिष्ठ प्रयोजन के अन्तर्गत (१) आनन्द, (२) कीर्ति एवं (३) धन प्राप्ति तथा पाठकनिष्ठ प्रयोजन में (१) शिष्यहित, (२) हितोपदेश, (३) राजोपकार एवं (४) लोकरुचि की रचना की जा सकती है ।

कविनिष्ठ प्रयोजन — राजशेखर का कथन है कि काव्यदुष्ट को क्या को जानने वाला कवि इहलोक और परलोक दोनों में आनन्दित रहता है ।^१ उसी प्रकार जो 'राजा' मभापति बनकर कान्या की परीक्षा करता है, वह सर्वदा मुषी रहता है ।^२

इस प्रकार आनन्द को उन्होंने स्पष्ट रूप में काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है । पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह^३ और वासव^४ ने कीर्ति को काव्य प्रयोजनों के अन्तर्गत माना है, जो राजशेखर-वर्णित आनन्द का ही पर्याय है ।

काव्य का दूसरा प्रयोजन कीर्ति है । कीर्ति को सभी विद्याओं में फैलाने वाले कवि, भावक एवं आश्रयदाता नरेश होते हैं । कीर्ति के विषय में कविराज कहते हैं कि कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी रचना उनके घर की गङ्गातीवारी के भीतर ही विचरण करती है, कुछ कवियों की रचनाएँ, उनके मित्रों के भग्नों तक पहुँच जाती हैं और कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी रचना सभी के मुख पर गतन करती हुई विश्व भ्रमण की इच्छा पूर्ण करती है ।^५ राजशेखर की गम्भीरता में जिस कवि की प्रतिभा का अग्रिम प्रसार होता है उसकी कीर्ति समस्त मगार को घबलित कर देती है^६ । कवि कीर्ति का दूसरा विचारक भावरा होता है ।

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३ । २. वाचमीमांसा अ० ३ पृ० १० ।

३. काव्यमीमांसा अ० १० पृ० ५३ ।

४. काव्यान्तर — भामह — कीर्ति कीर्ति कीर्ति च भाषास्वस्थ्यासकर्म १।२

५. वाचमीमांसा सूत्र — वासव — काव्यमर् दुष्टदुष्टाय कीर्तिर्निरुत्तरा १।१।५ ।

६. काव्यमीमांसा अध्याय ४ पृ० १४ ।

७. काव्यमीमांसा अध्याय १ पृ० ४९ ।

राजशेखर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि कवि के उस काव्य से क्या लाभ जिसे भावोत्कर्षण चाहे और न फैलाये ? कवित्व घड़ी है, जिनका सभी देशों में निर्वर्ध रूप में प्रसार हो और यह बात महदम पाठकों पर निर्भर होती है । राजाओं का आश्रय मिलने से भी कनिष्ठ प्रसिद्ध होते हैं । “राजाभेयण च यथा कवयः प्रसिद्धिम्” (१) अब कवि कीर्ति के प्रसार में राजभण भी सहायक होते हैं । राजशेखर के पूर्व भी प्रायः सभी आलंकारिकों ने कवि की गणना काव्य प्रयोजनों में की है । महर्षि भरत द्वारा प्रयुक्त काव्य का ‘महत्त्वम्’^२ निर्णय भी कवि का बोधक है । भागह की बार्हिक में भी कवि के लिये कीर्ति की प्राप्ति बताया है । वायन^३ ने काव्य प्रयोजनों को प्रीति और कीर्ति में ही विभाजित किया है । इस प्रकार कीर्ति के लक्ष्य में प्रायः आचार्य एतन्मन्त्र हैं किन्तु राजाओं की कवि-कीर्ति का प्रचारक मानना राजशेखर की धारणा में नई है ।

राजशेखर के विचारों से पता चलता है कि काव्य की रचना धनोपायन हेतु भी की जाती थी । प्रबन्ध किसी के पास धनोदर के रूप में रख देने में, देव देने में, दान कर देने में, देव रक्षण कर देने में, दायापु होने में, प्रपूर्ण रह जाने में, तथा अग्नि एवं जल आदि में विलुप्त हो जाने में ।^४ इन वाक्यों में अभी बात का संकेत मिलता है कि धनप्राप्ति की गणना भी काव्य प्रयोजनों में की जानी रही है । पूर्ववर्ती आचार्यों में भागह ने काव्य प्रयोजनों में धर्म रा भी समावेश किया है ।

एसी प्रकार आनन्द, कीर्ति और धनप्राप्ति इन तीनों प्रयोजनों का कवि से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण इनकी गणना कविनिष्ठ प्रयोजनों में की गई है ।

पाठकनिष्ठ प्रयोजन पाठक की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण प्रयोजन, जिसका राजशेखर ने उल्लेख किया है, तीन है—श्रुतिपदेश, व्यवहारज्ञान एवं राजोत्तर । राजशेखर की ‘महासम्प्रदायस्थिताय सैव शिष्यहिताय च’ इस पंक्ति का अभिप्राय यह है कि कविण पाठकों के हित के लिये भी काव्य की रचना करते हैं । भरत-वर्धन ‘हित’^५ यही है । राजशेखर का कथन है कि

१. काव्यमीमांसा अध्याय ६ पृ० २७ ।

२. नाट्यशास्त्र अध० ११८ (धर्मं यज्ञस्यपुण्यम्) ।

३. काव्यालंकारसूत्र वागम (काव्य सद् दृष्ट्यादृष्ट्या प्रीतिर्प्रीतिहेतुत्वात्) १।१।२

४. काव्यमीमांसा अध० १ पृ० २३ यदिच कथयन्ति—‘निरासो विनयो दातृ देशपागोऽन्यमीविना-कृत्स्नोऽतिरम्भश्च प्रसङ्गोऽपेक्षहेतुश्च ।’

५. नाट्यशास्त्र भरत—१-११४ ।

‘प्राचीनकाल में विद्वान् सहस्र शाखाओं वाले वेदों एवं उनके ऋद्धों का अध्ययन करते थे, शास्त्रों के तत्वों को समझते थे, देशान्तर और द्वीपान्तर का भ्रमण करते थे ।’^१ इसका तात्पर्य यही है कि कवि के लिये व्यवहार-ज्ञान भी आवश्यक था । अतः काव्य का एक प्रयोजन व्यवहार-ज्ञान भी है । इसकी अनुभूति पाठकगण करते हैं । कवियों से राजाओं का भी (आय्यदत्ता) उपहार होता है, उनसे उनकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती है ।

रुपाता नराधिपनय कविसङ्गमेन

राजोऽपि नास्ति कविना सदृशः महाय ॥^२

इस प्रकार पूर्ववर्ती आचार्यों ने जिन काव्य प्रयोजनों का प्रतिपादन किया था उनको और भी अधिक परिभाषित तथा सुन्दर रूप में हम राजशेखर में देखते हैं ।

काव्य की आत्मा - भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यात्मतत्त्व का सर्वप्रथम विवेचन करने का श्रेय आचार्य वामन को है । वामन के पूर्व आचार्य दण्डी एवं भामह ने अपना विवेचन शब्दार्थ तक ही सीमित रखा है । आत्म-तत्त्व तक वे न पहुँच सके । यह कार्य आचार्य वामन ने पूर्ण किया । उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा^३ के रूप में प्रतिष्ठित किया । वामन के पश्चात् ध्वन्यालोककार भानन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा^४ के रूप में प्रतिष्ठापित किया । राजशेखर ने काव्यशास्त्र के क्षेत्र में शरीर और आत्मा के सहारे काव्यरूप के रूपक की कल्पना ही नहीं की अपितु उसके अवप्रत्ययों पर भी प्रकाश डाला । काव्यरूप के रूपक में उन्होंने शब्द और अर्थ को शरीर, सत्त्वनादि भाषाओं को मुखोदि अङ्ग तथा अलंकारों को आभूषणों के रूप में स्वीकार किया तथा रस को उसकी आत्मा के स्थान पर अधिष्ठित किया है । उनके पूर्व सभी भालहारिक रस को महत्व देने आये थे किन्तु उने सर्वप्रथम आत्मा के रूप में प्रतिपादन करने का श्रेय राजशेखर को ही है ।

परवर्ती आचार्यों ने राजशेखर की इस मान्यता को निर्विवाद रूप में ग्रहण किया । अनिलुराणकार ने काव्य के जीवनतत्त्व के रूप में रस को मान्यता दी । तत्पश्चात् विरवनाथ ने काव्यलक्षण में ही रस का समावेश कर दिया ।

काव्यमेव : राजशेखर के मत में वाङ्मय के दो मार्ग हैं—गद्य तथा काव्य—‘इह हि वाङ्मयमुभयथा जातम्’^५ । उन्होंने द्वितीय अध्याय में

१. काव्यमीमांसा अ० १८ पृ० ७८ । २. काव्यमीमांसा अ० १ पृ० २७ ।

३. काव्यालंकारसूत्र—वामन—१.१ । ४. ध्वन्यालोक भानन्दवर्धन ११ ।

५. काव्यमीमांसा अ० २ पृ० २ ।

शास्त्रों का वर्गीकरण करने के उपरान्त काव्य का विवेचन किया है। प्राचीन आचार्यों ने चारों वेदों, उनके षड्यो और चारों शास्त्रों की गणना चतुर्दश विद्याओं के आधार रूप में की है। ये चौदह विद्यायें भूर्भुव और स्व इन तीनों लोकों में व्याप्त हैं। मनुष्य सहस्र वर्षों से अधिक जीवित रहकर भी इन चौदह विद्याओं का धन्त नहीं पा सकता। राजशेखर ने इन चौदह विद्याओं का आधार एक मात्र 'काव्य' को माना है।

‘सकलविद्यास्थानैकायतन पञ्चदश काव्यम् विद्यास्वानम् ।’

उन्होंने काव्य को पन्द्रहवों विद्या कहकर गौरवान्वित किया है। उन्होंने कहा है कि शास्त्र काव्य का अनुसरण करते हैं। इसकी पहली विशेषता यह है कि इस में गद्य और पद्य का मज्जुल सामंजस्य मिलता है। उनके मत में काव्य के पूर्व की रचनायें केवल गद्यमूर्ति का निर्माण करती रहीं, पद्यसृष्टि का नहीं। छन्दोबद्ध बाणी का आविष्कार भी प्रथमतः काव्य में ही पाया जाता है। इसकी तीसरी उपयोगिता इसके हितोपदेश में समृद्ध होने में है और सब से बड़ी बात यह कि उप-विद्याओं और कलाओं का उपजीव्य काव्य ही है।

राजशेखर ने छन्द को आधार मानकर काव्य का विभक्त्येन किया है। उनके मतानुसार काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य तथा मिश्र। छन्दोमयी रचना पद्य, छन्दोरहित गद्य और दोनों का मिश्रण—मिश्र रचना है।^१

काव्य के उक्त भेदों की स्थापना राजशेखर ने पूर्व ही हो चुकी थी। काव्यशास्त्र के आचार्य भामह ने रचना शैली की दृष्टि से काव्य को गद्य तथा पद्य में विभक्त किया था।^२ आचार्य दण्डी ने काव्य के गद्य, पद्य तथा मिश्र में तीन भेद बताये हैं।^३ आचार्य वामन ने काव्य को स्थूल रूप से गद्य और पद्य में विभक्त किया है।^४ राजशेखर दण्डी के काव्य-भेदों को मान्यता देते प्रतीत होते हैं।

भाषा की दृष्टि से राजशेखर कवि-राज है। कविराज विभिन्न भाषाओं में रचना करने में समर्थ होता है—

१. काव्यमीमांसा अ० २५०४ ।

२. काव्यमीमांसा अ० ९५० ६६ ।

३. काव्यालंकार—भामह—‘शब्दार्थो महती काव्य गद्य पद्य च तद्विद्या ।’ १:१६

४. काव्यादर्श—दण्डी—‘पद्य गद्य च मिश्र च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्’ १:११

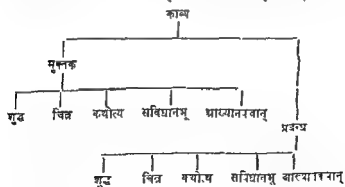
५. काव्यालंकारसूत्र—वामन—‘काव्य गद्य पद्य च’ १:३:२१ ।

‘यस्तु तत्र तत् भाषाविषये नेपु प्रवन्देप्
तस्मिस्तस्मिन् रमे स्वतन्त्र स वविराज ।’

अतः राजशेखर ने काव्य का विभाजन भाषा को आधार मानकर भी किया है । पूर्ववर्ती आचार्यों में रूद्रट ने भाषा के आधार पर काव्य के संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भूतभाषा, मागध, पिशाच, शूरमेन और अपभ्रंश ये भेद बताये हैं ।

भामह ने काव्य को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में विभिन किया है ।^१ आचार्य दण्डी ने काव्य को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मिश्र रूप में विभाजित किया है ।^२ काव्य की भाषा पर आधारित ये भेद युग-विशेष में भाषा की प्रगति के परिचायक हैं । राजशेखर का भाषाविषयक दृष्टिकोण अन्य आचार्यों की तुलना में व्यापक दिखाई देता है । उनके अनुसार भाषा की दृष्टि से काव्य के ६ भेद हैं—१. संस्कृत, २. प्राकृत, ३. अपभ्रंश, ४. भूतभाषा, ५. पेशाची ६. मिश्र ।^३ इन भेदों में राजशेखर का युग प्रतिबिम्बित हुआ है । तत्कालीन समाज संस्कृत काव्य में अधिक प्रभावित था । तदान्तर क्रमशः प्राकृत, अपभ्रंश एवं भूतभाषा में रचित काव्य थे । जो कवि अनेक भाषाओं में काव्य रचने की क्षमता रखता था उसे राजदरबार में विनिष्ट स्थान प्राप्त होता था ।

कथानक की दृष्टि से राजशेखर के काव्य-वर्गीकरण का तीसरा आधार है कथानक । कथानक की दृष्टि से उन्होंने काव्य के दो भेद किये हैं, मुक्तक और प्रबन्ध । वास्तव में ये भेद काव्यगत अर्थ के हैं । अर्थ के आधार पर ही हम काव्य को मुक्तक और प्रबन्ध इन दो भागों में बाँट सकते हैं । मुक्तक और प्रबन्ध को भी उपभेदों में विभाजित किया गया है । निम्न तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा—

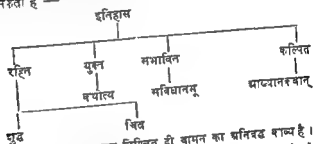


१. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १९ । २. काव्यालंकार—भामह—१।१।१६ ।

३. काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६ । ४. काव्यादर्श—दण्डी—१।२३ ।

मुक्त और प्रबन्ध में प्रत्येक के निम्न पाँच भेद हैं—(१) शुद्ध (२) चित्र (३) कथोन्म, (४) सविधानमू, (५) प्राज्यानकवान् ।

मुक्तराव्य से राजमेखर का तात्पर्य स्फुट कविता या स्वतन्त्र कविता से है । प्रबन्ध का अर्थ है—काव्य या महाकाव्य । ऐतिहासिक कथा कथोन्म कहलाती है । जिसमें घटना सभावित हो वह सविधानमू और जिसमें इतिहास की कल्पना की जाए उसे प्राज्यानकवान् कहते हैं । इस बात को निम्न तालिका से भी स्पष्ट किया जा सकता है —



राजमेखर का मुक्तराव्य निश्चिन् ही वामन का अनिवार्य काव्य है । दूसरे भेद 'प्रबन्ध' वामन के 'निवर्द्ध' का वाचक है । अन्य काव्यशास्त्रों में इनके निम्ने प्रबन्ध शब्द ही प्रचलित है ।

राजमेखर ने मुक्तराव्य के पाँचों भेदों के उदाहरण समस्तप्रकार में दिये हैं तथा कुछ उदाहरण स्वरचित भी हैं । प्रबन्ध के पाँच भेद सबभूतिवृत्त मालनीमाधव तथा बालिकदास के पुमारम्भ में दिये गये हैं ।

राजमेखर इन काव्य के भेद अधिक स्पष्ट नहीं है । एक काव्यरूप यत्किंचिन् भेद में दूसरे भेद में समाविष्ट हो सकता है । इसलिये उनका यह वर्गीकरण नास्त्यजन्य में पाह्य न हो सता ।

काव्यार्थ के श्रोत : वस्तुतः कवि स्वयं मूढ है । ब्रह्मी मूर्ति से उसकी मूर्ति बड़ी अधिक उन्नत है । जिसने ने ब्रह्मा के हाथ बाँध रखे हैं किन्तु कवि मुक्त रूप में सर्वत्र निरन्तर है । ब्रह्मा की मूर्ति मुख-शुद्ध के चक्र में घूमती रहती है, किन्तु कवि जगत में केवल आनन्द ही आनन्द है । ब्रह्मा की मूर्ति में प्रत्येक जीव आनन्दार्थ में बँधा रहता है, किन्तु कवि-जगत का प्रत्येक प्राणी कवि-प्रतिमा में ही मूढ है । ब्रह्मा अपनी मूर्ति के प्रत्येक मन्दिर को मधुर के साथ प्रमत्त, मधुर, मधुर तथा और निरन्तर रमाँ का आनन्द करना है किन्तु कवि जगत का नास्त्य, नव-रमाँ का आनन्द करना है । प्रमत्त यह है कि इन मूर्ति की

आधारमिला कौनसी है । प्रायः सभी आचार्यों ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है । आचार्य राजशेखर ने कहा है—

“श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या, ममयविद्या, राज-
मिद्वान्तमयी, लोको, विरचना, प्रकीर्णकं च काव्यार्थानां द्वादश योनय इति
आचार्या । उचित-संयोगेन, योनू-मयोगेन उत्पाद्ययोगेन सयोग विचारेण च
गृह पोडश इति मायावरीय ।”^१

अर्थात् वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाणविद्या (मीमांसा और छंद प्रसार का तर्क
शास्त्र) राजमिद्वान्तमयी (धर्मशास्त्र, नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र) लोक
(सामाजिक या व्यवहारिक वृत्त) विचरना (अन्यान्य कवियों की रचना) प्रकीर्णक
(चौमठ बलायें, आवश्यक भाषुवें) ये कवि-सर्जन के आधार हैं ।

वामन ने काव्ययोनि के स्थान पर काव्याङ्ग शब्द का प्रयोग किया है जिसे
राजशेखर ने काव्य माता माना है । वामन ने तीन काव्याङ्ग माने हैं—लोक,
विद्या और प्रकीर्ण ।^२ लोक वा अर्थ है लोक-व्यवहार ।^३ विद्या के अन्तर्गत
कोश, छन्द-शास्त्र, कला (चौमठ प्रकार की कलायें एवं चौदह उप-कलायें),
कामशास्त्र, दण्डनीति, (धर्मशास्त्र एवं राजनीति) आती है ।^४ प्रकीर्ण
फुटकर का द्योतक है । इसके भीतर लक्ष्यज्ञत्व, अभियोग, वृद्धसेवा, अवेशन,
प्रतिभान और अवधान इन छ का संग्रह है ।^५ अन्य कवियों के काव्यों का परिचय
लक्ष्यज्ञत्व कहलाना है । काव्य रचना के लिए उद्योग को अभियोग कहते हैं ।
वृद्धसेवा में काव्योपदेशक गुरुजनों की सेवा अभिप्रेत है । पदों के आधान और
उद्धरण में निपुणता अवेशन के अन्तर्गत है ।^६

राजशेखर ने कवित्व की आठ भाताओं में भक्ति का भी उल्लेख किया है ।
आचार्य वामन की वृद्ध-सेवा में भक्ति भी आ जाती है । उन्होंने प्रतिभानम् के

१ काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ३५ ।

२. वामन—काव्यालकारसूत्र—लोको विद्या प्रकीर्णश्च काव्याङ्गानि १।३।१

३ वही लोटुवति लोक १।३।२ ।

४ वही श्रुतिस्मृतिरमिधानकोशच्छन्दोविचिद्वि कला कामशास्त्र दण्ड-
नीतिपूर्वा विद्या १।३।३ ।

५ वही लक्ष्यज्ञत्वभियोगो वृद्धसेवाऽवेशन प्रतिभानमवधानच प्रकीर्णम्
१।३।१३ ।

६ वही तत्र काव्यपरिचयो लक्ष्यज्ञत्वम् १।३।१२—काव्यवन्धोद्यमो-
भियोग १।३।१३ काव्योपदेशगुरुशुश्रूषण वृद्धसेवा १।३।१४, पदप्रानो-
द्धरणभवेशनम् १।३।१५ ।

घोड़ों आदि के द्वारा उड़ाई गई धूलि, स्वर्ग में पहुँचकर दिग्गजों की कनपटियों पर जाकर जम जाती है जिससे उनकी कनपटियों में बहता हुआ मदजल स्वर्गीय भ्रमरों के निये बडवा हो जाता है । दूसरी ओर वह धूलि देवराज इन्द्र की हजार आँखों में पड़कर उन्हें व्याकुल कर देती है और धन में वह एकत्रित धूलि स्वर्ग गंगा के जल में गिरकर उसे भी पङ्क्ति बना देती है ।

यहाँ राजा की विजय यात्रा से धूलि का उड़ना, उसे मुर-सरिता के जल का पङ्क्ति होना, उसमें स्नानार्थिनी सुराङ्गनाओं की किम्वदन्तता और उसमें विजय यात्रा को निन्दा उत्तरोत्तर सज्जकारी मयोज प्रतीत होता है ।

उत्पाद्य संयोग : जहाँ उपमानोपमेयभाव आदि सबन्ध संभाव्य हो । यथा शिशुपालवध में—

उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहावकाशयगापयम पतेताम् ।

तेनोपमीयेत तमावनीतमामुक्तमुक्तालनमस्य वक्षः ॥^१

अर्थात् यदि आकाश में स्वर्ग बङ्गा की दो धारायें पृथक् पृथक् गिरें तो श्रीकृष्ण के नीलवक्षस्थल पर दोनों ओर लटकती हुई मुक्ता-हार की लड़ियों की उपमा दी जा सकती है ।

यहाँ आकाश और वक्षस्थल का तथा मुक्तालता और रङ्गा-प्रवाह का उपमानोपमेय भाव सबन्ध सम्भावित है । धन. उत्पाद्य संयोग है ।

संयोग विकार : संयोग या सबन्ध से विकार उत्पन्न होता संयोग विकार कहलाता है । अर्थात्—

गुणानुरागमिश्रेण यशसा तय सर्पता ।

दिग्वधूना मुखे जातमकस्मादर्धकुङ्कुमम् ॥^२

अर्थात् मिश्रित एवं चारों ओर फैलते हुए तुम्हारे वक्ष से दिशास्पी बधुओं के भासस्थल पर अक्षरमात् आधा कुङ्कुम का टीका लग गया ।

श्वेत मस्तक पर सान् गुण एवं श्वेत वक्ष के संयोग से अर्ध कुङ्कुम रूप विकार उत्पन्न हो गया है । इसीप्रकार चन्द्रोदय के संयोग से समुद्र आदि में उन्माद विचार को काव्य में वर्णित करना संयोग विकार है ।

काव्यार्थ की परिधि : काव्य का क्षेत्र कितना व्यापक हो सकता है, इसकी चर्चा सब से पहले आचार्य द्रौहिणि ने की है । उनके मत से काव्य के पात्र दिव्य, दिव्यमानुष तथा केवल मानुष हो सकते हैं ।

राजनेपर ने अर्थ-व्याप्ति मान प्रकार की वतलाई है। दोहिणि-कथित तीन प्रकारों के अतिरिक्त पातालीय, मर्त्यपातालीय, दिव्यपातालीय और दिव्यमर्त्यपातालीय भेद से हमके निम्न सात प्रकार हो सकते हैं। वे हैं—(१) दिव्य, (२) दिव्य मानुष, (३) मानुष, (४) पातालीय, (५) मर्त्य-पातालीय, (६) दिव्य-पातालीय, (७) दिव्य-मर्त्य-पातालीय। दिव्य मानुष के चार अर्थ हैं—(१) दिव्य पुरुष का जन्म लेकर मर्त्य बन जाने पर, (२) मर्त्य पुरुष का प्राण त्याग कर दिव्य बन जाने पर (३) मर्त्य-पुरुष को दिव्य सवर्गी कथानक पढ़ना करने पर और (४) मर्त्य होकर भी अपने प्रभाव से दिव्य विभूति प्रकट करने पर (अन्ध छँ भेदों का अर्थ नाम में हो स्पष्ट हो जाता है।)

राजनेपर ने इन पात्रों के विवरण द्वारा नाट्यशास्त्र के विषय को अपने ग्रन्थ में उचित स्थान प्रदान किया है। उनकी मौलिकता का यह प्रबल प्रमाण है।

काव्य में सत्य शिव और मुग्ध की अभिव्यक्ति काव्य पर दोषारोपण किया गया है कि (१) काव्य प्रसत्य अर्थ का अभिधान करता है, (२) अशोभन वस्तु का उपदेश करता है, (३) अमुग्धर, प्रमत्त अर्थों का भी वर्णन करता है। अतः काव्य का उपदेश मानव समाज के लिये अहितकर है—

‘असन्मार्गाभिधातित्वान् नोपदेष्टव्यं काव्यम् ।’

‘अनङ्गदेशनत्वात् तर्हि नोपदेष्टव्यं काव्यम् ।’

‘असम्मार्गाभिधातित्वान्नोपदेष्टव्यं काव्यम् ।’

यदिबर राजनेपर इन आरोपों को कैसे सह सकते थे? तीनों का परिहार कर उन्होंने काव्य में सत्य शिव मुग्ध इन तीनों तत्वों की और समाहित कर दिया। प्रथम आरोप के परिहार के लिये वे कहते हैं कि काव्य में कोई भी वस्तु प्रमत्त नहीं होती। जो सत्याभास प्रतीत होता है वह अर्थवाद है जो युगो युगों से बेसी भी गूँथियों में भी बिछाई देता है। इसे हम प्रमत्त नहीं कह सकते। इस कथन की पुष्टि के लिये उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण तथा पानिनीय महाभाष्य के पराशास्त्रिक से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अतः जिस अर्थवाद का प्रयोग शास्त्र एवं श्रुति करते आये हैं, उन्हें बलिजन अपने काव्य में प्रयुक्त करें तो वह अर्थवाद प्रमत्त नहीं हो सक्ता। काव्य सत्य सत्य की अभिव्यक्ति करता है।^१

१. काव्यमीमांसा प्र० ६ प्र० २४, २६, २७ ।

२. काव्यमीमांसा प्र० ६ प्र० २७ ।

(२) काव्य में अनैतिक वस्तु का उपदेश दिया जाता है, इस कथन की पुष्टि में उद्धृत श्लोक (जिस में एक वृद्ध कुन्टा अपनी पुत्री के कुन्टानियम-विमुख आदेशों की अवहेलना कर रही है) का आशय स्पष्ट करते हुए राजशेखर कहते हैं कि काव्य में यह अशोभन बातें प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु यह उपदेश निषेध्य रूप में है, विधेय रूप में नहीं है।

‘अस्त्ययमुपदेशः किन्तु निषेध्यत्वेन न विधेयत्वेन’^१

समाज के चरित्र रक्षण के लिये ऐसे उपदेशों की नितात आवश्यकता होती है। उसका उत्तरदायित्व कवि काव्य द्वारा पूर्ण करते हैं। तीसरा प्राप्तेप यह है कि काव्य में असम्य अर्थ का अभिधान उपलब्ध होता है। यायावरीय इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसे अर्थों का निबन्धन, वेद या शास्त्र में भी प्रसंगानुसार दिखाई देता है। अतः यदि कवि प्रसंगानुसार अर्थ को अभिव्यक्त करें तो वह नितान्त क्षम्य है, क्योंकि काव्य का प्रयोजन सत्य शिव सुन्दर की अभिव्यक्ति है, असत्य, अशिव एवं असुन्दर का आलाप नहीं।^२

इन तीन आक्षेपों के परिहार द्वारा यायावरीय ने काव्य में सत्यता शिवता एवं सुन्दरता का समर्थन किया है।

कवि शिक्षा सम्प्रदाय

‘कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय’ साहित्यशास्त्र के मान्य सम्प्रदायों (रस, अलंकार, रीति एवं छानि) से नितान्त भिन्न है। इस सम्प्रदाय का ध्येय अन्य सम्प्रदायों की भांति काव्य के आत्मतत्त्व की गवेषणा एवं स्थापना नहीं है। इसका उद्देश्य है—कवि के व्यक्तित्व एवं कर्तव्य के विकास तथा स्वर्धन के लिये उचित मार्गदर्शन करना। कवि-रहस्य अधिकरण का दो-तिहाई भाग कवि-शिक्षा से संबंधित है। इस अधिकरण के तृतीय से षष्ठम तथा दशम से अष्टादश अध्यायों तक का कार्य-विषय कवि-शिक्षा है।

राजशेखर ने ‘कविशिक्षा’ के अन्तर्गत (१) काव्यपुरुष, (२) कवि, (३) भावक, (४) काव्यपाक, (५) वाक्यानुहरण एवं (६) कविमनस या विवेचन किया है।

काव्यपुरुष : षष्ठम अध्यायी से पूर्व साहित्य-शास्त्र काव्यपुरुष से अवरिक्त था। सर्वप्रथम आचार्य दण्डी ने ‘तरीर तावदिष्टार्थं ध्यवच्छिन्ना पशवनी’

१. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २६ ।

२. काव्यमीमांसा अ० ६ पृ० २७ ।

बहुर काव्य-शरीर का निर्देश किया, किन्तु उसमें सजीवता देने के लिए आत्मतत्त्व की प्रविष्टि का प्रथम आचार्य वामन ने किया। उन्होंने 'रीतिरात्मा रानस्य' कहकर रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। आचार्य आनन्दवर्धन रीति नामक आत्मतत्त्व में पूर्णतया ग्रसहमन थे। अतः उन्होंने रीति के स्थान पर ध्वनि को काव्य की आत्मा मिथ किया। इस प्रकार राजशेखर के पूर्वजों आचार्यों ने काव्य के शरीर एवं आत्मा का जो स्वरूप बताया था, उसको पृथग्भूमि में उन्होंने एक 'काव्यपुरुष' की कल्पना की थी, किन्तु यह कल्पना कामा ही बनी रही। राजशेखर ने इस कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान किया। काव्यपुरुष के अवतरण की यही पृष्ठभूमि है। काव्यपुरुष का जन्म, भारत भ्रमण एवं विवाह को रोचक बना राजशेखर की प्रतिभा की देन है। यदि गहन्य स्थिरराम का नीमरा बध्याय 'काव्यपुरुषोत्पत्ति' है। जिसमें वे कहते हैं—'प्राचीनकाल में पुत्र प्राप्ति की इच्छा में मरुस्थली के हिमालय पर जाकर तपस्या प्रारम्भ की। उनकी तपस्या में प्रसन्न होकर प्रता ने वरदान दिया। पतन्वद्वय मरुस्थली को पुनः-रत्न की प्राप्ति हुई। यही काव्यपुरुष था। मरुस्थली का मुक्त होने के कारण यह 'मरुस्थलेय' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस पुत्र ने बदतर ताता के शरणा का स्वयं करने हुए उन्होंने भाषा में कहा—

"महेतद्वाक्रम्य विश्वमर्ममूर्त्या विवर्तने—

पौत्रेण वाक्यपुमान् मान पादौ बन्धे तावती ।"^१

इस प्रकार की छन्दोगी वाणी केवल वेदों में दृष्टिगोचर होती थी। वैदिक मन्त्रों में प्रथम उक्त आतिथ्यरूप मुखर मरुस्थली बन्धन प्रकट हुई। उन्होंने यह भी प्रबलन स्पष्ट करने का उक्त वाक्य की निम्नलिखित भाषा में प्रस्ताव की—

'महापौत्रे शरीर, मन्त्र, शत्रु, शत्रु, जयनमश्चन पैराय पादौ, उरो मिश्रम्। तप प्रगल्भी गधुर उदाररत्नाणि। उतिषाण य ते वयो, रत आत्मा, योगाणि छन्दाणि, प्रगोत्रप्रवहिनिरादिना य वाचनेति अनुप्रगोत्रादयः त्वायनहुर्वेन ।'^२

अर्थात् शत्रु और शत्रु तुष्टाया शरीर है। मन्त्र भाषा मन्त्र, शत्रु शत्रु, शत्रुप्रम जयन, पैराय शरण तथा मिश्र भाषा तुष्टाया वक्तव्य है। तप,

१ काव्यपुरुष का उत्पत्ति अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है। वायुपुराण के १७ वें अध्याय, शांतिर्वे के २५९ वें अध्याय में, शतरत्न के २१ वें अध्याय और हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वासे में।

२ वाक्यमीमांसा पृ० ३५० ६।

३ वाक्यमीमांसा पृ० ३५० ६।

प्रसन्न, मधुर उदार आदि गुणों से तुम युक्त हो । तुम्हारी वाणी उत्कृष्ट है ।
रम तुम्हारी आत्मा है । छन्द तुम्हारे योग हैं । प्रज्ञोत्तर, प्रवहिनवा आदि
तुम्हारी वाक्-जीवा हैं । उपमा अनुप्रास आदि तुम्हें अलङ्कृत करते हैं । भारी
अर्थ को बतलाने वाली श्रुति भी तुम्हारी बन्दना करती है ।

चत्वारि शृङ्गास्तयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोमस्य त्रिधा बद्धो
धृषभो रौरवीति महादेवो भर्त्यनाबिवेग ॥^१

अर्थात् चार भीगो, तीन पैरो, दो सिरों एवं मान हाथों वाला, तीनों प्रकार से
बद्धा हुआ और शब्द करता हुआ यह महादेव भर्त्य लोह में धवनीजं हुआ है ।
पश्चात् एक मयन वृक्ष की छाया में स्थित शिला पर उभे लिटाकर एवं नववान
शिशु-भङ्गुश आचरण करने का उपदेश देकर सरस्वती आकाश गया में स्नान
के लिये चली गई । मध्याह्न में वाप में बिलम्बते हुए उस बालक को उशनम्
मुनि ने देखा तो वह दवाई होकर उसे अपने आश्रम में ले आये । आश्रम के उग
प्रसात वातावरण में बालक ने उशनम् मुनि को छन्दोमय वाणी में प्रेरित किया
जिससे उन्होंने सरस्वती ने स्तुतिपरक उद्गार अभिव्यक्त किये—

“या दुष्मादपि न दुग्धेव बविदोग्धुभिरन्वहम् ।

हृदि न मन्निधना सा मूक्तिधेनु सरस्वती ॥^२

अर्थात् जिसे बबिगन, घालों के समान दिन-रात घुलते रहने हैं, फिर भी जो
बिना दुही-ही प्रतीत होती है, वह मूक्तियों की बामधेनु सरस्वती हमारे हृदय में
निवास करे । इस छन्दोमय उद्गार के कारण उशनम् मुनि आदिशिव के रूप में
प्रसिद्ध हुए । स्नान के उपरान्त सरस्वती बालक को डूबने निराली । उस समय
वाग्मीकि ने उन्हें उशनम् के आश्रम का पता बतलाया । इस प्रकार वाग्मीकि
सरस्वती के कृपा-भाव बन गये । उन्होंने छन्दोमय रचना के लिये सरस्वती का
आशीर्वाद प्राप्त किया । परम्परारूप पर दिन निपाद के द्वारा गृहपरी के माते
जाने पर करण निपाद करने हुए युवा नीच को देखकर उनके शोक-मग्न हृदय
से यह बैभारी वाक् निबल पड़ी —

“मा निपाद ! प्रनिष्टां त्वमयम माश्वनीममाः ।

यत्प्रीतिमिषुनादेरमवधी. वाममोहितम् ॥^३

१. ऋग्वेद २-८-१०-२ (त्रिप्र-भिप्र भाष्यकर्ताओं द्वारा विविध प्रकार से
व्याख्यात इस मन्त्र का उपयोग राजदोषर ने अपनी भाष्यरचना के अनुसृत
कर लिया है ।)

२-२ वाग्मीकमामा ध० ३ पृ० ७ ।

यह बाणी कवि के सारस्वत होने का आचार बन गयी । हम श्लोक का अध्ययन करने वाला कवि भी सारस्वत नाम से सम्बोधित होने लगा । इसी श्लोक को पढ़-कर वृषाधन भूमि में शतमाहस्त्रो महाभारत-साहिता का निर्माण किया ।

एक बार ब्रह्म-लोक में ऋषियों और देवनाथों में किसी वैदिक विषय पर विवाद छिड़ गया । ब्रह्मा के आदेश से सारस्वती को निर्णायक कहा लोक जाना पड़ा । सारस्वती भी साथ जाने के लिए तैयार हो गया । ब्रह्मा की अनुमति के बिना उसे ले जाना अनुचित समझकर सारस्वती उसे छोड़कर चली गयी । कालक भी पीछे-पीछे जाने लगा । उन्हें जाते हुए देखकर उसका मित्र वार्तिकेय रोने लगा । अतः उस कालक काव्यपुरुष को बनाने के लिए सरस्वती तथा पार्वती ने साहित्य-विद्या-बधू का मंत्रन किया । उन्होंने काव्यविद्या-स्नानको एवं साहित्य-विद्या-बधू को उन्नत कर्तव्य भी बतलाया ।

साहित्य-विद्या बधू एवं काव्य-विद्या स्नानक काव्य-मुरूप को पांडव में पूर्व की ओर चल गये । एक ठग मुद्रा एक पुण्ड्र ब्रह्म आदि जनपदों में पहुँच साहित्य-बधू ने तैसी वेशभूषा धारण की, उम्रो का अनुकरण तद्देशीय स्त्रियों ने किया । पुण्ड्रो ने काव्य-पुरुष की वेश प्रणाली का अनुकरण किया । जिस बचन-विद्याम का साहित्य-बधू ने प्रयोग किया उसी बचन-विद्याम क्रम को गौडीया रीति का नाम मिला । बधू ने काव्य-मुरूप के मनोरंजन के लिए जिस विलास का प्रदर्शन किया उस विलास विद्यामयम को भारतीय वृत्ति कहा गया तथा उसकी वेशभूषा भीष्मभगधी प्रकृति के नाम से विख्यात हुई । इसके अनन्तर काव्यपुरुष पांचाल की ओर चला जहाँ पांचाल शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीर, वाहीरी आदि जनपद हैं । इन प्रदेशों की स्त्रियों को भी साहित्य-बधू की वेशभूषा का अनुकरण पूर्वानुसार अधिकतर प्रतीत हुआ । काव्य-जगत में यह वेशभूषा स्वीकृत प्रकृति पांचालमध्यमा कहलाई । बधू की बचन तैसी पांचाली रीति तथा विलास-विधि पारभट्टी वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई । तत्पश्चात् काव्यपुरुष और साहित्य बधू अवन्ति की ओर गये, जहाँ अवन्ति, बर्दिज, मुराट्ट, मानव, श्रवन्त एवं भृगुवन्त आदि देश हैं । वहाँ साहित्य-बधू ने विशिष्ट नेपथ्यविधान किया जिस में पांचाल देश और दक्षिण देशों के वेशों का मिश्रण था । उसका बचन-विद्याम एवं विद्यामयम भी वही अवन्त करता था जिस पांचाल और दक्षिण का उस पर पर्यन्त प्रभाव है । यहाँ प्रसिद्ध नेपथ्यविधि भाववि एवं विलासविधि सान्वती तथा कोशिकी नाम से प्रसिद्ध है ।

इसके पश्चात् काव्यपुरुष दक्षिण दिशा की ओर गया, जहाँ मलय, मेरुल, पुतल, केरल, पाल, मन्जर, महाराष्ट्र, गंग और कलिङ्ग आदि जनपद हैं। इन स्थानों पर साहित्य-बधू द्वारा अंगीकृत वेश प्रणाली दक्षिणात्मा बहलाई। उन्होंने नृत्य, गीत एवं वाद्यों की जिस शैली का प्रदर्शन किया वही कंशिकी वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध हुई। उन्होंने भाषण में जिस वचन-शैली का उपयोग किया वह वैदर्भी रीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। साहित्य-विद्या-बधू के वेद-वचन एवं विलास के प्रति प्रेमश्रद्धा होते हुए काव्यपुरुष ने अपनी यात्रा स्वर्णित कर दी। विदर्भ देश में काव्यपुरुष ने साहित्य-बधू के साथ गान्धर्व रीति से विवाह किया।

काव्यपुरुष की सृष्टि का उद्देश्य : राजशेखर का उद्देश्य काव्यपुरुष की रीति का प्रस्तुत करना ही नहीं है। साहित्य-शास्त्र में इस पुरुष की अवतारणा का लक्ष्य है—काव्य का समग्र भव्य और आकर्षक रूप उपस्थित करना। रीति का वृत्ति और प्रवृत्ति के साथ धनिय मन्त्रण व्यवहार करने तथा गीतिया, पाचाली और वैदर्भी की क्रमशः श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए साहित्य-विद्या-बधू द्वारा काव्यपुरुष की खोज में भारत-भ्रमण का आयोजन किया है। रीति वृत्ति एवं प्रवृत्ति का अस्तित्व समाज में ही है, उसके बाहर नहीं, इस तथ्य की ओर भी राजशेखर ने गहन ध्यान आकृष्ट किया है। काव्यपुरुष की आत्मा को उस सभा देखकर उन्होंने स्वयं को रसवादी प्रमाणित किया है। उन्नी प्रकार काव्यपुरुष के अंग-प्रत्यंग का वर्णन करके उन्होंने सप्तस्वयंवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। गद्य का अस्तित्व प्राचीनकाल से है किन्तु लौकिक सत्सुत में पद्य (छन्द) का प्रयोग काव्यपुरुष के अवतरण से ही प्रारम्भ हुआ, यह मत भी पूर्णतः शास्त्रीय है। सामान्यतया बाल्मीकि आदि कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु उन्नत कवि आदि-कवि कहकर उन्होंने गीता के 'कवीनामुशनाश्रवि' की पुष्टि की है।

राजशेखर ने काव्यपुरुष तथा साहित्य-विद्या का विदर्भ के वर्तमान (वर्तमान वासिन्) नगर में भगल विवाह रचाकर यह संकेत किया है कि वे विदर्भ की मनोहरता एवं सरसता के विशेष पक्षधारी थे।

कवि : सारस्वत-गण पर चलने वाले पक्षिकों में प्रतिभा और व्युत्पत्ति से सम्पन्न, रस के उद्बोध में समर्थ, वर्णन में निपुण व्यक्ति ही 'कवि' सभा का अधिकारी हो सकता है। 'कविशब्दश्च क्व वर्ण इत्यस्य धातोः काव्यरमणो रूपम्'

घोर उम कवि का कर्म का प्रति ही भाव्य है । राजनेर की वाच्यमीमासा में वाच्यमित्र के मन्त्रादि कवियों के भेदीभेद विचार में वर्जित दिये हैं । इनके आधार मित्र-मित्र हैं । त्रिभुवाधारों के माध्यम में कवियों का विचारन किया गया है वे निम्न हैं—

(१) प्रतिभा, (२) धीनिष्ठा, (३) विश्व, (४) हरम और (५) मनोवृत्ति ।

प्रतिभाशब्द कवि : राजनेर में प्रतिभा के दो भेद वर्जित दिये हैं—
 बारवित्री और भाष्यित्री । इनमें बारवित्री प्रतिभा—महत्ता, आहारी घोर
 धीनिष्ठा की गति प्रसार की होती है । महत्ता प्रतिभा में समग्र कवि साहित्य,
 आहारी प्रतिभा से युक्त धाम्यानिष्ठ तथा धीनिष्ठा प्रतिभा में समग्र कवि
 'धीनिष्ठा' महत्ता है । कवि की स्थिति यह है कि उसे जन्मान्तरीय
 गन्धारी में ही साहित्य अनुभवों का बोध हो जाता है ।^१ अतः उसकी गन्धारी में
 प्रतिभा का जन्म प्रकृतियों में दिखाई देता है । धाम्यानिष्ठ कवि की प्रतिभा ही
 जन्म के प्रभाव में उद्भासित होती है ।^२ अतः इस कवि के लिए प्रभाव
 अत्यन्त उपर्युक्त होता है । धीनिष्ठा कवि की स्थिति इन दोनों में भिन्न है ।
 मन्त्र-मन्त्रादि के अनुष्ठान में उसमें कवि का शक्ति का उद्भव होता है ।^३
 बुद्धिमान्, आहारीबुद्धि एव बुद्धि—इन तीनों प्रकार के विषयों में बुद्धि शिष्य
 ही धीनिष्ठा कवि का शक्ति होता है ।

आचार्यों का मत है कि धीनिष्ठा कवियों की ओर से शेष (साहित्य
 और धाम्यानिष्ठ) कवियों की कविता शक्ति के उद्भावन के लिए मन्त्र-
 मन्त्रादि के अनुष्ठान का आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जो साहित्य स्व ही
 मन्त्र है वह प्रकृतियों मन्त्र की प्रेरणा नहीं करता ।^४ किन्तु राजनेर
 आचार्यों की इस विचारधारा से पूर्णतया असहमत है । वे कहते हैं कि एक ही
 कार्य का सम्पादन करने वाले दो साधकों का यदि एक साथ प्रयोग कर विशा
 जाय तो किया वह एक द्विगुण हो जाता है । अतः साहित्य और धाम्यानिष्ठ

१. वाच्यमीमासा अ० ८ पृ० १३—जन्मान्तरगन्धारीयुक्त साहित्यीय बुद्धि-
 मान्तरमन्त्र ।

२. वाच्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—इह जन्मान्तराद्युद्भासितप्रकारेण आहारी
 बुद्धिराम्यानिष्ठ ।

३. वाच्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—उपदेशितशक्तिवर्धकान्तराद्युद्भासितप्रकारेण
 बुद्धिराम्यानिष्ठ ।

४. वाच्यमीमासा अ० ४ पृ० १३—समान्तराद्युद्भासितप्रकारेण तन्त्रार्थमनुविष्टताम् नहि
 प्रकृतियुक्तं साक्षात् साहित्य-मन्त्रादिप्रकारेण दृश्यते ।

कवियों के लिए मन्त्र-तन्त्र वा अनुष्ठान उपादेय ही है। आचार्य श्यामदेव वा कथन है कि इन तीनों प्रकार के कवियों में जयज्योतिष नामक और आचार्य नामक सारस्वत कवि उत्तरोत्तर कुशल होते हैं—‘तपोनुत्तरोत्तरीयो गरीयान्’ इति श्यामदेव। ११ मारम्बत कवि की वाङ्मय नैमित्री प्रतिभा के कारण निर्वाधमति में प्रवर्धित होनी है। आचार्य कवि की रचना प्रशस्त-जग्य होने के कारण परिमित क्षेत्र तक ही व्याप्त रहती है, और श्यामदेव कवि मन्त्र-तन्त्र के अनुष्ठान से कवित्व धर्म को अजित करता है। इन वह कभी तो सरस और कभी नीरस रचना करता है।

राजशेखर को यह मन्त्र-तन्त्र अभीष्ट नहीं है। उन्होंने रचना के उत्कर्ष को श्रेष्ठता प्रदान की है, सारस्वत, आचार्य एवं श्यामदेव नामों को नहीं। उनके मतानुसार गुणों की ही अधिकता में वाक्य में उत्कर्ष होना है। जिन कवि में जिनने अधिक गुण होंगे उतनी ही श्रेष्ठ उनकी रचना होगी। वे कहते हैं कि काव्य-रचना में उपचारियों विद्याओं वा प्रखर ज्ञान, काव्य-रचना का अभ्यास तथा गूढ़ कवित्व धर्म-इन तीनों का एकत्र निशम दुर्लभ है। काव्य, वाङ्मय विद्याओं वा पूर्ण अभ्यास तथा मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान को रहस्य ज्ञान जिसे कवि को है कविराजता उसके लिये अलभ्य नहीं है। कविराज राजशेखर की यह युक्ति इतनी और इतनी बरती है कि वे आचार्य श्यामदेव के मत के समर्थक नहीं हैं। मारम्बत, आचार्य कविवर्य श्यामदेव कवि में में किमी में भी यदि सर्वगुण विद्यमान है तो वही श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

मौलिक-जग्य कविभेद : राजशेखर ने रचना की मौलिकता की दृष्टि से कवियों की कतिपय श्रेणियाँ निर्धारित की हैं। वे हैं—(१) उत्पादक, (२) परिवर्तक, (३) आनन्दक, (४) सवर्णक। इस विषय में उनका निम्न कथन नितान्त युक्तियुक्त है—

मास्त्यचौर. कविजनो मास्त्यचोरो वणिग्जन ।

स भन्दति विना वाक्यं यो जानाति निगूहितुम् ॥२

कवि और वणिग्जन चौर्य-कर्म के बिना रह नहीं सकते, परन्तु जो चोरी को छिपाना जानता है वह वस्तु आनन्द से रहता है। मौलिक रचना करने वाले कवि नगण्य हैं। जो अपनी प्रतिभा में नवीन रचना करता है उसे उत्पादक कवि कहते हैं। दूसरे की रचना में शुश्रूषा से परिवर्तन करके उसे अपनी बना

लेने वाला कवि परिवर्तक की धेनी में रखा जा सकता है । जो अपनी प्रतिभा से दूसरों की रचना पर इस तरह भावरण डालता है कि उस रचना के अन्वहत होने का आभास ही नहीं हो पाता, ऐसा कवि आच्छादक कहा जा सकता है । दूसरे को कविता या काव्य को निर्भीकता से अपना कहकर प्रकट करने वाला कवि स्वर्णक भी कोटि में रखा जा सकता है । राजशेखर की इन दो रचनाओं में उक्त कवि-व्येधियों का बोध होता है—

उत्पादक कवि. कवित्वविचित्र परिधर्तक

आच्छादकस्तथा चान्यस्तथा स्वर्णकोत्तर ।^१

विषयानुसार कवि-कोटियाँ : राजशेखर ने शास्त्र एवं काव्य इन भेदों के आधार पर कवियों के तीन वर्ग बनाये हैं । जिन कवियों का लक्ष्य अपनी रचना में काव्य को महत्व देना है वे काव्यकवि, जिनका प्रमुख उद्देश्य रचना में शास्त्र को अभिव्यक्त करना है वे शास्त्रकवि एवं जिनका लक्ष्य शास्त्र और काव्य दोनों की समान महत्ता स्थापित करना है वे उभयकवि कहाते हैं । इस सर्वप्रथम में राजशेखर ने श्यामदेवाचार्य का उल्लेख किया है, जिनके अनुसार शास्त्रकवि से काव्यकवि और काव्यकवि से उभयकवि-व्येष्ट माने जाते हैं ।^२ राजशेखर इनसे असहमत हैं । उनके मतानुसार अपने-अपने विषय में श्रेष्ठ कवि व्येष्ट है । अतः उनमें में किसी को ऊँचा या नीचा बतलाना ठीक नहीं । नीरभीर-विवेक में कुछज राजहंस भी चन्द्रिकापान में असमर्थ होता है और चन्द्रिकापान में दक्ष चकोर भी नीर-भीर विवेक में असमर्थ सिद्ध होता है । ठीक इसी प्रकार काव्यकवि और शास्त्रकवि के रचना क्षेत्र नितान्त भिन्न होने के कारण उनकी उच्चा-वचता का प्रश्न ही नहीं उठता ? शास्त्रकवि रम-रमन्वा के द्वारा शास्त्र की प्रकृतता को विविल कर उसे रमसिक्त करने का प्रयास करता है। काव्यकवि शास्त्र के तर्क-तर्कश्रु अर्थों में भी उक्तिवैचित्र्य के द्वारा, गहुरता को स्पष्टित करता है । उभयकवि दोनों प्रकार की विधियों में दक्ष होता है । अतः राजशेखर का कथन है कि तीनों ही कवि अपने-अपने क्षेत्र में समान के हैं कम या अधिक नहीं । काव्य और शास्त्र की सापेक्षता के कारण दोनों के मध्य उपकार्य-उत्कारक पात्र रहता है । अतः इन दोनों का सामञ्जस्य नितान्त अपेक्षित है । इन दोनों के महत्त्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् राजशेखर ने शास्त्रकवि के तीन प्रकार वर्णित किये

१ काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ६१ ।

२ काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० १७ तेषामुत्तररीषो गरीयान् इति श्यामदेव ।

{१} काव्यविद्यास्नातक, {२} हृदयकवि, {३} अन्वयापदेशी, {४} मेकित्ता, {५} घटमान, {६} महाकवि, {७} कविपद {८} भाषेशिक, {९} आर्विच्छेदी तथा {१०} सनामयिता ।

जो व्यक्ति कवित्व की कामना से काव्य की विद्याओं तथा उच्च-विद्याओं के ग्रहण करने के लिए शुरुआत में जाकर विवाह करता है, वही काव्य-विद्या-स्नातक है । {२} जो हृदय में ही कविता को छिपाये रहता है, वह हृदयकवि है । {३} स्वयं कविता करने के पश्चात् दोष के भय के कारण उसे दूसरे की रचना कहकर उसका प्रचार करता है वह अन्वयापदेशी कवि है । {४} प्राचीन या पूर्ववर्ती कवियों की छाया को ग्रहण कर रचना करने वाला सेरिता कवि है । {५} जो मुक्तक काव्य की रचना कर सकता है प्रबन्ध की नहीं, वह घटमान कवि कहलाता है । {६} प्रबन्ध-काव्य की रचना करने वाला महाकवि तथा {७} मध्य प्रकार की भाषाओं में विभिन्न रसों का आविष्करण करने में समर्थ कवि राजपद का अधिकारी होता है । {८} अन्तःतन्त्रों की उपासना में काव्य में मिथि पाने वाला कवि आर्षेयिक कहलाता है । {९} जो इच्छा होते ही बिना किसी अवरोध के रचना करता है, उसे आर्विच्छेदी कवि कहते हैं । {१०} जो स्वयं मिथिगान्ध लेकर अन्त के वक्त पर कन्या या कुमारी के तारत्वती का सननण करता है उसे सनामयिता कहते हैं ।

कवि की इन दस अवस्थाओं में प्रथम सात कवि के क्रमिक विकास की ओरक है । आठवीं तथा दसवीं अवस्था का सम्बन्ध प्रौढशैविक कवि से है ।

काव्य-कला के साधकों की मनोवृत्ति भी कवियों के काव्यमार्गों का आधार बन सकती है । कुछ कवि एकाग्र चित्त में, भूमिगृह में बैठकर काव्य रचना में मग्न हो जाते हैं । उन्हें अनुरूपक कवि कहते हैं । कुछ प्रसव जाने पर ही काव्य रचना करने हैं ऐसे कवि निष्पन्न कहलाते हैं । कविश्य अन्य कार्यों से निवृत्त होने पर रचना करने हैं उन्हें दत्तमसर कवि कहा जाता है । किसी विशेष प्रयोजन से काव्य-सूत्रन करने वाले की प्रायोगिक भजा है ।

राजशेखरजीन कवि का वर्गीकरण, उनके द्वारा वर्णित कवियों की दस अवस्थाओं उनकी मूल्य विरोधन क्षति एवं शक्ति की परिचायिका है । उन्होंने कवियों के भेदोपभेदों का जो वर्णन किया है वह उनकी मौलिकता का प्रमाण है । काव्य के प्रत्यक्षन तक पहुँचकर कवियों की मनोवृत्ति की मूल्य व्याख्या उनकी विशेषण शक्ति की सूचि बनता है । उन्होंने कवियों के समस्त प्रकारों की ही विवेचना नहीं की अपितु सिद्ध दशों कवियों को

वाच्यसाध-प्रणाली का भी विवेचन किया है। उन्होंने वाच्यमीमांसा में बहिर्वर्त्य का जो विस्तारपूर्वक निष्पन्न किया है, उससे प्रतीत होता है कि वे केवल बहि ही नहीं थे, बहियों के घेष्ठ मार्ग-दर्शक भी थे।

भावक : राजशेखर ने भावोचक या समीक्षा के लिए 'भावक' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है (भावयन्तीति भावकः) बहि के धर्म तथा अभिप्राय को भावना करने वाला। द्विभिन्न प्रतिभा में से भावयित्री प्रतिभा भावक की उत्तरागिणी होती है। बहि का वाच्यतर इसी प्रतिभा के बन पर पतित होता है।

भावक-भेद : राजशेखर ने आशामिष्यन्ति की दृष्टि से भावकों के तीन भेद बताते हैं।^१ ये हैं—वाग्भावक, हृदय-भावक तथा अनुभाव भावक। वाणी द्वारा भाव प्रकट करने वाला वाग्-भावक कहलाता है। वाच्यस्वादन या वाच्यपरीक्षण करने के पश्चात् भी जो अपने भावों को हृदय में ही रक्ता है उसे हृदय-भावक कहते हैं। अनुभाव-भावक वाच्य की श्रेष्ठता या प्रथमता को साक्षित एवं आत्मिक भावों द्वारा प्रकट करता है।^२ इन तीन भेदों के प्रतिरक्त भी राजशेखर ने भावकों की अन्य चार कोटियाँ वर्णित की हैं—परोचरी, मनुष्याभ्यवहारी, भगवती तथा तत्त्वाभिनिवेशी। आरोचकी तथा मनुष्याभ्यवहारी भावक—कोटियों का उल्लेख राजशेखर के पूर्ववर्ती आचार्य भगत ने भी किया है। इन्हीं दो को धामन^३ ने बहियों में परिगणित किया है।

राजशेखर का वचन है कि आरोचकी भावक उत्कृष्टतम रचना के प्रति भी अरवि व्यक्त करते हैं। उनकी यह आरोपकता दो प्रकार की होती है—स्वाभाविकी एवं ज्ञानयोगिनी। स्वाभाविक अरवि सैकड़ों सस्कारों से भी दूर नहीं हो सकती। जिस प्रकार अनेकों सस्कारों के पश्चात् भी राखे की कालिमा नहीं मिट सकती। ज्ञानजन्य अरवि के विषय में विच्छिन्न आशा दिखाई देती है क्योंकि उसमें विशिष्ट श्रेय वचनों से प्रभावित होने की उसमें संभावना रहती है।^४ मनुष्याभ्यवहारी

१ वाच्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—भावकस्योपबृत्तार्था भावयितुः। सा हि बहि धर्ममभिप्राय च भावयति। तथा छलु पतित कवेव्यभिप्रायतः।

२ वाच्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—वाग्भावको अवेत्कश्चित्त्वभिद्दुहृदयभावकः। सात्त्विकैरादिर्बहिः। वरिचदनुभा वेश्य भावकः।

३ वाच्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४—ते च द्विधा आरोचकिन मनुष्याभ्यवहारिणश्च इति भगवः।

४ काव्यलकारसूत्र—आमन—१, २—इह छलु द्वे इवय सम्भवति। परोच-विज्ञ. मनुष्याभ्यवहारिणश्चेति।

भावक भाषाएँ कोटि का बहा जा सरता है । प्रतिभा एवं विवेक ने होन होने के कारण उममें गुण और दोष को पहचानने की क्षमता नहीं होती । अतः अनेक अनुपयुक्त तत्वों का ग्रहण तथा उपादियों का त्याग उनके लिए सामान्य बात होती है । विवेक का उदय होने ही बुद्धि का परिष्कृत होना प्रारम्भ हो जाता है तथा वह कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करती है । तीसरे प्रकार का भावक मत्सरी है । शोभनीय में शोभनीय काव्य भी उसे नहीं सुझता । दूसरे के गुणों का वर्णन करने में उसकी बाधाी मुश्किल हो जाती है । तत्त्वार्थान्वेगी भावक हजारों में एक होता है । वह काव्य रचना के परिधम को जानता है, शब्दों की रचना-विधि को भलीभाँति पहचानता है, सुन्दर उक्तियों में घातहादित होता है और काव्य के लक्षणों को भलीभाँति समझता है । सचमुच ऐसा आलोचक बड़े ही पृथक् प्रभाव में मिलता है ।^१ भावक की महता कवियज्ञ ही जानते हैं, अतः भावक काव्यसौन्दर्य का ग्रहण कर निर्णयबन्त में उसका प्रचार करता है । पुस्तकविन्यस्त बाध्यबन्ध घर-घर में मिल सकते हैं किन्तु सच्चा काव्य वही है जो भावक के हृदयपट पर अंकित हो जाय । भावक कवि का स्वामी, मित्र, मंत्री, शिष्य, प्राचार्य सभी होने की क्षमता रखता है । काव्य का रस-ग्रहण करते समय उसके चेहरे पर जो धनौक्य भाव मुद्रित होते हैं, उनका अनुभव करने में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है ।^२

कवि और भावक . कवि का सम्बन्ध कारमित्री तथा भावक का भागमित्री प्रतिभा से है, तथापि दोनों प्रकार की प्रतिभा पर विचार एवं ही व्यक्ति में हो सक्ता है या नहीं ? इस विषय को लेकर विद्वानों में मतभेद दिखाई देता है । राजशेखर में प्राचीन प्राचार्यों का मत उद्धृत किया है जो कवि और भावक की एकता पर विश्वास रखते हैं ।^३ वे (प्राचार्य) कहते हैं कि कवि ही भावनासज्जम है और

१ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—शब्दानां विविधविन गुणकनविधीनामीदृते मुक्तिमिधि । सान्द्र मेदि रसामृताविचिनुतेतात्पर्यमुद्रा न य । पुष्प गच्छते विनेतृविहरादन्तर्मूढ तात्पर्यता । केषामेव बर्दाजदेव मुधिया काव्यश्रमज्ञो जनः ।

२ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १५—मीयन्ते भावकैस्त्वैव न निबन्धा दिता दगा सन्ति पुस्तकविन्यस्ता काव्यवन्ता गृहे-गृहे । दिवास्तु भावकमन शिता-पट्टतिरुद्धिता । स्वाम्यामी मित्र च मन्त्री च शिष्यप्राचार्य एव च । कवेर्भावा हि निज कि हि तद्यन् भावकः । सन्त्याये विनया कश्चिद्-भावस्योन्मेषमनि ता । सर्वाभिनयनिर्णीतो दृष्टा नाट्यमुद्रा न य ।

३ काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३—न पुनरमयोमोदो यत्कविर्भविमिति भावकश्च इत्याचार्यः ।

भावक ही काव्य को सफल बनाते हैं । अतः भावमित्री प्रतिभा से युक्त कवि यभी भी अधमदशा प्राप्त नहीं कर सकता—

प्रतिभातारताम्येन प्रतिष्ठ्य भुवि भूरिधा
भावकस्तु कविप्रायो न भवत्यधमा दशाम् ।^१

कवि कुलगुरु वासिदाम की अनुभूति इन आचार्यों के मत के नितान्त विरुद्ध है । वे कवित्व और भावकत्व का नाम एक ही व्यक्ति में मानने के पक्ष में नहीं हैं ।^२ उन्होंने कहा है—

तमन्तः श्रोतुमर्हन्ति मदः सद् व्यक्तिहेतवः ।^३

उनके विचार से सद् और असद् काव्य की अभिव्यक्ति के उत्तरदायी तत्त्व ही होते हैं—

एक सूते कनकभुषणरत्नपर्यङ्गाभोज्य ।^४

एक पक्षर सुवर्ण उत्पन्न करता है और दूसरा उसकी परीक्षा करता है । इसी प्रकार एक कवच-रचना में समर्थ होता है तो दूसरा कविता के गुणदोषों की विवेचना में ।

आचार्य राजशेखर वासिदास के विचारों से पूर्वतया सहमत हैं । वे कहते हैं कि स्वरूप-भेद तथा विषय-भेद होने से भावकत्व भिन्न है, कवित्व से पृथक् है ।^५ अतः वे एक व्यक्ति में उभयमुखी कवित्व और भावकत्व-प्रतिभा का निवास अस्वीकार नहीं करते ।

काव्य पाक : राजशेखर के कवनानुसार निरन्तर अभ्यास से सुकवि का वाक्य परिपक्वता को प्राप्त करता है । इसे ही काव्य-पाक कहते हैं ।^६ पूर्वार्चयें मंगल के मत को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा है कि भगवत् की सम्मति में 'सुपातिज्ञा च श्रवण एषा व्युत्पत्तिः अर्थात् सुप् और तिङ्ग के परिज्ञान से परिपक्वता आती है, इसे व्युत्पत्ति भी कहते हैं । आचार्यों का मत है कि पदनिवेशनिष्पन्ना ही पाक-संज्ञा धारण कर सकती है । इस सदर्भ में आचार्य वासन के

१. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ १३ । २. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४ ।

३. रघुवश १ १३ ।

४. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १४ ।

५. काव्यमीमांसा अ० ४ पृ० १३ ।

६. काव्यमीमांसा अ० ५ पृ० २०—सततमभ्यासवशतः सुकवे वाक्य पारमायानि ।

मत का उल्लेख किया है । वामन ने पदपरिवृत्ति असहिष्णुता को अन्धपाक कहा है ।^१ राजशेखर की पत्नी अवन्तिमुन्दरी वामन के कथन की मानने के पक्ष में नहीं है । राजशेखर ने उनके मत का भी उल्लेख किया है । वे कहती हैं कि यह पाक नहीं, अपितु कवि की अशक्ति है, क्योंकि महाकवियों द्वारा एक ही वस्तु के विभिन्न अर्थों द्वारा किये गये वर्णन परिपक्व होते हैं । इत्यनिष्ट स्मानुक्त्य मन्दाप्यौ मे की गयी पद-रचना ही पाक है । "इयमवन्तिरिति पुन पाकः इत्यवन्ति मुन्दरी ।"^२ आचार्य राजशेखर अवन्तिमुन्दरी के कथन से सहमत हैं किन्तु पाक के निर्णय का कार्य दे सहाय आनोचको को सौंप देना चाहते हैं । उनका कथन है कि जहाँ पदों के परिवर्तन की आवश्यकता हो वह अन्धपाकवाला वाक्य है । जहाँ रंग भलकार और गुणों का सुन्दर जम हो वह वाक्य-पाक है । अन्धपाक का लक्षण देने के उपरान्त उन्होंने उसे ९ भेदों में विभक्त किया है । ये नमस्त भेद द्राष्ट नहीं है । अतः सरसता के प्राप्ति पर इन ९ भेदों को मोन भावों में रद्द करने हैं—

मधुर वा सरस	सरस-नीरस	नीरस
मृन्दीका	धदर	पिबुमन्द
मह्वार	तिन्तिडीक	बार्ताक
नारिकेल	त्रपुम	जमुत

स्पष्ट है कि नीरस होने के कारण पिबुमन्द, बार्ताक और जमुत पाक संबंधी स्पाग्य है । धदर, तिन्तिडीक और त्रपुम मध्यम होने के कारण सरसता द्वारा परिष्कारित किये जा सकते हैं । मृन्दीका, मह्वार और नारिकेल पाक-मधुर वा सरस होने के कारण प्राह्य हैं । आचार्य आसह और वामन ने भी पाक को दो भागों में विभक्त किया है—सरस और नीरस के कथन पर वे हृद्य और ग्रहृद्य का प्रयोग करते हैं । कथितपाक को वे ग्रहृद्य मानते हैं । वामन मह्वार पाक को ब्रह्मपाक एवं बार्ताक को ग्रहृद्य मानते हैं ।

राजशेखर प्रथम अलंकारिक हैं जिन्होंने वाक्य-पाक की इतनी विष्णुता का मे चर्चा की है ।

१ वाक्यमीमांसा अ० १ पृ० २०—असहिष्णुतावि पदपरिवर्तनमाय-
स्मानुक्त्योपरिपरिवृत्तिर्बहुधा विदुः इति वाक्यमीमांसा ।

२ वाक्यमीमांसा अ० १ पृ० २०—इयमवन्तिरिति पुन पाकः इत्यवन्तिमुन्दरी ।
मन्तिमुन्दरी महाकवी नामनेत्रोरिति पाठः परित्याज्यात्मनि । तस्मा-
त्तयोर्विद्वत्पदार्थ—पूर्वविनिर्वाच्य पाकः ।

पाप्याः केसरिण न पश्यत पुरोप्येन वसन्त वने

मुदा रत्न जीवितानि शरणं यात प्रिया देवान् ।^१

स्पर्श हे पक्षिण ! जिन्होंने शिलीमुखी (बाणों और भ्रमरों) के समूहों को दूर
 न ही खींच रखा है—ऐसे इन छिरानों (भीनों और कूने हुए चिरायनों) को क्या
 तुम नहीं देख रहे हो ? तथा उन पत्ताओं (पत्ताखं बृक्ष और रासमों) को भी नहीं
 देख रहे हो जिन्होंने अपने मुखों की पीलिया और लालिया प्रकट कर दी है ।
 फिर क्या तुम गायने ही वन के छोटे केमरों (नाकनेमर और मिह) को भी नहीं देख
 रहे हो ? हे मूर्ख ! अपने-अपने प्राणों की रक्षा करो और अपनी प्रिय (दृष्ट
 प्रिया) देवता की शरण में जाओ ।)

इस श्लोक में शिलीमुख आदि बाण और भ्रमर के लिए, छिरान शब्द भीनों
 और चिरायनों के वृक्ष के लिए, पत्ताखं शब्द पत्ताखं बृक्ष और रासमों के लिए,
 केमरी शब्द नाकनेमर और मिह के लिए तथा प्रिय शब्द दृष्ट और प्रिया के लिए
 प्रयुक्त है । निम्नलिखित शब्दों के निर्वाण शब्दों में उक्त चार शब्दों परसे में ही
 शिलीमुख और छिरान इन दो शब्दों का हरण किया है—

या ना वाप्य प्रिया त्यक्त्वा दूरगृष्टशिलीमुखम् ।

किंवा पत्ताखंमाकुं च छिरान न पश्यति ।^२

हे पक्षि ! तुम अपनी प्रिया को छोड़कर नहीं न जाओ । क्या तुम शिलीमुखों
 (बाणों और भ्रमरों) को गृष्ट करने तथा मार्ग को रोककर छोड़े हुए इन छिरानों
 (भीनों और चिरायनों के वृक्षों) को नहीं देख रहे हो ? शिलीमुख और छिरान
 इन दो शब्दों का हरण होने के कारण यह हरण स्वाभाविक है ।

राजनेश्वर ने गृष्ट शब्द के एक देश के हरण की मांगना दी है ।

मागधं यदागम्या वन्मूर्तिरिव शिव ।

मागधयोगं सुर्वीत वपुर्भुजिनी जन ।^३

अर्थात् या दृष्ट शक्ति के साथ मागध हो जाने के कारण उसने उसके श्रेष्ठ
 कर्मा प्राप्त किया, इसमें मागधत्व ही क्या ? सुखा ने शक्ति शक्ति शक्ति का
 योग क्यों किया ?)

या शक्ति न विपत्ति है । शब्द—इसके दो अर्थ हैं । पहला अर्थ
 का निर्देश इस अर्थ की प्रतीति करता है (पुण्य विपत्ति शक्ति) तथा दूसरा

१. वाचस्पतीभाष्य पृ० ११ पृ० २६ ।

२. वाचस्पतीभाष्य पृ० ११ पृ० २६ ।

३. वाचस्पतीभाष्य पृ० ११ पृ० २६ ।

क्षुद्र-रहित-दुधा से रहित अर्घ्य को व्यक्त करता है। उसी प्रकार मानोपयोग पद इत्येव युक्त है। मानोपयोग (माम् सोपयोग का अर्थ है मेरे लिए उपयोगी) तथा सधियक्ता मानोपयोग शब्द का अर्थ है मांस का उपयोग। उक्त श्लोक में दूसरे कवि ने मांसोपयोग भे से केवल मांस शब्द ग्रहण किया है—

कोपाग्मानिनि किं स्फुरत्यतितरा मोमाघरस्तेऽधरः
किं वा च्छुब्दनकारणाद्व्यति मो दास्योविकायद्वयम् ।
तस्मात्सुभु सुगन्धिमाहितरस स्निग्ध मज्जस्वादरा-
म्मुग्धे मासरसं द्रुवमिति तथा बन्ध समासिद्वित् ।^१

अतः यह हरण ग्राह्य है।

राजशेखर ने यमक अलंकार द्वारा पूरे श्लेषयुक्त पाद के हरण को भी हरण का एक भेद माना है—यथा

हसमपारपयोनिधिविस्तृत
प्रहरता हतिना ममराङ्गणे ।
निजयशश्च जज्ञाङ्कवखामल
निरवध्रीरितमाकुलमासुरम् ॥^२

इस उदाहरण में 'निरवध्रीरितमाकुलमासुरम्' पद व्याकुल दंष्ट्र सेना को मर्यादा से व्युत्तर करने या कैंपा देने के अर्थ से प्रयुक्त है। अन्य कवि ने इस पद के द्वारा यमक अलंकार की सृष्टि की है—

दनयता विशिखैर्वलमुन्मद
निरवध्रीरितमाकुलमासुरम् ।
दशगु दिक्षु च तेन यज्ञ सित
निरवध्रीरितमाकुलमासुरम् ॥^३

श्लोक के द्वितीय तथा अन्तर्ग चरण में प्रथम श्लोक के 'निरवध्रीरितमाकुलमासुरम्' पाद का यमक-रूपेण हरण है। इसी प्रकार—

यस्या मुजङ्गवर्गं कर्णयितेक्षणम् कामिवीचदन च ।^४

चरण के 'कर्णयितेक्षणम्' पाद का हरण अन्य कवि ने अपने इस श्लोक में किया है।

किं करोतिनियत्कालं देशावेष्टमनि वामुक
वीदुषां वदन धोष्य तस्याः कर्णयितेक्षणम् ॥^५

१. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४६ । २. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४६ ।

३. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४६ । ४-५. काव्यमीमांसा अ० ११ पृ० ४७ ।

अथण-मात्र से कर्ता का स्मरण हो जाय) पाद वा ही नहीं पादरा हरण भी उचित है ।^१ भारवि के किरातार्जुनीय के तीसरे सर्ग का दसवां श्लोक—
 'इत्युक्तवानुक्ति विशेषरम्यम्' पदावली से प्रारम्भ होता है । यह श्लोक इतना प्रसिद्ध है कि अन्य कवि अपने श्लोक में इस समूचे पाद का हरण कर ले तो कोई भी बता सकेगा कि पादहरण कहीं से किया गया है, अब इसे हरण नहीं बह सके। किन्तु यही कवि-प्रतिभा का व्यय हो, ऐसे उल्लेखनीय पद का हरण कठिन कहलायेगा । यथा—

नमः सत्तारनिर्वाण विषामृतविधायिने ।

सप्तसौकौटिकद्वय, शंकराक्षरमिन्द्रये ॥^१

इस श्लोक में शंकर को क्षीरसागर कहा है तथा उन्हें समारम्भी विष और मोरपी अमृत का जनक माना है । इसे दूसरे कवि ने अपने निम्न श्लोक में अपने नाम से प्रकाशित किया है—

प्रसरद्विन्दुनादाय शुद्धामृतमयात्मने ।

नमोऽनन्तप्रकाशाय शंकराक्षरमिन्द्रये ॥^२

यही श्लोक के 'शंकराक्षरमिन्द्रये' पद का हरण किया गया है । यह सर्वथा अनुचित है, क्योंकि पहले श्लोक के निर्माण में कवि की प्रतिभा का व्यय हुआ है ।

भाष्यों का बचन है कि किसी श्लोक में यदि किसी एक पाद के ही विपरीत पद का कारण बनाकर ग्रहण किया जाय तो वह हरण नहीं मणितु स्वीकरण कहलायेगा ।^३

त्यागाधिरा, स्वर्गमुपाध्यायने

त्यागेन हीनानरकं व्रजन्ति ।

न त्यागिता विचिद्माध्यमस्मि

त्यागो हि सर्वव्यमनानि हन्ति ॥^४

अपने उन्नततम स्थान के कारण उन्मृष्ट व्यक्ति, स्वर्ग को प्राप्त करने हैं और त्यागहीन व्यक्ति नरक को जाते हैं । त्यागियों के लिए माध्यम कुछ भी नहीं है । त्याग से सभी प्रकार के कष्ट दूर होते हैं ।

१. वाय्यमीमांसा छ० ११ पृ० १८ । २. वाय्यमीमांसा छ० ११ पृ० १८ ।

३. वाय्यमीमांसा छ० ११ पृ० १८ । ४. वाय्यमीमांसा छ० ११ पृ० १८ ।

५. वाय्यमीमांसा छ० ११ पृ० १८ ।

उपर्युक्त श्लोक के 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण को शून्य कवि ने ग्रहण किया है किन्तु विपरीत बनाकर—

त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ती-
त्यलोकमेतद् भुवि सम्प्रतीतम् ।
जालानि सर्वव्यसना नि तस्या
मयागेन मे मुग्धबिलोचनाया ॥१॥

यहाँ 'त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति' चरण विपरीत अर्थ का साधक है । 'त्याग' सब वस्तु को दूर करता है, यह जाल लोक में मिथ्या हो चुकी है । क्योंकि उस सरल नेत्रोवासी प्रियतमा के त्याग में ही तो मुझे सारे कष्ट झेलने पड़ रहे हैं । आचार्य इस प्रकार के हरण को पाह्य मानते हैं ।

अर्थ-श्रयोत द्वारा हरण : राजशेखर इस कथन से सहमत नहीं हैं, उन्होंने इसे भी हरण की कोटि में रखा है । इस हरण के उन्होंने अनिपय भेद बताताये हैं ।

{ पादस्ते नरवर दक्षिणे समुद्रे
पादोऽप्यो हिमवति हेमकूटलग्ने
{ आनामत्यस्य महीनल त्वयीत्थ
भूपाला प्रणतिमपास्य किन्तु कुप्यु
{ आनामत्यस्य महीनल त्वयीत्थ
भूपाला प्रणतिमपास्य किन्तु कुप्यु
{ इत्येते विपतपदद्रवस्य राज-
आश्रयं कथमिय सीमनी न निपात

नये पूर्व श्लोक के उत्तरार्द्ध का हरण किया गया है ।

(२) अस्त-व्यस्त रूप से हरण :

तत्तावदेव जसिन् हफुटिन् महीयो
यावन् तिम्रश्चिमश्चानभ्युदेति ।
यावन्श्चिविदपि वीर्यराहुमन्ति
अभ्युदगते भवमध्यामनिघातु
तस्मिन्नास्ति पुनर्विहसताननपरजाभि ।
दन्दो मिताभ्ररत्नस्य च को विक्षेप ।

यहाँ पहले श्लोक के प्रथम और अन्तर्ग पाद का हरण किया है ।

(३) एक ही पाद में परिपूर्ण करके दूसरे छन्द का निर्माण भी हरण अन्तर्गम है—

अरण्ये निजने रात्राक्लवैरगमि मादमे
न्यामापल्लवने चैव दिव्या मग्धवति त्रिया ॥

निम्न श्लोकार्थ में ऊपर के उत्तरार्थ का हरण किया गया है—

तन्वद्भी यदि लभ्येत दिव्या सम्भवति त्रिया ।

(४) पादत्रय का हरण : इसमें तीन पाद यथास्थान रखकर एक पाद को हटाकर एक नया पाद जोड़ दिया जाता है यथा—

यस्य केशीषु जीवूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।

कुक्षौ समुद्राश्चत्वारः स्य स्य सोऽपान्मनेनम् ॥

इस श्लोक के तीन पाद लेकर—

यस्य केशीषु जीवूता नद्यः सर्वाङ्ग सन्धिषु ।

कुक्षा समुद्राश्चत्वारः स सहेत स्मरानलम् ॥

इस श्लोक की रचना की गई है । इसमें उस्य सोऽपान्मने नमः' इस पद को हटाकर और स सहेत स्मरानलम्' यह एक पद जोड़ दिया गया है ।

हरण में भी कवित्वः—

किमिह किमपि दृष्टं स्थानमस्ति श्रुतं वा
अजनि दिनकरोऽप्य यत्र नास्तं कदाचित्
अमनि विहगसार्पानित्यमा पृच्छमानो
रजनिविरहभीतश्चनवाको वराक् ॥१॥

जयति मितविलोलव्याजयज्ञो पवीती ।
धनकपिल जटान्तध्रुतिगंगाजनीष
अविदित मृगचिन्हा मिन्दुलेपा दधान
परिणतशितिकण्ठस्यामकण्ठ पिनाकी ॥२॥

कुमुदवनमर्षाथ श्रीमदम्भोजखण्ड
त्यजति भद्रमूलकः प्रीतिभाश्चक्रवाक
उदयमहिमरश्मिर्याति शीताशुरस्त
हृत्विधिललितानां हि विचित्रो विपाकः ॥३॥

किमिह किमपि दृष्टं स्थानमस्ति श्रुतं वा
अनकपिल जटान्तध्रुतिगंगाजनीष ।
निवसति स पिनाकी यत्र याया तदस्मिन्
हृत्विधिललितानां हि विचित्रो विपाकः ॥४॥

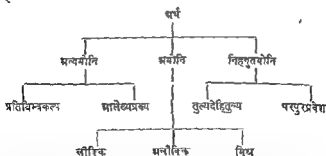
यहाँ कवि ने चौथे उदाहरण में प्रथम श्लोक का प्रथम, दूसरे का दूसरा, तीसरे का चौथा चरण लिया है । केवल तीसरा चरण निजी प्रतिभा से निर्मित किया है । अतः यह हरण नहीं कवित्व है ।

(२) या आभारवती रसान् रसयितु कवित्ववीना नवा
दृष्टिर्वा परिनिष्ठितार्थविषयोन्मेषा च वैपश्चित्ती
ते ह्ये प्रपञ्चलम्ब्य विश्वमनिश निर्बर्णयन्तो वयं
आत्मा नैव च नश्यन्निद्रापन त्वद्भक्तिरुन्मेष सुष्ठम् ।
लब्धमुत्पलदृशा प्रेम्णा ममान सुखम्,
अभिप्रायन, इत्यभक्तिरुन्मेषमुखम् के स्थान पर उत्पलदृशा प्रेम्णा ममान
मुखम् जोड़ देने से यह प्रक्ति रमात्मक रचना शृंगारमयी हो गयी है ।

(३) प्रमहकलहसितात्सालितानीय कान्त्या
मुद्रुलितगमनत्वादव्यक्तकर्णोत्पलानि ।
पिबति (पिबतु) मधुसुगन्धीन्यावनानि प्रियाणा
त्वयि (मयि) विनिहितमार कुन्तनावामधीश ॥

इस श्लोक के तृतीय चरण में पिबति के स्थान पिबतु तथा चतुर्थ चरण में त्वयि के स्थान पर 'मयि' कर देने से श्लोक प्रार्थनापरक हो गया है ।

शब्दहरण की विवेचना करने के पश्चात् आचार्य अर्थहरण के भेद बतलाते हैं—



अर्थ तीन भागों में बंटा है । अन्यथोक्ति, निहनुतथोक्ति तथा अथोक्ति—अन्यथोक्ति तथा निहनुतथोक्ति । प्रत्येक के दो स्थूल भेद हैं, जिन्हें क्रमशः प्रतिनिम्बकल्प, आलेख्य-प्रकाश, तुल्यदेहितुल्य एवं परपुरप्रवेश कहा गया है । इन चारों में प्रत्येक के पाठ

भेदयुक्त होने के कारण अन्ययोनि तथा निहनुतयोनि अर्थ ३२ उपभेदों में विभक्त दिखाई देता है । निम्नतालिका में ३२ भेदों के नाम दिये हैं —

अर्थ			
अन्ययोनि		निहनुतयोनि	
प्रतिबिम्बरूप	आलेख्यप्रख्य	तुल्यदेहितुल्य	परपुरप्रवेश
व्यस्तक	समग्रम	विषयपरिवर्त	हुङ्मुद
खण्ड	विभूषणभोप	द्विविच्छित्ति	प्रतिकञ्चुक
तैलबिन्दु	व्युत्क्रम	रत्नमाला	बभ्रुसंचार
नटनेपथ्य	विशेशोक्ति	सख्योत्प्लेख	धातुवाद
छन्दोविनिमय	उत्तस	चुलिका	सत्कार
हेतुव्यत्यय	नटनेपथ्य	विधानापहार	जीवजीवक
सक्रान्तक	एकपरिकार्य	माणिक्यपुञ्ज	भावमुद्रा
सम्पुट	प्रत्यापत्ति	रुन्द	तद्विरोधी

अन्योन्ययोनि के प्रथम भेद, प्रतिबिम्बरूप का सदाश है—

अर्थस एव सर्वो वाक्यान्ताविरचनापर यत्र
तदपरमार्थविभेद काव्य प्रतिबिम्बरूप स्यात् ॥^१

जिस रचना में किसी प्राचीन कवि का शब्द अर्थ ले लिया गया हो । भेद केवल वाक्य विन्यास में हो, कोई तात्त्विक-भेद न हो उसे प्रतिबिम्बरूप कहते हैं ।

दूसरे काव्य का प्रतिबिम्ब होने से यह हरण सर्वथा त्याज्य है । इसके भाठ भेद है—

- (१) जिसमें पूर्व श्लोक के क्रम को बदल लिया जाय, अथवा श्लोक के परिवर्तन का विषय कर दिया जाय उसे व्यस्तक कहते हैं ।
- (२) विस्तृत अर्थ के खण्ड का प्रथम खण्ड माना जाता है ।
- (३) संक्षिप्त अर्थ को विस्तारपूर्वक वर्णित करना तैलबिन्दु है ।
- (४) दूसरी भाषा की रचना का भाषान्तर करना नटनेपथ्य प्रकार कहा जाता है ।

- (५) छन्द की परिवृत्ति छन्दोविनिमय भेद का निर्माण करती है ।
 (६) कारण की परावृत्ति का ही नामान्तर हेतु-अन्वय है ।
 (७) दृष्टि पदार्थ के धर्मों का दूसरे पदार्थ में सम्ममण सवान्तक है ।
 (८) दो पद्यों का अर्थ जहाँ मिश्रित किया जाय वह मकान्तक कहलाता है ।

अन्यथोक्ति अर्थ का दूसरा भेद आनेकाप्रत्यय है । यह प्राचीन काव्य में भिन्न न होने पर भी अनेक मन्वीर सामग्री से सम्पन्न सुकल होने के कारण ब्राह्म है यथा—

कियतापि यत्र मस्कारकर्मणा वस्तु भिन्नवद् भाति

तत्र वक्षितमर्थंचतुरैरास्तेत्यप्रत्ययमिति काव्यम् ।^१

जहाँ प्राचीन कवि द्वारा प्रयुक्त वस्तु कुछ उत्तार कर देने में भिन्न प्रतीत हो उसे आनेकाप्रत्यय कहते हैं । इस आनेकाप्रत्यय के भी आठ भेद हैं—(१) सदृश उच्चारण समक्रम कहलाता है, (२) अन्तर्गत उक्ति को अन्तर्गत कर वर्णित करना विभूषणमार्ग है, (३) क्रम को विपरीत कर वर्णन करना व्युत्क्रम कहलाता है, (४) सामान्य को विशेष रूप में कहना विशेषोक्ति कहलाता है, (५) शीघ्र भाव को प्रधानता में कहना उन्नयनभेद है, (६) प्रस्तुत को अन्यथा रूप में कहना नदोषप्रत्यय है, (७) जो कारण सामग्री प्राचीन उक्ति में बड़ी गई हो उसी सामग्री की निम्नी भिन्न अर्थ के विषय में कहना एकापरिणाम्य है तथा (८) विद्वान् रूप में बड़ी गई बाल प्रकृत रूप में कहना प्रत्यापत्ति कहलाता है । ये समस्त भेद अर्थ की समता होने पर भी वैचिदर्य उत्पन्न करते हैं ।

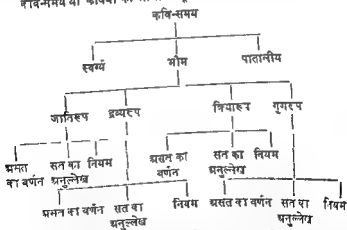
निहनुतयोक्ति के दो भेद हैं—तुल्यदेहिनुन्य तथा परपुरप्रवेश ।

तुल्यदेहिनुन्य वह भेद है जिसमें शरीर की पृथक्ता होने पर भी दोनों उक्तिषो की आत्मा एक समान ही रहती है । इसके भेद निम्न हैं—

(१) विषय में विषयान्तर मिलाकर उसका स्वप्नान्तर कर देना विषयपरिवर्तन, (२) दो प्रकार में रिये गये वर्णन को एक रूप में ही कहना इन्द्रविच्छिन्ति, (३) पूर्व अर्थों का अर्थान्तरों के द्वारा परिवर्तन रत्नमाता, (४) सहाय वेद्यम् ॥ द्वारा अर्थों का प्रणवन सन्तोस्तेषां, (५) मन का विरम द्वारा प्रपक्वा विषय का मन द्वारा वर्णन भूलिना, (६) निषेध का विधि रूप में वर्णन विधानापहार (७) बहुत अर्थों का एकत्र उन्नयन माणिक्यपुञ्ज तथा ममटि वा व्यष्टि रूप में वर्णन करना बन्द वाचनता है ।

काव्यालंकारसूत्र में पाया जाता है जिसमें पुनरुक्ति, परित्याग, सन्धिनिरूपता, तद्धु-गुरु भाव, पादादि में खलु आदि का निषेध, बहुब्रीहिसंस्कृत कर्मधारय का निषेध, नञ् का प्रयोग, विशेषण का प्रयोग, सर्वनाम में समान्यत का परामर्श परम्परा-मवधपरक पठ्ठी, देशज पदों का प्रयोग, प्रचलित निम्न और अप्रगल्भ, परम्परा-मवधपरक पठ्ठी, देशज पदों का प्रयोग, लक्षण प्राचुर्य का निषेध एवं जाति-व्यक्ति के भेदाभेद का विवेचन किया है। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भामह और दण्डी ने काव्य-ममय का प्रयोग नहीं किया किन्तु आचार्य भामह ने स्पष्ट रूप से दोष प्रकरण में देश, काल, कला, न्याय और धारम विरोधी तथा प्रतिज्ञा हेतु और दृष्टान्त में हीन वर्णन की दोषों में गणना की है। आचार्य दण्डी ने भी देश-काल-कला-लोक-न्यायगत विरोधी अर्थ को दोष रूप में मान्यता दी है। आचार्य वामन ने लोक-विरुद्ध और विद्या-विरुद्ध वाक्य और वाक्यांशों को शुद्ध कहा है। संक्षेप में पूर्ववर्ती आचार्य शास्त्र और लोक से रहित, बातों के उल्लेख को दोष मानते हैं। ऐसी दोषयुक्त वस्तु का उल्लेख वे उचित नहीं समझते थे। यायावरीय राजशेखर कहते हैं कि उनके द्वारा कवियों का उपकार होता है। यह काव्यमार्ग का प्रदर्शक है। अतः यह दोष वही है।

कवि-ममय या कवियों का आचार स्थूल रूप से तीन प्रकार का है—



भौम कवि-ममय १२ प्रकार का है जिसका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है।

असत् का वर्णन : जो पदार्थशास्त्र में या लोक में देखा या सुना न गया हो काव्य-रचना में उसका उल्लेख करना असत् का निवन्धन है। जाति, द्रव्य, क्रिया और गणानुसार यह चार प्रकार का है।

जातिगत : नदियों में कमल कुमुद आदि का वर्णन, सभी जलाशयों में हंस सारस आदि पक्षियों का वर्णन, सभी पर्वतों में सुवर्ण रत्न आदि की खानों का वर्णन जातिगत असत् वर्णन के अन्तर्गत आता है। कालिदास ने मेरूदूत में शिप्रा नदी के प्रवाह में हंस और कमल का वर्णन किया है। कवि-समय के अन्तर्गत ही यह माना जा सकता है अन्यथा नदी प्रवाह में हंस कमल आदि कैसे हो सकते हैं।

द्रव्यगत : अन्धेरे को भुष्टि से ग्रहण करने योग्य या सूची से भेदन करने योग्य कहकर वर्णन करना, चाँदनी का पड़ों में भरा जाना आदि द्रव्यगत असत् के वर्णन कवि-समय के अन्तर्गत आते हैं। राजशेखर ने विद्वज्जालभट्टिका में अन्धकार के सूचिभेद्य होने तथा चन्द्रिका के पड़े में भरने योग्य होने का वर्णन किया है।

रात्रि में चकवा-चकवी का अन्धकार के भिन्न-भिन्न तटों पर पृथक् रहना, चकोरो का चन्द्रिकापान करना वियागत असत् अर्थ के उदाहरण हैं।

गुणगत : यक्ष का स्वेत एवं अयश का कृष्ण होना, धनुराग की रक्तवर्णता और शोध की स्यामवर्णता गुणगत असत् के उदाहरण हैं।

सत् का अनुल्लेख : लौकिक जगत में विद्यमान, दृश्य वस्तुओं का कवि जगत् में उल्लेख न करना, सग का अनुल्लेख कहना है। यह भी जाति, द्रव्य, गुण और विया के भेदानुसार चार प्रकार का है—

जातिगत अनुल्लेख : (१) वसन्त में मालती का अनुल्लेख (२) चन्दन-वृक्ष का पुष्परहित होना, (३) अशोक के फलों का वर्णन न करना आदि।

द्रव्यगत अनुल्लेख : (१) कृष्णपक्ष में चाँदनी का वर्णन न करना, (२) शुक्लपक्ष को अन्धकार हीन बताना आदि।

वियागत अनुल्लेख : (१) दिन में वस्तुओं का विनाश न होना, (२) रात्रि में शैफालिका के फूलों का डाल से न गिरना आदि।

गुणगत अनुल्लेख : (१) मुन्दबलिता एवं नागिनियों के दाँवों का रक्तवर्ण, (२) वामन-नलिता का हरितवर्ण तथा (३) शिवगु पुणों का पीतवर्ण आता है।

उपर्युक्त वर्णनों से सत् के अनुल्लेख भी प्रतीति होती है।

नियम : राजशेखर ने कवि-समय का सीमास आधारे "नियम" बनाया है। नियम में तात्पर्य है—जिगी वस्तु का जिगी विशेष स्थान के प्रसंग में ही वर्णन करना। और उसके अन्ध्र दिग्गों पर भी उस विनिष्ट स्थान के प्रसंग

“कवि-रमय” का विवेचन भी इसी प्रमाण में वर्णित है । इस प्रकार कवियों के लिए उपकारक रमयन विषयो का विवेचन हम ‘कवि शिक्षा सम्प्रदाय’ में उपलब्ध है ।

काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदाय एवं राजशेखर

रस-सम्प्रदाय एवं राजशेखर : नाट्याचार्य भरत रस-सम्प्रदाय के प्रणेता माने जाते हैं । उन्होंने रस को नाटक का प्राण स्वीकार किया है । उनके अनुसार नाटक का प्रयोजन चार प्रकार के अभिनयों द्वारा प्रेक्षकों में रस उत्पन्न करना है । इस प्रकार भरत ने रस का विवेचन नाटक के सदर्भ में ही किया है, प्रमुख विवेच्य के रूप में नहीं ।

आचार्य अभिनव गुप्त भरत से पूर्णतया सहमत हैं । जिस प्रकार माना मूल में पिरोयी रहती है, उसी प्रकार नाट्यकृति रस में अनुविद्ध रहती है ।^१ इस प्रकार भरत और अभिनव गुप्त के रस-सिद्धांत प्रमुखतः नाट्यशास्त्र में और गौण रूप में काव्यशास्त्र से सम्बन्धित है ।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा के प्रथम अध्याय में भरत को रसक-निरूपणकर्ता तथा नन्दिकेश्वर को रस का आधाचार्य कहा है । नन्दिकेश्वर के नाम में यद्यपि कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, तथापि वात्स्यायन के काममूल से पता चलता है कि वे महादेव के अनुयायी थे, तथा उन्होंने एक हजार अध्यायो में वाचशास्त्र की रचना की थी । सम्भवतः इन्होंने प्रमुखतः शृंगार रस का ही प्रतिपादन किया होगा, जो आगे चलकर नाट्याचार्य भरत के द्वारा विशेष रूप में विवेचित हुआ ।

आचार्य अभिनव गुप्त ने नन्दिकेश्वर द्वारा वर्णित रोचित असकार पर एक पद्य उद्धृत किया है ।^२ शायद उन्हें भी नन्दिकेश्वर की कोई कृति उपलब्ध न हो सकी थी । भारद्वाज के भाव-प्रकाशन के तृतीय अध्याय में उल्लेख है कि नन्दिकेश्वर ने भरत को नाट्य की शिक्षा दी और उन्हें आदेश दिया कि वे अन्य भरतों का प्रशिक्षित करें । प्राध्यापक मनमोहन घोष ने अभिनव-दर्पण नामक ग्रन्थ का ३२४ पद्यों में सम्पादन किया । उन्होंने नन्दिकेश्वर को अभिनव दर्पण का रचयिता बताया है । इस ग्रन्थ में भरत के अनेक सिद्धान्तों का उल्लेख है । वही-कही भरत से मित्रता भी दिखाई देती है । अब उल्लेखों के आधार पर यह रचना भरत के पश्चात् प्रतीत होती है । इसी मन्दर्भ में भरतार्थ नामक

१ एक एवं तावत्परमार्थतोस्त मूलस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति-अभिनव भारती, भाग १ पृष्ठ २७३ ।

२. अभिनवभारती, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज—खण्ड १ पृ० १७१ ।

ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है । जिससे ज्ञात होता है कि सुमति नामक किसी विद्वान् ने नन्दिकेश्वर का साराङ्ग लेकर भरतार्णव ग्रन्थ की रचना की थी ।^१ समीत रत्नाकर में नाट्य से संबंधित अनेक देवताओं, मुनियों तथा विद्वानों का उल्लेख है । उनमें नन्दिकेश्वर का नाम भी है ।^२

वात्स्यायन, अभिनव गुप्त एवं प्रो० मनमोहन घोष के कथन तथा भरतार्णव एवं संगीत-रत्नाकर के साध्य से नन्दिकेश्वर का आचार्यत्व तथा उनका रमाविष्कर्ता होना निस्सन्देह सिद्ध होता है । राजशेखर भी नन्दिकेश्वर को प्रादि रमाचार्य मानते हैं । अतः नन्दिकेश्वर को रत्नाचार्य मानना समीचीन होगा । दुर्भाग्यवश यह नन्दिकेश्वर का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ, काल के गत में लीन हो गया ।

प्राचार्य राजशेखर की रस-सिद्धान्त विषयक मान्यतायें अधोलिखित हैं—

१ रस काव्य की आत्मा है ।

२ काव्य में सरस भर्ष का निबन्धन होना आवश्यक है, नीरसता नहीं ।

३ सरसता या नीरसता वस्तुनिष्ठ नहीं है, व्यक्तिनिष्ठ है ।

काव्यमीमांसा के बहि-रहस्य अधिकरण के तीसरे अध्याय में राजशेखर ने काव्यपुरुष के सजीव वर्णन के माध्यम से रस को काव्य की आत्मा मिद्ध किया है—‘जब्दायीं ते शरीर, सस्कृतं मुखं, प्राकृतं वाहू, ज्वनमपभ्रश पैशाच पादौ, उरौ मिथ्रम् । सम. प्रसन्नो भयुर भोवस्वीचामि । उक्तिचरण च ते बचो, रस आत्मा, रोषामि छन्दामि, प्रशोत्तप्यवद्विषया दिक् च वाक्केसि धनु-प्रासोपमादयश्च त्वामतकुर्वन्ति ।^३ भविष्यतोऽर्जस्वामिघातो धुनिरपि भवन्त-मधिस्तौति ।’ राजशेखर से पूर्व भी काव्य की आत्मा का निर्णय अनेक सन्प्रदायों द्वारा किया गया, किन्तु पूर्ववर्ती प्राचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा के रूप में मान्यता नहीं दी थी । प्राचार्य राजशेखर उन प्राचार्यों में से हैं जिन्होंने काव्य के प्राणविषयक के रूप में रस को अङ्गीकार किया ।

राजशेखर के चार शताब्दी पश्चात् कविराज विश्वनाथ ने “वाक्यं रसात्मकं काव्यम्” निघ्नकर राजशेखर के मन को ही पृष्ट किया । अलङ्कारमेखरकार को भी यह विचार मान्य था—‘अलङ्कारस्तु शोभाया रस आत्मात्र परे मनः’

१ काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० पी० वी० काणे—पृ० २, ३ ।

२ समीत रत्नाकर—१-१५, १९ ।

३ काव्यमीमांसा अ० ३ पृ० ६ ।

अग्निपुराणकार ने भी रस को ही काव्य का जीवन माना है—“वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।”

राजशेखर ने अर्थव्याप्ति नामक अध्याय में आचार्य आपराजिनि का उदाहरण देकर रस की महत्ता का पुनः प्रतिपादन किया है । वे कहते हैं—‘अस्तु नाम नि सीमार्थसाधं. किन्तु रसवत् एव निबन्धो युक्तो न नीरसस्य । अर्थं समूह भले ही असीम हो, किन्तु निबन्ध (काव्य) में सरस अर्थ का होना धर्मावश्यक है, नीरस का नहीं ।

भौतिक जीवन के पदार्थ स्वरूपतः रमणीय दिखाई देते हैं, किन्तु उनके वर्णन में रसानुकूलता अवश्य होनी चाहिये । रसानुकूलता का तात्पर्य रमानिशयोक्ति से नहीं है और न भ्रमभीचोचन रसाभिव्यक्ति से । सोल्ट ड्यू इस, प्रसंग में अपना विचार प्रगट करते हुए कहते हैं कि मञ्जन (जलक्रीडा) दुष्पावचय, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन सरस होने पर भी अधिक मात्रा में तथा प्रस्तुत प्रसंग एवं रस के विरुद्ध नहीं होना चाहिए । कविगण नदी, पर्वत, समुद्र, नगर, घोड़े, हाथी, रथ आदि के वर्णनों में जो प्रयास करते हैं, वह उनकी कवित्व शक्ति का द्योतक भाव है । सुधीजन उसे उचित नहीं समझते ।^१ आचार्य सोल्ट के इस कथन से राजशेखर ने—‘आम् इति यायावरीयः’ कहकर अपनी सहमति प्रगट की है । अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—“अस्ति चानुभूयमानो रसस्यानुगुणो-विगुणश्चार्थः । काव्येण कविवचनानि रमयन्ति विरसयन्ति च, नार्थाः । अन्वयव्यतिरेकाध्या च इदमुपलभ्यते ।” अनुभव द्वारा यह सिद्ध है कि कोई अर्थ रस के अनुकूल होता है और कोई उसके प्रतिकूल, किन्तु काव्य में अर्थ सरसता या नीरसता उत्पन्न नहीं करता, रसाविप्लवों तो वास्तव में उनका कवि होना है, उसके वचन होते हैं । उदाहरणार्थ^२ निम्नोक्त नदी वर्णन में रसवत्ता की गुन्दर अभिव्यक्ति हो रही है,—

एता विलोम तलोदरि ताम्रपर्णी-

मम्भोनिधी विवृत्तशुक्तिपुटोद्गतानि ।

गम्या पयानि परिणाहिषु हारमूर्त्या-

वामभ्रुवा परिणमन्ति पयोधरेषु ॥^३

१. काव्य मीमांसा-अ० ९ मञ्जनपुण्य वचयन-गन्ध्या-चन्द्रोदयादिवाग्यामिर नातिबहुतं प्रवृत्तरमानन्वित रचयेत् । यस्तु सारिदद्रिमागस्पृशतुरग रथ दिवर्णने यत्न. कविसानिध्यातिशयो गुधिया नौ भवः स इह ॥

२. काव्यमीमांसा-अध्याय ९ पृ० ४५ ३ काव्यमीमांसा-अध्याय ९ पृ० ४५

हे छगोशरि ! तमस्र मे मिलनी हुई इस गात्रपणी नदी को देना । मोपियों के सम्पुट मे निकाले गये त्रिके जल-कण, मुन्दरियों के विशाल स्तन-नटों पर मोतियों के द्वार के रूप मे सोमा पाने है ।

यही वधि ने अपनी प्रतिमा द्वारा मुन्दरियों के पयोवर्गे पर सुशोभित जल-विन्दुओं को द्वार के रूप मे परिणत कर उद्दीपन विमल प्रदर्शित किया है ।

राजशेखर ने ग्यानुभूति के इस प्रसंग द्वारा भारतीय रम-धाम्म के जिस महत्वपूर्ण तत्व का आधिकार्य किया है वह है प्रकृति के रमणीय दृश्यों के वर्णन मे मानव-भावना के सम्पर्क द्वारा रसात्पत्ति । वस्तु का मीनदृश्य नभी निरर सकता है, जब आनन्द-मोदयों ने उसका मार्जन किया जाय ।

राजशेखर ने रम की व्यक्तित्वप्रेक्षणा का भी विशुद्ध विवेचन किया है और इस प्रसंग मे उन्होंने जैन आचार्य पाण्डरीति एवं अन्निसुन्दरी के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं ।

आचार्य पाण्डरीति का मत है कि "यथा तथा वस्तु वस्तुनोपपत्तु वस्तुप्रकृति विवेकायका तु रमयता । तथा च समर्थं रक्तं स्मृतिं न विरक्तो विदिन्दति मध्यस्थम् तु तथोदात्तम् ।" ^१ वस्तु का रूप चाहे बेधा भी हो, सुगमता तो वधि की प्रकृति के साधारण पर ही होती है । यदि वधि का मन मरम है तो नीरम वस्तु भी मरम हो जाती है और यदि उसका मन ही नीरम हो तो तत्त्व वस्तु भी नीरम पनीत होती है । प्रचुररक्त व्यक्ति जिस वस्तु की स्तुति करता है विरक्त व्यक्ति उसी की निन्दा करता है और मध्यस्थ व्यक्ति उस सम्बन्ध मे उदासीन रहता है ।

मीन प्रकृतियों के तीन व्यक्ति वस्तु के प्रति अपना भाव प्रकट करते हैं । जिसे प्रियता का आशिष्य प्राप्त है, उसे चन्द्रमा शीतल प्रीति होता है, । विरही मनुष्य को वही चन्द्रमा प्रणय की भीति दाहक लगता है, मधोष-विमोष की भावना मे निरपेक्ष व्यक्ति के लिए चन्द्रमा न मुखर है न दुःखर न उल्लस है न शीत । उसके लिए, वह मीन के समान मोहित हो रहा है ।

‘येषा वज्रप्रया समक्षणीयव स्थागक्षया क्षीयते

तेषा भीनतर शशी विगिह्णामुन्नेव सन्नापकृन् ।

शम्भाक न तु वरुषा न विरहान्नेमोमल भ्रजिता—

मिन्दु रात्रिर्न दर्पणाकृतिरय मोषा न वा भीतन ॥२

इन्होंने रम का अन्तर्भाव रमवत् अलंकारों में किया । भामह का कथन है—
 'न कान्तमपि निर्भूषविभाति वनितामुखम्'^१ रमणी का सुन्दर मुख भी आभूषण
 रहित होने पर शोभित नहीं होता वैसे ही अलंकार-विहीन काव्य रविकर
 नहीं माना जा सकता । यह वक्रोक्ति है, जो काव्यों में प्राणों का संचार करती
 है ।^२

राजशेखर के समय तक अलंकार सम्प्रदाय का पूर्ण विकास हो चुका था ।
 राजशेखर उसके महत्त्व में पूर्ण परिचित थे । यहाँ सम्प्रदाय के विषय में उनकी
 मान्यताओं का निर्देश किया जा रहा है ।

(१) 'उपकारवत्त्वादलंकार मन्मदगम् इति यायावरीय ।'^३
 अलंकार शास्त्र वेदों के छः अंगों के समान उनका मानवी अंग है ।

(२) अनुप्रासिक प्रवेत्ता, यमो यमकानि, चित्र चित्रागद, शब्दश्लेष
 शेष वास्तव पुलस्त्य, औपध्यमौपकायन, प्रतिशय पाराशर,
 अर्थश्लेषमुत्तम्य ।^४

अनुप्रास, यमक, चित्र शब्दश्लेष, वास्तव, औपम्य, प्रतिशय तथा अर्थश्लेष अमर
 प्रवेत्ता, यम, चित्रागद शेष पुलस्त्य, औपकायन, पाराशर तथा उत्तम्य द्वारा
 प्रणिपादित किये गये हैं ।

(३) अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलवुर्वन्ति ।^५

काव्य को अनुप्रास उपमा आदि अलंकार अलङ्कृत करते हैं ।

(४) काव्य-कवि की आठ श्रेणियाँ हैं । अलंकार-कवि उनमें से एक
 है । अलंकार के शब्द और अर्थ-भेद में द्विविध होने के कारण अलंकार-कवि
 भी दो प्रकार के होते हैं ।

(५) गृणदलङ्कृतश्च वाक्यमेव काव्यम्^६ —गुण और अलंकारों में युक्त
 वाक्य ही काव्य कहलाता है ।

वेद के शिक्षा, वन्य, निम्बक, छन्द और उग्रीनिष में छ अंग हैं । राजशेखर
 ने अलंकार को सातवाँ वेदांग कहा है और काव्य में ही नहीं अपितु शास्त्र में भी
 इसकी अनिवार्यता मिथ की है । पूर्ववर्ती आचार्य भामह दण्डी, उद्भट और
 रघुदत्त अलंकारों को महत्त्व देते हैं । उनके महत्त्व का क्षेत्र काव्य तक ही सीमित है ।

१ काव्यमीमामा प्र० १ पृ० ६६ मेधा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयायौ विभाव्यते-
 यन्मोक्ष्या कविना वारं कोऽलंकारोऽनया क्तिना २८२ । २ काव्यमीमामा
 प्र० २ पृ० २ । ३ काव्यमीमामा प्र० १ पृ० १ । ४ काव्यमीमामा प्र० २
 पृ० २ । ५ काव्यमीमामा प्र० ६ पृ० २४ । ६ (उपमा रूपक चैव दीपक
 यमक तथा काव्यम्येनेहलङ्काराण्यन्तवारं पवित्रीतिना —नाट्यशास्त्र १६ ४३ ।

राजशेखर की दृष्टि काव्य पर ही आकर नहीं रही। वे सम्पूर्ण वाङ्मय में अलंकार की प्रशंसा को स्वीकार करते हैं। अलंकार क्षेत्र में उनकी यह मौलिक स्थापना है। नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन चार अलंकारों का ही वर्णन है ।

आचार्य भरत द्वारा निर्दिष्ट चार अलंकारों में प्रथम तीन उपमा, रूपक और दीपक अर्थालंकार की श्रेणी में आ सकते हैं। यमक मन्दालंकार है। भरत ने अलंकारों का शब्दालंकार और अर्थालंकार यह वर्गीकरण नहीं किया।

आचार्य भामह ने अष्टौत्तम अलंकारों का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने भी शब्द-मूलक एवं अर्थ-मूलक अलंकारों का विभाजन नहीं किया। वामन के दम्ब में दो शब्दालंकारों तथा इकतीस अर्थालंकारों का स्पष्ट रूप में उल्लेख मिलता है। दो इन्होंने अलंकारों को शब्द और अर्थ के भेद के अनुसार वर्गीकृत किया।^१ परचातुर्वर्ती भामकारिकों ने इनमें दो को स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है।

भट्ट, उद्भट ने अलंकारों की संख्या ४१ बतायी है। इन्होंने पुनरुक्त-वदाभास, काव्यमिह्र, छेकानुप्रास, दृष्टान और सङ्कट इन पाँच नवीन अलंकारों की स्थापना की। ये पाँचो अलंकार, भामह और वृष्ठी के दम्बों में नहीं पाये जाते हैं।

अलंकार क्षेत्र में रट्ट का नाम महत्वपूर्ण है। पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा से हटकर इन्होंने वैज्ञानिक आधार पर अलंकारों का विभाजन करने का प्रयास किया है। इनके अलंकार के चार विभाजन-आधार हैं—वाच्य, श्रोत्र्य, प्रतिशय और श्लेष, जिनकी मध्या क्रमशः २३, २१, १२ और १० है। इन्होंने कतिपय अलंकारों को नवीन नाम दिया है। जैसे भामह वर्णित व्याज-स्तुति को व्याज श्लेष स्वभावोक्ति की जाति, श्रोत्र उदात्त को अवगम। रट्ट ने वदितय नवीन अलंकारों का भी निर्देश किया—वे हैं (१) गम, (२) साम्य, (३) निहित और (४) भाव।

कवि रहस्य नामक अधिवरण के प्रथम अध्याय में राजशेखर ने कुछ अलंकारों तथा उनके प्रतिपादनवृत्तियों के नाम दिये हैं। इस विषय में वे रट्ट से अव्याधि प्रभावित हैं। उन्होंने रट्ट के वही नाम उहाँ के त्यों से दिये हैं—जैसे वाच्य, श्रोत्र्य, प्रतिशय और अर्थश्लेष को राजशेखर ने भी वही नाम दिया है।

१. वत मन्दालंकारौ—४-१-०; ४-१-१-वाचन वाच्यारहागूर मन्त्र्यार्थालंकारा प्रसार ४-२-२। २. वती।

भरत में लेकर राजशेखर तक अलंकारों का विवेचन करने वाले आचार्यों में राजशेखर ही प्रथम हैं जिन्होंने अलंकारों के साथ उनके प्रतिपाद्यकर्ताओं का भी नामोन्नेय किया है।

रुद्रट ने वक्रोक्ति की गणना अलंकारों में की है। राजशेखर वक्रोक्ति को अलंकार मानने के पक्ष में नहीं है। उन्होंने उसे पाठ-धर्म के रूप में स्वीकार किया है।

अलंकार के मध्य के विषय में राजशेखर और उनके पूर्वजों आचार्यों का मत समान है। भामह, इण्डी, वामन आदि के साथ राजशेखर भी अलंकारों को काव्य का सङ्ग मानते हैं। काव्य-पुरष के चित्रण में उन्होंने अनुश्रवण, उपमा आदि को उनके अलंकरणों के स्थान पर ही रखा है।

भास्व मग्नह नामक अध्याय में उन्होंने श्लेष अलंकार के ही अर्थ-श्लेष और शब्द-श्लेष में दो भेद माने हैं किन्तु अलंकार कवि की परिभाषा देते समय उन्होंने शब्दालंकारिता और अर्थालंकारिता के विभाजन का समर्थन दिया है।

काव्य के दो अतिवाच्य तत्वों में एक तत्व अलंकार है, ऐसी उनकी मान्यता है।

राजशेखर एवं रीति-सम्प्रदाय

राजशेखर में काव्यमीमांसा में मुकुर्णनाम को रीति-निर्णय का जनक माना है। काव्यमीमांसा का रीति-निर्णय अधिकरण अनुपलब्ध है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि इस अधिकरण की रचना राजशेखर ने की थी। उनका यह कथन कि "रीतयस्तु नित्यस्तास्तु पुरस्तात् तथा वृत्तिरीतिस्वरूप यथावसर वदाम।" इस तथ्य को युष्टि करता है।

काव्यमीमांसा में तीन रीतियों का उल्लेख मिलता है। वे हैं—वैदर्भी, गौडीया और पाञ्चाली। रीति-रूप वाक्य भी तीन प्रकार के होते हैं।^१ वामन ने भी रीतियों की सङ्ख्या तीन ही बनायी है—वैदर्भी, गौडीया, और पाञ्चाली।^२ राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में जिन रीतियों का नामोन्नेय किया है, वे हैं—वैदर्भी, मागधी और पाञ्चाली। राजशेखर के पश्चात् भोज ने मागधी का नामोन्नेय शब्द रीति में दिया है।

१. काव्यमीमांसा अ० ७ पृ० ३१—तच्च त्रिधा रीतिरयमेवेन वैदर्भी गौडीया पाञ्चालीचरिणीपरिनिगम्य।

२. राव्यानाम् मूल-वाक्य १२९—भावेन वैदर्भी गौडीया पाञ्चालीचरिणी

बानरामायण में राजशेखर ने मैथिली रीति का भी उल्लेख किया है। इसकी विशेषता है, अर्थातिशयता (अर्थ चमत्कार) के साथ स्वाभाविकता एवं पूरे प्रबन्ध में सन्दर्भ तथा समास का अल्प प्रयोग और योग परम्परा के अनु रूप उक्ति ।

यत्तार्थतिशयोऽपि सूतितज्जन्मर्यादया मोदने
मन्दार्थैश्च समासमगनवदप्रस्तारविस्तारित ।
उक्तिर्योगपरम्परापरिचिता काव्येषु चक्षुष्मता
सा रम्या नवचम्पकाविभवतु त्वल्लेखयो धीनये ।^१

राजशेखर द्वारा मैथिली रीति को उद्भावना सर्वथा नवीन है। राजशेखर के पश्चात् श्री पाद नामक लेखक ने इसका वर्णन किया है, यद्यपि उसने इसे मागधी का पर्याय माना है। केशव मिश्र ने, अलङ्कार-शेखर में धीपाद के मत का उल्लेख किया है, वहाँ मैथिली रीति बँदर्यों रीति के समान ग्रन्थ-समासवाली कही गयी है। इस प्रकार राजशेखर ने रीति के बँदर्यों, पाठ्याली, गौड़ीया, मागधी, तथा मैथिली में भेद माने हैं।

रीति का उद्भव : कहा जा चुका है कि काव्य-मुख्य की खोज में उनको प्रियतमा साहित्य-विद्या-मधु धारा दिशाओं में जाती है। वह उमें सावर्धिन करने के लिए किशोर स्थानों में विशिष्ट वेषभूषा धारण कर लेती है, अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन शैली के वचन-विन्यास का भी आश्रय लेती है तथा मनोरंजन के लिये विविध वित्तासों का प्रदर्शन करती है। इस प्रकार साहित्य-मगार में प्रवृत्ति, रीति और वृत्ति का उद्भव होता है।

पूर्ववर्ती आचार्य भामह, वण्डी, रद्रट, वासन तथा आनन्दवर्धन ने रीतिरस को मान्यता दी है, किन्तु रीति का उद्भव किन प्रकार होता है इसकी चर्चा किसी ने भी नहीं की है। आचार्य भरत ने केवल, प्रवृत्ति तथा वृत्त का वर्णन किया है।^२ इनके मतानुसार पृथ्वी पर के नाना देशों के वेश, भाषा तथा भाषार की व्याख्या का स्थापना करने वाली प्रवृत्ति होती है।

रीति के साथ प्रवृत्ति तथा वृत्ति के सामञ्जस्य के लिए राजशेखर भरत के ही श्रेणी हैं। उन्होंने 'वचनविन्यासप्रम रीति' अर्थात् वचन के विन्यास की शैली को रीति कहा है। यह परिभाषा पूर्ववर्ती आचार्य वासन की परिभाषा

१ बानरामायण—१०।१५ ।

२ नाट्यशास्त्र—पृथिव्या जगतादेश-वेषभाषाभाषारवार्ता, व्यासपीठिन प्रवृत्ति.

'पदरचना रीति' से निश्चय नहीं है। केवल शब्दों का अन्तर है। वचन का अर्थ है—शब्द या पद और विन्यास का अर्थ है रचना। काव्यपुरुष के रूप में रीति का प्रमाण होने के कारण राजशेखर ने वाणी से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने पद के स्थान पर वचन और रचना की जगह विन्यास त्रय-शब्द रख दिये हैं।

आचार्य वामन के पूर्ववर्ती जामह और इन्द्रो ने भी रीति की चर्चा की है, परन्तु दोनों में से किसी ने भी रीति की परिभाषा नहीं दी। वामन ने काव्यान्वय-मूल में विशिष्ट पद-रचना की रीति कहा है।^१ विशिष्ट पद ने उत्तरा तात्पर्य गुणामयप्रता है। काव्यशोभाकारक धर्म को वे गूण कहते हैं। इस प्रकार के काव्य के शोभाकारक शब्द और धर्म के धर्मों से युक्त पदरचना को रीति मानते हैं।

आनन्दबर्धन ने पद-सघटना को रीति नाम दिया है। पद सघटना वाक्य में पदों की विन्यास या क्रम को कहते हैं। वामन का पद-रचना और आनन्दबर्धन का सघटना शब्द दोनों पर्याय हैं। हाँ, दोनों के मान-दृष्टि भिन्न हैं। आनन्दबर्धन के अनुसार रीति रमाशयी है। वामन के समक्ष कोई स्वतन्त्र मानदण्ड न था। धर्मगत और शब्दगत सौन्दर्य की ही उन्होंने महत्वपूर्ण समझा।

रीति की परिभाषा में आपार्ष कुल्लुक ने एक श्रान्ति उपस्थित की। कवि के मानस पक्ष को महत्व देने हुए उन्होंने रीति को कविप्रस्थान हेतु कहा है। भोज के मतानुसार रीतिशब्द वरपर्यंकरीष्ट धातु से व्युत्पन्न हुआ है।^२ कुल्लुक ने जिस कविकथन मार्ग को कविप्रस्थानहेतु कहा है, वही भोज के शब्दों में रीति है।

पूर्वाचार्यों द्वारा वर्णित तीन रीतियों के लिए भग्मट ने वृत्ति शब्द का प्रयोग किया है 'वृत्तिनिधनवर्णनां रस-विषयो वाक्य व्यापार' अर्थात् रीति वर्ण-मुद्राङ्कन का नाम है। उस में वर्ण नियत होने हैं और वे रस के सहायक होने हैं।

विश्वनाथ ने भग्मट के वर्ण-व्यापार के साथ-साथ पद-सघटना को महत्व दिया। पदों की सघटना का नाम रीति है जो अगमस्थान की भाँति है।

रीति का सूत्र-तत्त्व : रीति के विषय में राजशेखर ने नवीन तत्वों की उद्भावना की है। उन्होंने समास के साथ-साथ अनुश्रवण को रीति का सूत्र-तत्त्व माना।

१. वामन—वाय्याख्यारण्य—१२७ विशिष्ट पदरचनारीति (२) विशेष-गुणात्मा । १२८ ।

२. रङ्गतरङ्गिणी धातो मा व्युत्पत्त्या रीतिरुच्यते ।

३. पदसघटनरीतिरससंस्था-विशेषधन-उपवर्ती रमाटीनाम् ।

है। इसके अनिरिक्त उन्होंने तीनों रीतियों के नये आधार-तत्व की भी खोज की है। यथा गौडीया ममागवती, अनुशामवती, योगवृत्तिपरम्परागर्भा पाञ्चाती दीपदममासा, दीपदनुप्रामा, उपचारगर्भा। वेदभी-स्थानानुशामवती-असमासा योगवृत्तिर्गर्भा—उनके मतानुसार गौडीया रीति में योगवृत्तिपरम्परा तथा समाश और अनुशाम का प्रचुर रूप में होना पाया जाता है। पाञ्चाती में उपचार-गर्भता तथा समाश और अनुशाम की अन्वता होती है। वेदभी में योगवृत्ति का मद्भाव, समाश का अभाव और स्थानानुप्राण होता है।

भोज में राजशेखर का अनुसरण किया है। उन्होंने रीति के मूलतत्वों में समाश और गुण दोनों की गणना करते हुए राजशेखर के योगवृत्ति नामक आधारभेद को और व्यापक कर दिया है। पूर्ववर्ती आचार्यों में इच्छी ने गुणों की रीति का मूलतत्व माना है। वामन भी इसी मत के समर्थक है।

वामन के पाञ्चान् दृष्ट ने समाश की रीति का मूलतत्व माना। उन्होंने पाञ्चाती को सधुसमासा, जाटीया को मध्यममासा, गौडीया को दीर्घममासा तथा वेदभी को अममामा कहकर रीति के मूल में समाश की स्वीकार किया है। आनन्दवर्धन ने प्रसाद, माधुर्य और शोच गुणों की रीति के आन्तरिक तत्व और समाश को बाह्य तत्व माना है।

ध्वनि-सम्प्रदाय तथा राजशेखर

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में ध्वनि-सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया, तथापि उसके सिद्धांतों की यथास्थान उद्धृत किया है। उनके समय तक ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना हो चुकी थी।

काव्यमीमांसा के प्रथम अध्याय में श्रौतिक प्रकरण का उल्लेख है। संभवतः राजशेखर इस प्रकरण में ध्वनि-सम्प्रदाय सम्बन्धी अपना मूल्य प्रकट करना चाहते थे। उनकी सम्मति में श्रौतिक प्रकरण के आचार्य उक्ति-गर्भ थे।

राजशेखर ने बहिरहस्य प्रकरण के पाँचवें अध्याय में प्रतिभा और व्युत्पत्ति के विषय में आनन्दवर्धन के विचार लिये हैं। “प्रतिभाव्युत्पत्तयो प्रतिभा श्रेयसी इत्यानन्द।” अर्थहरण प्रकरण में —“महात्मना हि सर्वादिन्यो बुद्धय एकमेवार्थमुपस्थापयन्ति, तन्परित्याग्य तानादियेत इति च केचित्।” अर्थात् मूढमदशी महात्माओं की बुद्धि समान प्रकार की होती है। अतः उन्हें समान रूप में ही अर्थ-विशेष की प्रतीति होती है। अर्थात् एव ही प्रकार के भाव

प्राचुर्य है। अतः इस भणिति को कमीटी मानकर ही वे इस रचना का मूल्यांकन करें।

राजशेखर का वक्रोक्ति श्रेष्ठ आचार्य कुतक की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है। उन्होंने वक्रोक्ति का साम्राज्य विस्तार, लोभ, काव्य और शास्त्र दोनों में माना है, जबकि आचार्य कुतक वक्रोक्ति को काव्य तक ही सीमित रख पावे है।

साहित्य-शास्त्र को राजशेखर की देन

सम्भूत साहित्य-शास्त्र के विवादा के कई स्रोत हैं। समय-समय पर इस शास्त्र को विभिन्न नाम दिये गये। आरम्भ में काव्य-सौंदर्य की पराख करने वाले इस शास्त्र को काव्य-शास्त्र कहा गया। भामह, रुद्रट, उद्भट, वामन आदि के कथन इसके साक्षी हैं। दूसरे धरण में काव्य-शास्त्र का नाम पञ्च भनकार-शास्त्र। भनकारों का प्राधान्य इस भामकरण के मूल में था। तीसरी प्रवस्था में यह शास्त्र काव्यशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसी युग के पूर्ववर्ती आचार्यों में भामह, वामन, रुद्रट आदि ने काव्य को सम्प्रार्थय स्वीकार किया था। किन्तु किसी ने साहित्य शब्द का प्रयोग अपने ग्रन्थों में नहीं किया। वर्तमान अर्थ में साहित्य शब्द का प्रथम प्रयोग काव्यमीमांसा में मिलता है।

प्राचीन आचार्यों ने चार विद्याएँ मुख्य बताई हैं—मानवीशिकी, छमी, वाता तथा दण्डनीति। राजशेखर की स्थापना है कि इन चारों विद्याओं का निष्पन्ध-सार होने के कारण साहित्य पञ्चमी-विद्या है। “पञ्चमी साहित्य विद्या। साहित्यसुखमपि विद्याना निष्पन्द।” शब्दार्थयोपेधावत्, सहभावेन विद्या साहित्यविद्या। साहित्यविद्या मे शब्द और अर्थ का यथार्थ रूप में समन्वय होता है।

काव्यपुरुष की उत्पत्ति के विषय में रोचक आख्याय प्रस्तुत करते हुए उन्होंने काव्य और साहित्य विद्या का मजबूत सामञ्जस्य व्यक्त किया है। परवर्ती साहित्यकारों ने आचार्य की इस स्थापना को पैतृक निधि के रूप में ग्रहण किया। उनकी मौलिकता का दूसरा उदाहरण है, साहित्य-शास्त्र के उद्गम की गवेषणा। उन्होंने बतलाया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने उस काव्य-विद्या का उपदेश परमेश्वर वैकुण्ठादि चौंसठ शिष्यों को दिया था। उनमें से प्रथम शिष्य स्वयम्भू-ब्रह्मदेव ने इस विद्या का दूसरी बार उपदेश अयोनिज ऋषि को दिया। इन शिष्यों में सारस्वती का पुत्र ‘वाव्य-पुरण’ भी था। ब्रह्मदेव ने उसे शूशुब-योर स्व तीनों

लोकों में रहने वाली प्रजा को काव्य-विद्योपदेश देने का आदेश दिया । काव्यपुरुष ने इसका सर्वप्रथम उपदेश महस्त्राद्यादि दिव्य काव्य-विद्या-स्नातकों को किया । प्रत्येक शिष्य ने अठारह भागों में से एक एक विषय पर विशेषता प्राप्त करके पृथक् पृथक् ग्रन्थों की रचना की । यह आध्यात्मिका पौराणिक शैली की जान पड़ती है । परन्तु इस प्रकार का उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता है ।

काव्यपुरुष का अवतरण

ऋग्वेद में वेद-पुरुष का वर्णन मिलता है । वेद प्रणीतवेद्य माने गये हैं । अतः वेद-पुरुष भी दिव्य है । साहित्यशास्त्र में काव्य का मक्षण निर्धारित करते हुए आचार्य ण्डी ने शब्द और अर्थ दोनों के मयोग को ही काव्य का शरीर माना है । आचार्य भामह के 'महाशबी' में विदिन होता है कि वे शब्द को काव्यशरीर मानते हैं । आचार्य धामन ने शरीर की ओर दुर्लक्ष्य करके काव्य के आत्मतत्त्व की खोज की । आचार्य आनन्दबर्धन ने इस दिशा में धामन के पद का अनुसरण किया । अन्तर इतना ही है धामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहा, आनन्द ने ध्वनि को काव्य का जीवनविधावरु तत्त्व माना । इस प्रकार आचार्य भामह में आनन्दबर्धन तक काव्य-शास्त्र में काव्य के शरीर तथा आत्मा-तत्त्व की स्थापना हो चुकी थी । साहित्य क्षेत्र में काव्यपुरुष की कल्पना को स्पष्ट और मूर्त रूप प्रदान करने का श्रेय राजशेखर को ही है । उनसे हमें काव्यपुरुष का सत्यार्थ शरीर है, सङ्कृत मुख, प्राकृत वाटु, अपञ्चन अपा, पैशाच पैर तथा मिथ भाषा उमका उर है । उमका स्वमाद मम प्रसन्न, मधुर, उदार तथा श्रोत्र प्रादि-गुणों से युक्त है । उक्ति वैशिष्ट्य उमके रोम है । उसकी वाक्वीर्या म प्रशोत्तर एव प्रसङ्गलक्षणादि है । अनुश्रामादि उमने धनवार है तथा रक्त उसकी आत्मा है । काव्यगुण का ऐसा चित्र साहित्य के क्षेत्र में सर्वे-प्रथम राजशेखर ने ही उपस्थित किया । यह उनकी मौलिकता का प्रमाण है ।

रीति-वृत्ति प्रवृत्ति का सामञ्जस्य

आचार्य भरत ने रीति और प्रवृत्ति का माध्य को दृष्टि से विवेचन किया है । भामह, धामन, ण्डी, आनन्दबर्धन, श्रुत आदि ने अपनी अपनी दृष्टि में रीति का विवेचन साहित्यशास्त्र के मन्दर्भ में किया है । परन्तु राजशेखर ही वे प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने प्रवृत्ति का साधन्य किया ।

भोज ने गरुडनीचन्द्रप्रवरण में रीति की चर्चा की है । धामन और आनन्दबर्धन ने रीति का तत्त्व निरूपित किया है किन्तु रीति के उद्गम का

विस्तृत विवेचन केवल साधारणीय ने ही किया है। वाङ्मय्य को प्रसारित करने के लिये साहित्यविद्या-सङ्घ ने क्रमबद्ध, वेग धीरे विभाग वा साध्य किया है वचन, वेग धीरे विभाग क्रमन गीति, प्रवृत्ति धीरे वृत्ति नाम में साहित्य जगत में प्रसिद्ध हुए। साधारणीय की यह उद्भावना राजशेखर के इतिहास में सर्वथा नवीन है।

राजशेखर की रीति-मन्त्रालयों एक धीरे साम्यता है। भस्म, भास्य, याग धीरे दण्डों के मन्त्रों में स्पष्ट है कि धारण में प्रवृत्तियों वा रीतियों वा वर्गीकरण प्रदेशानुसार ही हुआ था। इस प्रादेशिक विभाजन में राजशेखर भी पूर्ण सहमत थे। इन्होंने प्रदेशों की सीमा-रेखा धीरे भी स्पष्ट कर दी है।

गोही रीति वा क्षेत्र, भद्र, बह्म, मुद्रा, वस्त्र, पुण्य आदि देशों तथा विस्तृत है। पाञ्चपान, शुरुमेन, रम्पिनापुत्र, वासमीर, वाहीर, वाहीर, वाह्वेय आदि जनपद पाञ्चपानी के भीक्षुभेज है। मन्त्र, कुन्तल वेग्य, वाक्त्र, मन्त्रर, महाराष्ट्र, भंगा, रीति आदि जनपद बँदरों के शरीरभेज है।

रीति विभाग में समाप्त के साथ अनुशासन तथा योग्यवृत्ति, उपचार-योग्यवृत्ति परम्परा की रीति वा आधार मानना उनकी निजी रचना है।

पञ्चदश काव्यं विद्यास्थानम्।

उपकारकत्वाद मन्त्रात् सप्तमङ्गम्।

साहित्य क्षेत्र में वाङ्मय की पञ्चदश विद्या का स्थान, अवतार की सप्तम, वेदाङ्ग का तथा साहित्य की पञ्चमी विद्या का स्थान देने का प्रथमतीय कार्य राजशेखर द्वारा ही प्रथमतः किया गया है। वाङ्मय की मटवीयता में साथ सभी भाषाएँ सहमत हैं किन्तु केवल राजशेखर ने ही 'पञ्चदश' काव्यम् विद्यास्थानम्' कहा है।

अलंकारों की भास्य, वासन, दण्डी, मृदु आदि ने वाङ्मय को शोभाप्रदान करने वाले तत्त्व माना है। राजशेखर भी मन्त्रकारों को वाङ्मय के शोभाकारण धर्म मानने हैं। अलंकार-शास्त्र का उद्गम उगवा नामकरण तथा उम शास्त्र का समुचित स्थान निर्धारित करने का कार्य राजशेखर ने किया। वास्तव में किसी भाषाओं ने इस प्रश्न को हल करने का प्रयत्न नहीं किया। 'अलंकारः सप्तमङ्गम्' इस स्थापना में अलंकार का अर्थ अलंकार शास्त्र है। जिसके बिना वेदार्थ भी विनष्ट हो जाना है। अलंकार शास्त्रों का भी उपकारी होने के कारण उन्होंने अलंकार-शास्त्र को पञ्चवेदाओं के पश्चान् भातवे वेदाङ्ग का स्थान दिया।

जलंकार क्षेत्र में मौलिकता

अनवार क्षेत्र में उक्त नवीनताओं के अनिवार्य वनिष्य मौलिकताएँ भी आचार्य राजशेखर ने दी हैं—जैसे

यकोक्ति आद्याचार्य भामह ने बनोक्ति अनवार को अलंकारों का जीवन विधायक माना है । वे ऐसे अनवारों की वन्दना ही नहीं कर सकते जो वक्रोक्ति में रहित हों । आचार्य दण्डी ने भी समस्त वाङ्मय को दो भागों में बांटा है—स्वभावादिन तथा वक्रोक्ति । उनके अनुसार अतिशय वचन वक्रोक्ति का मूल है । उनमें श्लेष की विशेषता उगे और भी निर्धार देती है । भामह की वक्रोक्ति का क्षेत्र व्यापक है । दण्डी ने उगे वामद की तुलना में सङ्कुचित सिन्धु विशिष्ट ध्यान दिया है । आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को अर्ध-लक्षण कहा है । उनके मन में वक्रोक्ति सादृश्य के उपर शायित होने वाली लक्षणा है । लक्षणा के अनेक आधार हो सकते हैं । परन्तु सादृश्य के आधार पर होने वाली लक्षणा वक्रोक्ति कहो जा सकती है । आचार्य रट्ट के समय में यह शब्दालंकार बन गई । रट्ट कहते हैं—
'वाक्यवक्रोक्तिर्नामशब्दालंकारो यम्'
वक्रोक्ति शब्दालंकार है, जिसे वाक्य कहते हैं—

'अभिप्रायवाक्यालंघनं वाक्यं य वक्ष्यमन्तरा म्यात् ।

राजशेखर के इस वाक्य में वक्रोक्ति सम्प्रदाय का बीज निहित है । वे कहते हैं—
गाभिप्राय पठन अर्थान् पठने वा या वाचने वा प्रसार वाक्य है । यह अलंकार कैसे हो सकता है ? आचार्य कुल्लर वक्रोक्ति सम्प्रदाय के जनक माने जाते हैं उन्होंने वक्रोक्ति को 'द्वैतगी-भरी' अर्थात् अर्थान् कहने का लौकिक प्रकार में भिन्न हो कहा है । नि मदेर नयमय तत्र प्रताप्यी पञ्चान वक्रोक्ति को वाक्य का मूलतत्त्व मानने वाले आचार्य कुल्लर ने राजशेखर ने इसी वचनों का दोहराया है किसी नवीन विचार की उद्भावना नहीं की । साहित्यशास्त्र में वक्रोक्ति सम्प्रदाय की नींव डालने का महत्व कार्य राजशेखर ने ही किया था ।

श्लेष-यमक - परन्तु भामह दण्डी वामन आदि सभी आचार्यों ने यमक अलंकार का निर्माण किया है । रट्ट ने ५८ वक्रोक्तियों में यमक का विस्तृत विवेचन किया है । उन्होंने श्लेष ने भी छोट प्रकाश बताया है सिन्धु उनके पूर्वजों या पञ्चवीं किसी साहित्यकार ने इसकी दृष्टि में श्लेष तथा यमक अलंकारों का वर्णन नहीं किया । राजशेखर ने रट्टद्वारा प्रकरण में श्लेषयुक्त पूरे तब यह का उपर अर्थान् द्वारा हस्त तथा यमकालंकार का यमक द्वारा

हरण एवं श्लेष का श्लेष द्वारा ही हरण करने का उदाहरण देकर श्लेषकारों को दिशा में नवीनता का सूजन किया है ।

शास्त्र-विभाजन - शास्त्र और वाचस्पत्य दोनों श्रेणियों के ही विद्वानों ने साहित्य को कई भागों में बांटने की चेष्टा की है । आचार्य दांडी ने शास्त्र को स्वभावोक्ति और वस्तोक्ति में विभक्त किया है । किन्तु उनका दृष्टिकोण सीमित है । भारत में इस प्रकार का प्रयत्न सबसे पहले राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमांसा में किया है । साहित्य को उन्होंने दो भागों में विभक्त किया है—

‘शास्त्रं काव्यं चेति वाचस्पत्य द्विधा’

शास्त्रम् या साहित्यं शास्त्रं और काव्यं भेद में दो प्रकार का होता है । साहित्य का यह विभाजन अग्रेज विद्वान् इतिवल्मी से मिलता है जिन्होंने साहित्य को ज्ञान और शक्ति के रूप में विभक्त किया है ।

राजशेखर ने केवल शास्त्र और काव्य का ही उल्लेख नहीं किया । उन्होंने समस्त शास्त्रों का सन्निपत्त बिन्दु स्पष्ट रूप में वर्णन किया है, जो इतर साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता ।

काव्यश्रोतों में मौलिकता - पूर्ववर्ती आचार्यों ने काव्यबन्धु के श्रोतों का वर्णन किया है । राजशेखर भरत, भामह, रुद्रट आदि द्वारा वर्णित काव्यार्थों में पूर्णतया महमत है, किन्तु इन बारह काव्यार्थों के अनिरिक्त उन्होंने स्वप्रतिभाजन्य प्रत्य चार काव्यार्थों की भी कल्पना की है । वे हैं उक्ति मयों, योऽनू-मयों, उत्साधनमयों और मयों-विहार ।

आचार्य द्रोहिणि ने काव्यार्थ की व्यापकता को परिमित करने का प्रयास किया है । उन्होंने कथानक के पात्रों का दिव्य, दिव्यमानुष और मानुष होता बताया है । पश्चात् आचार्य राजशेखर ने इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया । उन्होंने इन तीन भेदों के अनिरिक्त पातालीय, मयंशलालीय, शिष्यराजालीय, और दिव्यमयंशलालीय भेदों का वर्णन कर अर्थव्याप्ति की सीमा प्रिस्तुत कर दी है । पूर्ववर्ती आचार्य उभट ने अर्थव्याप्ति को विचारितमुख्य और अविचारित-रमणीय विभागों में रखा है । अविचारित रमणीय अविचारित होता है उसमें वास्तविकता कोमा दूर रहती है । राजशेखर हमने समहमन है । उन्होंने

१ काव्यमीमांसा अ० ८ पृ० ३५—“श्रुति स्मृति इतिहास पुराणं प्रमाणविद्या राजनिदान्तरण्यो सांतां विरचना प्रकीर्णक च काव्यार्थानां शास्त्रं योऽयम्.” इति आचार्य ।

उद्भट की समस्या का निराकरण किया। उनके मतानुसार कवि वैज्ञानिक वस्तु की वास्तविकता को प्रतिभा के पुट में लोकर-रचना में परिवर्तित करता है। शास्त्र विश्लेषणात्मक होने है, वाक्य सश्लेषणात्मक। राजशेखर का यह मूल्य आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों को गर्वसा मान्य है।

कवि कम ही काव्य बहनाता है। धनकार शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय वाक्य ही है। कवि का जिनका विस्तृत विवेचन राजशेखर ने किया है उतना किमी पूर्ववर्ती या परवर्ती आचार्य ने नहीं। आचार्य वामन ने अरोचकी तथा मत्तुषाम्यवहारी कवियों के ये दो भेद गिनाये हैं, किन्तु राजशेखर ने भिन्न-भिन्न आधारी को लेकर कवियों के २७ भेद बताये हैं। ये उनकी मूढम विचार शक्ति के परिचायक हैं। अवस्थाजन्य कविधेनी भी साहित्य क्षेत्र में नवीन है।

कवि-शिक्षा। भामह ने राजशेखर पर्यन्त आसकारिकों ने काव्य-विषय का मथन किया है, किन्तु कवि के मानविक पक्ष की ओर किसी भी दृष्टि नहीं गई। राजशेखर धनकार क्षेत्र में प्रथम आचार्य है जिन्होंने काव्यमीमांसा में कवि शिक्षा विषयक तत्वों के बीज का वपन किया। परवर्ती आचार्यों ने लिये यह धरोहर स्वरूप है। कवि-शिक्षा सम्प्रदाय के जनक के रूप में राजशेखर काव्य-जगत में प्रसर रहेगे। कवि-शिक्षा के अन्तर्गत जिन तत्वों का प्रथमावतार राजशेखर ने किया है वे हैं —

(१) कविचर्या (२) काव्यगोष्ठी (३) कवि-सम्मेलन (४) काव्य पाठ (५) अनुहरण (६) कवि-ममय।

वाल्मीयान ने कामसूत्र में 'नागरिक-वृत्ति' शीर्षक के अन्तर्गत नागरिकों के रहन-सहन, निवास-स्थान एवं राग-द्वेष्टि दिनचर्या का मुविस्तृत विवेचन किया है। साहित्यशास्त्र में हमें ऐसा वर्णन कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। राजशेखर ही प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने वाल्मीयान की नागरिकचर्या को मामने रखकर कवि-चर्या पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

काव्यगोष्ठी की उद्भावना साहित्य क्षेत्र में नूतन नहीं है किन्तु राजशेखर की लेखनी ने उसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। राजा के सम्भाषणत्व में काव्यगोष्ठी की आयोजना परिकल्पित करके उन्होंने उसे सम्मान प्रदान करने की प्रेरणा दी है। राजा ने नेतृत्व में आयोजित कवि-सम्मेलन सामान्य सभा-मण्डप में नहीं हो सकती। अतः उस सम्मेलन के लिये उन्होंने विशिष्ट मण्डप की रचना का निर्देश दिया है। इस कवि-भवन में मोनह खम्भे चार दरवाजे और छાठ मलवागी हैं। उम के बीच में एक हाथ ऊँची चार खम्भों वाली एक मणि-येदिका बनायी

जाय । टम मणिवेदिका पर राजा का सिंहासन हो । राजा के चारों ओर भिन्न-भिन्न भाषाओं के युणी तथा कविजन बैठे । राजा के उत्तर की ओर मस्तुत भाषी पूर्व की ओर प्राकृतभाषी, पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषी तथा दक्षिण की ओर पैशाची-भाषी बनि बैठे । ऐसी मजी हुई मभा में बैठकर राजा काव्य-मोक्षी का मभापतिव्व करे ।

महर्षि पाणिनि ने वर्णों के उच्चारण की विधि बतलाते हुए लिखा है कि जिस प्रकार व्याघ्री अपने पुत्रों को एक स्थान में दूसरे स्थान पर अपने दांतों से दबाकर लेजाती है और दांतों में उन्हें किसी प्रकार की पीडा नहीं पहुंचाती क्योंकि वह डरती है कि वहाँ बच्चे भर न जायें या दाँत उनमें चुभ न जायें । उसी प्रकार वर्णों के उच्चारण करने वालों को भी सावधान होना चाहिये कि यही वर्ण उनके मुँह में गिर न जाय और वहाँ थोड़े वर्ण मुँह के भीतर ही रहकर अनुच्चारित न रह जाय । इसी को आधार मानकर राजशेखर ने बलि रहस्य अधिकरण में बाध्य पाठ के चार भेद बतलाये हैं—

शभीरम्बमनैश्वर्यनिर्धृङ्गिन्मारमन्त्रयो
समुक्तवर्णलाघवमिनि पाठगुणा म्मुना ।
विभक्तम स्पृष्टायत्न, समानाश्च कर्दधिता ।
अम्मान पदमन्धिरच तत्र पाठप्रतिष्ठित ॥
न ध्वस्तपदयोरेक्य न भिदा नु समस्तगो ।
न चाटयान पदम्नानि विदधीत मुधी पठन् ।

अर्थात् शभीरता, सम्बरता, ऊँच नीच स्वर का निर्वाह और समुक्त वर्णों के पढ़ने में विशेष मुन्दरता ये पाठकों के गुण माने गये हैं । मुन्दर पाठ यह है जिसमें विभक्तिषी स्पष्ट हो, समान भी स्पष्ट हो और पदों की गंधि भी स्पष्ट हो । धुड़ि-वान् को पाठ करने समय न तो व्यक्त पदों को मिलाना चाहिये और न समस्त पदों को धनस करना चाहिये । आस्थान पदों को भी विवृत या मलिन नहीं करना चाहिये । यही उनकी पाठ प्रतिष्ठा का आधार है ।

वाराणसी, मगध, गौड, वनांड, द्रविड, पाट, मुराष्ट्र, त्रवण, वज्जीर और पाश्चात्त जनपदों के बाध्य पाठ की प्रणाली का वर्णन उनकी धातु देत है । सर्वप्रथम राजशेखर ने ही वर्णों के अनेक प्रान्तीय प्रणाली के आधार पर बाध्य पाठ का वर्णन किया है । उन्होंने प्रायः सभी प्रान्तों की बलि-पाठ प्रणाली का वर्णन दिया है ।

अनुहरण

सर्वप्रथम प्राचार्य आनन्दवर्धन के इत्यन्तालोक में अनुहरण की एक खलक मिलती है। किन्तु इसका विस्तृत तथा विशिष्ट अनुशीलन राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में किया है। पूर्ववर्धित निहनुतयोनि के दूसरे भेद परपुरप्रवेश एवं उसके आठ भेदों की उद्भावना राजशेखर की अपनी है। अनुहरण विषयक कवि की धारणाएँ साहित्य-भगत में नूतन ही हैं।

कवि-समय : प्राचार्य वामन ने वाचस्पतिकार सूत्र में प्रायोगिक नामक गणनम अधिकरण में वाच्य-समय का उल्लेख किया है, जिसमें व्याकरण-नियमों की रूपरेखा दी गयी है। यद्यपि वाच्य ये तो कवि-समय का प्रत्यक्ष रूप में प्रयोग हुआ, किन्तु वाच्य-शास्त्र में कवि-समय का विवेचन प्रथमतः प्राचार्य, राजशेखर ने किया है।

आलोचक भेद : पूर्ववर्ती प्राचार्य मंसल ने आलोचक के दो प्रकार बताये हैं—आलोचको और सनुषाभ्यवहारी। प्राचार्य मंसल के इन कथन-प्रकारों से सहमत होते हुए आलोचक के दो अन्य प्रकार भी राजशेखर ने माने हैं। वे हैं—उत्त्वाभिनिवेशी एवं मन्मरी। इस प्रकार प्राचार्य मंसल के विभाजन को राजशेखर ने मनो-विज्ञान का पुट देकर व्यावहारिकता के समीप माने का प्रयास किया है।

वाच्य-याक : काव्य-याक के क्षेत्र में प्राचार्य भरमह एवं वामन का नाम उल्लेखनीय है, किन्तु इन प्राचार्यों ने वाच्य-याक को दो भेदों तक सीमित कर दिया। प्राचार्य राजशेखर ने इसका परिवर्धन किया तथा वाच्य-याक को दो भेदों में विभाजित किया। इस प्रकार राजशेखर ने वर्तमान भारतीय समीक्षा का वास्तविक मूलपात्र दिया।

वाच्य-शास्त्र के क्षेत्र में औपनिषदिक एवं वैज्ञानिक में दोनों प्रकरण अत्यन्त गनीन हैं। बौद्धितीय अर्थशास्त्र में औपनिषदिक प्रकरण मिलता है। राजशेखर औपनिषदिक कवि में सम्बन्धित जानकारी इस प्रकरण में देना चाहते हैं। उनसे कथन से लगता है कि वे इन प्रकरण में कलाओं का वर्णन भी करना चाहते थे।

वाच्यमीमांसा ऐसा ग्रन्थ है जिसमें पूर्ववर्ती ज्ञान तथा अज्ञान प्राचार्यों के केवल तर्कों का नहीं, अपितु निदानों का भी उल्लेख मिलता है। ज्ञात प्राचार्यों में रघु, आनन्द, उद्भट के अनुयायी, वामन के अनुयायी (वामनीया) ध्वस्तिसुन्दरी, भारद्वाज, वसिष्ठ, ब्रौह्मिण एवं वाच्यवीरि की गणना की जा सकती है।

मगत, श्यामदेव और मुरानन्द आदि अज्ञान प्राचार्यों का उल्लेख राजशेखर ने नहीं कर दिया। उन्होंने नहीं पूर्ववर्ती प्राचार्यों की उद्भावनाओं का उपयोग

रिया है वहाँ अपनी मौलिकता की भी छाप लगा दी है। उन्होंने कभी नो पूर्ववर्तिन की पुनरावृत्ति नहीं की। जिस विषय पर उन्हें कोई मौलिक बात नहीं रहती होती है, उसे वे छोड़ देते हैं।

उनकी सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रूपरेखा में ग्रामल परिवर्तन। अब तक के ग्रन्थों में अलकार शास्त्र के किसी एक विषय पर विशेष रूप से बल दिया जाता था किन्तु अब काव्यमीमांसा में सभी विषयों का समन्वय करने का प्रयास किया गया है। समन्वयवादी ग्रन्थ-रचना की परिपाटी राजसेखर ने ही आरम्भ की।

संस्कृत अलकारिक काव्य के सात्विक मिष्ठान्तों से परिचिन थे किन्तु उन्हें व्यावहारिक शिक्षा देने का श्रावणीयकार्य राजसेखर ने किया है। अपनी मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा राजसेखर युग-प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। उनकी ये उद्भावनायें साहित्य जगत में प्रकाश-स्तम्भ की भाँति आचार्यों एवं शिष्यों या मार्गदर्शन करती रहेगी।

खण्ड ४

राजशेखर-कालीन भारत

“पूर्वापरयो. समुद्रयोर्हिमवद्विन्ध्ययोश्चान्नरमार्थावर्त्त. ।
सहिमश्वानुवर्ष्म चानुराश्रम्य च । तन्मुनरव सदाचार ॥”

राजशेखर-कालीन भारत

राजशेखर ने भारतवर्ष को उत्तरापथ, दक्षिणापथ, पूर्वदेश, पश्चाद्देश और मध्यदेश इन पाँच खण्डों में विभक्त कर तत्कालीन भारत की समग्र सीमा स्तुत की है, जो संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपूर्व है। उनके इस विभाजन का केन्द्र बिन्दु कान्यकुब्ज था।

भौगोलिक सीमाएँ

उत्तरापथ : महोदय केन्द्र से आगे शक, वैक्य, धोवराण, हूण, बाणायुज, काम्बोज, बाह्लीन, बह्व, चिम्पाक, कुलून, कीर, तगग, तुपार, पुरुष्क, धर्बर, हरहूरव, हृह्व, सटुड, हममार्ग, रपठ और करण्ड जनपद उत्तरापथ खण्ड का निर्माण करते थे।

पूर्वदेश : आराणसी से आगे केअग, वग, वलिंग, कोसल, तोमल, उत्तल, मगध, मुद्गर, विदेह, नेपाल, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मल्लवर्तक, मुह्य और ब्रह्मोत्तर आदि जनपद पूर्वदेश के अन्तर्गत आते थे।

पश्चाद्देश : देवसभा से आगे, देवमभ, सुराष्ट्र, दशेरक, सवण, भृगुवृष्ट, कञ्चीय, घानर्त, घर्कुद, वाशुणवाह और यवन प्रदेश पश्चाद्देश कहलाते थे।

दक्षिणापथ : माहिष्मती से आगे दक्षिणापथ का भू-भाग प्रारम्भ हो जाता था। मरारष्ट्र, माद्रिपक, अशमक, विदर्भ, कुन्तल, त्रयवर्गिर, सूपारव, बाबो, केरल कावेर, मुरल, वनयासक, सिंहल, चोड, दण्डन, पाण्ड्य, पल्लव, पाण्ड्य, नागिर, वीरण, कोतलगिरि, वल्लूर, आदि जनपद दक्षिणापथ के अंग थे।

मध्यदेश : इन चार खण्डों के मध्य का देश "मध्यदेश" कहलाता था। राजशेखर ने मध्यदेश के जनपदों, पर्वतों, नदियों और उपज के अनिश्चित होने के कारण उनकी नामावली नहीं दी है। उन्होंने मनु द्वारा निर्दिष्ट सीमा रेखा को मान्यता दी है, जिसके अनुसार हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में विशाल मे पूर्व और पश्चिम में पश्चिम का भू-भाग मध्यदेश कहलाता था।

नदियाँ : राजशेखर के भूतलानुसार उत्तरांचल की प्रमुख नदियाँ गंगा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, चन्द्रभागा, यमुना, इरावती, विजयता, बिरासा, कुतू और देविका थी। पूर्व देश की गंगा और करतोमा थी। पश्चात्देश की सरस्वती, प्रव्रध्वती, शतर्धनी, मही और हिडिम्बा एवं दक्षिणांचल की नर्मदा, तापी यमुष्णी, गोदावरी, वाङ्गेरी, भीमरबी, वेणा, कुप्पावेणा, वंदुरा, तुगमदा, ताम्रपर्णी, उत्पलावती और रावणगंगा थी।

पर्यंत : उत्तरांचल में हिमालय, कश्मिर, इन्द्रकोण, चन्द्राचल, पूर्वदेश में बृहद्गुह, मोहिंतगिरि, चंकोर, चंदूर, नेपाल और कामरूप, पश्चाद्देश में गोवर्धन, गिरिनगर, देवसम, मात्यसिखर, मरुंद तथा दक्षिणांचल में बिल्ब-शशिगपाद, महेंद्र, मलय, मेकल, पाल, मंजर, महा और श्रीपर्वत थे।

इन जनपदों, कृतिषष्ठ नदियों और कुछ पर्वतों के प्राधुनिक नाम निम्न हैं :—

उत्तरांचल :

भक्त—भारत के सीमान्त के पास का सींधिया क्षेत्र।

केकय—सेतम और ध्याम नदी के मध्य-पूर्व-भाग में स्थित जगलपुर।

हूण—तमिसा के आसपास का प्रदेश।

याणादूज—हरव प्रदेश।

बाम्बोम—हिमालय का रामपुर।

बान्हीक—बल्लभ।

बल्लव—पञ्जाब का बाहीक प्रदेश (पूर्वी पञ्जाब)

भिराव—सपमत।

बुतुल—कागडा त्रिमे वा बुलू प्रदेश।

गीर—पञ्जाब का गीर क्षात्र।

मगल—शकान त्रिमे वा तगणपुर।

तुपार—बल्लभ और बल्लभ प्रदेश।

तुप्पार—तुर्किस्तान का पूर्वी-भाग।

वर्ग—तुर्किस्तान का उत्तर प्रदेश।

हार्दरव—मिन्धू और सेतम ॥ मध्य वा प्रदेश।

हूण—पश्चिम और हूणपुर।

मरुद—मध्यबोह और मरुद-मरुद के पास वा प्रदेश।

रमड—शेखर पर्वत के पास वा प्रदेश।

पूर्वदेश :

अंग—भागलपुर, मुर्गेर जिलों के आसपास का प्रदेश ।

कलिंग—उड़ीसा से विजयापट्टम तक का प्रदेश ।

तोसल—पुरी जिले का घौली प्रदेश ।

मगध—आधुनिक पटना और गया ।

विदेह—तिरहुत ।

पुण्ड्र—बोगरा जिले का महा स्थान ।

ताम्रलिप्तक—दक्षिणी पश्चिमी बंगाल का तमलुक प्रदेश ।

मल्लवर्तक—बिहार के हजारीबाग और मानसूनि जिलों का भाग ।

प्रहोत्तर—बर्मा के आस-पास का प्रदेश ।

हमामर्ग—उत्तरी-पश्चिमी आसाम का हमजा प्रदेश ।

करकष्ठ—बनू जिले का कारापथ प्रदेश ।

बग—बंगाल ।

कोसल—रायपुर, बिलासपुर और सम्बलपुर ।

उत्कल—भिक्षनापुर जिले का पश्चिम भाग ।

मुद्गर—मुर्गेर ।

नैपाल—नैपाल ।

प्राज्योत्तिप—गोहाटी

मलद—शाहाबाद ।

पश्चाद्देश :

देवसभा—देवास ।

सुराष्ट्र—दक्षिण काठियावाड़ ।

दशेरव—राजपूताने का मारवाड़ प्रदेश ।

भूगुकुष्ठ—मडोच ।

कच्छीय—कच्छ की खाड़ी के आसपास का प्रदेश ।

आनर्त—ठारवा के आसपास का प्रदेश ।

अर्बुद—आबू पर्वत के आसपास का प्रदेश ।

ब्राह्मणवाह—सिन्धु के पूर्वतट का प्रदेश ।

यवन—भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा से मिला प्रदेश ।

दक्षिणापथ :

महाराष्ट्र—महाराष्ट्र ।

माहिपक—माहेश्वर या मान्धाता ।

प्रश्मक—निजामाबाद का बोधन प्रदेश ।

विदर्भ—बरार ।

कुन्तल—कनारा जिले का उत्तरी भाग ।

मूर्पारक—केरल से अपरान्तक का भाग ।

काची—काजीदरम्

केरल—केरल (मालाबार ट्रावणकोर और कोचीन प्रदेश) ।

कावेर—कावेरी नदी के पास का प्रदेश ।

मुरल—मुरला नदी के समीप का प्रदेश ।

बानबासक—उत्तर कनारा का वनवासी प्रदेश ।

सिहल—सिलोन ।

घोल—तंजोर और त्रिचनापल्ली के घामपास का प्रदेश ।

दण्डक—टिण्डीवन ।

पाण्ड्य—मदुरा, तिरुवेली जिले एवं रामनद, त्रावणकोर कोचीन राज्यों का भाग ।

पल्लव—काची के चारों ओर का भाग ।

गाम—गामो प्रदेश ।

नामिकर—नामिक ।

कोरुण—गरगुराम क्षेत्र कोरुन ।

बोन्लगिरि—बोल्हापुर ।

बल्लर—बैटगिरी, चित्तूर, वैत्तोरी प्रदेश ।

नदियाँ—जिन नदियों के नाम बदल गये हैं वे नदियाँ और उनके आधुनिक

नाम निम्नलिखित हैं—

गन्तु—गन्तव्य ।

विशमा—अश्वाम ।

देविका—दीप ।

कुटु—कावुप ।

वार्तघ्नी—मायूरमती की महापरा
वागवः ।

चन्द्रभागा—विनायक ।

इरावती—रावी ।

विनस्ता—गोनम ।

वज्रवती—मायूरमती ।

पयोष्णी—पेनगंगा ।

हिहिम्बा—चमण्वती, चम्पन

पर्यन्त : इमो प्रचार हिमानय की जिन धेणी विभोर मे समुता वा उद्गम होना
बहु कविद, ब्रह्मपुत्र वा उद्गम स्थल लोहितगिरि है । इसके अनिरक्त हृदय

घोर कामरूप हिमालय की शाखाएँ हैं। दृहद्वय ही माउण्ट एवरेस्ट है। चन्द्र-भागा जिस पर्वत से निकलती है वह चन्द्राबल, धमरकटक की वह धौली, जिसमें नर्मदा का उद्गम होता है मेकन, विन्ध्यावन की देवदह स्थित श्रेणी ददुर, आसाम स्थित हिमालय की श्रेणी कामरूप घोर मिर्जापुर का चुनार पर्वत चबोर कहलाता है। अन्य पर्वतों के नाम समान हैं।

राजशेखर से पूर्व भारत के जनपदों, ग्रामों नदियों एवं पर्वतों का उल्लेख कालिदास की रचनाओं तथा पानञ्जल महाभाष्य में मिलता है किन्तु वैज्ञानिक ढंग से भारत का पाँच खण्डों में विभाजन राजशेखर के सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान का ही परिणाम है। सातवीं शताब्दी में भारत में भ्रमण करने वाले चीनी यात्री ह्वेन-त्सांग ने भी भारत को (Five Indies) पाँच खण्डों में विभक्त किया है। वे पाँच खण्ड हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्यदेश। प्रतीत होता है कि भारत को पाँच खण्डों में वर्गीकृत करने समय इन सभी के विचार राजशेखर के मस्तिष्क में थे। उन्होंने सबका मनन कर समयोपयोगी एवं अक्षिप्त स्पष्ट रूपरेखा को अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है।

उन्होंने इन जनपदों के अतिरिक्त अनेक नगरों का भी उल्लेख किया है। वे हैं—मिथिला, लंका, अयोध्या, चेदि, धवन्ति, कुशस्थनी, सार, घोड़, प्रयाग, महोदय, बाल्यकुण्ड, पाण्डिपुर, वाराणसी एवं मालव आदि।

देशानुसार देश-प्रणाली

राजशेखर ने भारत के विभिन्न देशों के विभिन्न परिधानों की एक शपक वाक्यमीमांसा में दी है—

पूर्वदेश—अग वग, सुहूम, बह्य तथा पुण्ड्र आदि जनपदों की स्त्रियाँ उत्तरीय वस्त्र इस प्रकार धारण करती थी जिनमें पुण्ड्र वस्त्र का मुख्य बनने थे घोर बाहुमूल का स्पष्ट रूप से प्रदर्शन होता था।

पश्चिम, शूरमेन, हस्तिनापुर, काम्पौर, बन्दीर, बह्मौर, बाल्मिक, आदि देशों की स्त्रियों का आधा वस्त्र जपन में लेकर घुटने तक लटका रहता था अर्थात् यहाँ की स्त्रियाँ कमर से लेकर घुटने तक लटकने हुए आधा वस्त्र धारण करती थी।

दक्षिणार्ध की-मनय, मेकन, कुन्ना, केरन, पाप, मज्जर, महाराष्ट्र, आदि घोर दक्षिण जनपद की स्त्रियाँ भुजाओं के नीचे से कमर तक लटकती थीं।

धवन्ति, प्रदेश की स्त्रियाँ कभी घुटनों तक लटकने वाले आधे वस्त्र अर्थात् भुजाओं के नीचे से कमर तक लटकती थीं।

शिक्षा का केन्द्र : उज्जयिनी तथा पाटलिपुत्र ये दोनों शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। जहाँ काव्यकारों एवं शास्त्रकारों की परीक्षा होती थी। उज्जयिनी में कालिदास, भर्तृहरि, अमर, उषर्य, धार्यभूर, भारवि, हरिवर्धन, और चन्द्रगुप्त आदि परीक्षा में सम्मिलित होकर सफल घोषित हुये थे। फलस्वरूप उन्होंने पट्टवन्ध का गौरव भी प्राप्त किया था। उज्जयिनी केवल काव्यकारों की परीक्षा का केन्द्र थी।

पाटलिपुत्र में शास्त्रकारों की परीक्षा होती थी। जहाँ से धार्य उपमर्ष, पाणिनि, पिगम, व्यासि, वररुचि, तथा पतञ्जलि परीक्षित हुए थे तथा पट्टवन्ध से गौरवान्वित भी।

राजशेखर और परवर्ती साहित्य

नाट्य साहित्य : राजशेखर के पश्चात् रफूति तथा प्रेरणा प्राप्त कर सट्टक का जिन्होंने निर्माण कार्य किया, ये हैं १—अयचन्द्र २—रुद्रदास।

चन्द्रदास : चन्द्रलेखा के कर्ता रुद्रदास सन् १९६० के आसपास के हैं। इन्होंने इस सट्टक में मानवैद तथा चन्द्रलेखा के प्रणय का वर्णन किया है। चन्द्रलेखा की शैली कर्पूरमञ्जरी की शैली से बहुत कुछ मिलती है। कर्पूरमञ्जरी पर ही यह आधारित है। भावों एवं शब्द का साम्य भी पर्याप्त मात्रा में दिखायी देता है। यथा—

कर्पूरमञ्जरी

चन्द्रलेखा

रहरसकला लोचनलोलापिभाषा ^१	एदे भूतिप्र-बोल-बाल महिला भालि- दुमेभाषया । ^{१क}
दो भागद दे अण्णाएण पडिते ^२	जदो पुक्क एव्व अन्हाण पुण परपराए मण्णम पडिधत्तण । ^{२क}
माह एवक कण्णारधण दिह, तामिहा- णीप्रदु ^३	इह महिमले जा कण्णापाप रमण भू आ कण्णया त पुरदो दमेहि ^{३क}
कच्च माणिक्क च मम आहरणे पउजी- मदि ^४ ।	माणिक्क-मणिति काम विविकणी आदि ^{४क} ।
सहस्र पाचिदम्ब ^५ ।	सट्टओ णट्टिदम्बो ^{५क} ।
एत्थ सहस्रवरे ^६	धस्सिं खु सहस्र वरे ^{६क} ।
मह वड्ढावयोत्तुज । तुय वड्ढाविमा मज्जा ^७ ।	दाणि महु वड्ढावइस्स अय्यउत्त, अहं हि तुम वड्ढावइस्स ^{७क} ।

१ कर्पूरमञ्जरी १-१५

२क चन्द्रलेखा १-२६

४. कर्पूरमञ्जरी १-२०

५क चन्द्रलेखा १-४

७. कर्पूरमञ्जरी १-१२

१क. चन्द्रलेखा १-१३

३. कर्पूरमञ्जरी १-२५

४क चन्द्रलेखा २-९

६ कर्पूरमञ्जरी १-७

७क. चन्द्रलेखा १-१३

२ कर्पूरमञ्जरी १-१८

३क चन्द्रलेखा १-२९

५. कर्पूरमञ्जरी १-४

६क. चन्द्रलेखा १।२३-२६

जदोण बत्थूरिआ कुम्भामे वणे वा कि कटारी पक्कणे विविककणी अदि^{१७}
विकिकणीअदि^१ ।

एद जेव आग्रछदि
देवो ता कुञ्जवामणकिरादवरिमवर
सोविदल्याण एमो हतवोवो^{१८} ।

एमा खु देवो इदो एव्ज आग्रछदि
तिसे कुञ्ज किराथ वारिसवर वामन
पुरस्सरम परिवार अणत्तम एसो कल-
कलो^{१७} ।

विहिगिआ—अपच चामलण्याहिणीओ
पुव्व दुवारामि तिसे रणख कावुं
ठाविआओ ।

अणगसेना—न्ति पच चामरघारि-
णाओ—रख्यानित्तहे पुव्व
दिसाए गिउत्ताओ ।

कलहामिआ—पच सेरघीओ उत्तरदु-
वारामि पोंमिदाओ

अणगसेना—पच सेरघीओ दक्खिण-
णादिसाए णिवेमिदाओ ।

कुन्दमाला—तम्बोलकरवाहिणीओ
पच्छिमदिमाए ठाविदाओ—अण-
गकेली—मज्जणपालीओ उत्तर-
दिमाए आण्ताओ ।

पत्तनेहा—अ पच तम्बोल दाहणीओ
—सठाविआओ तमालिआ—
णहागोवमरण सपादणीओ
पच्छिम दुवारामि वेरिदाओ ।

मन्दारवदी—मुहामिदपदिआओ
अम्मकखीकिदाओ—^१

मजरिआ—डाहिण दुवारामि गिओ-
ईदाओ—^{१७} ।

अपचअ-रम्भामंजरी : नायक जैत्रचन्द्र और रम्भा के प्रणय पर आधारित
इम सट्टक पर राजशेखर की छाप स्पष्ट दिखायी देती है । अपनी रम्भामंजरी
को उन्होंने कर्पूरमंजरी की घोषा श्रेष्ठ कहकर वर्णित की है किन्तु वस्तुतः उसमें
राजशेखर का अनुकरण ही लक्षित होना है ।

राजशेखर की अनुकृति निम्न अंशों से स्पष्ट हो जाती है —

कर्पूरमंजरी	रम्भामंजरी
पिए विरभमन्त्रण । एवो अह वड्डावओ तुग्ग एका तुम वड्डाविआ मज्जा । वि उअ दुवे वि अम्हे वड- वाविआ वचणवण्ड ^१ ।	देवी—वड्ढाय्यसे—ता अहापि पडि- वड्डाविआववि पडिबत्तुमिच्छामि प्रिये वतन्तमेने नाह वर्यापवस्तव नापि त्वमपि वड्डापिता मम । त्तिनु आवयोवंधोपव परमहमो ^{१८} ।

१ कर्पूरमंजरी १-१८
२४. चन्द्रनेखा ३-२४
४. कर्पूरमंजरी १।१६

१४. चन्द्रनेखा २-९ २ कर्पूरमंजरी ३-३६
३. कर्पूरमंजरी ४-९ ३४. चन्द्रनेखा ४-२६
४४. रम्भामंजरी ५० ११-१२

विदूषक-तुम्हाण सव्वाण मज्जे भहम् जसम मे पाणवन्तहाए पियामहो पा-
एको कावक्खरिणो जस्स मे षडियाण पुत्थयवाहभाणान—
समुरस्स ससुरो पट्टिअपरे पुत्थि विचारणे आसि^{१७}
आइ वहनो आसि^{१८}

तदो आगद दे अण्णएण पंडित्तए^{१९} । अहो पारपज्जेणेव ववाहिदा तुम्हाण
अ कत्थूरिया कुण्णये वने ना विक्कीणी कुले विज्जा^{२०} ।
अदि ।^{२१}

ईदिसस्स राप्पलउलस्स भद् भोदु जहि णि रयनं कत्थूरिआ कुणामे विक्क-
बेडिआं वन्टेणेअ समं समसीत्तिआए यरि ।^{२२} आ. मह इहि राउने
दीमदि—^{२३} आगच्छरस्स अ जीअयअहरो
स्वाम्मिराउले—दासीओ आ-
गिअजति दासिओ पूअजति
उत्तमाअ वअण्णं—अ कोवि
वुज्जोदि ।^{२४}

णिअगेहुणीए—गेहे जेअ विठिठस्स ता भद् भोदु स्वस्स रयकुलस्स गिय-
अ हु व हु आगामिस्स ।^{२५} वन्तहाए—गिहज्जेव विट्ठिस्सं
इह नागमिस्सं ।^{२६}

विश्वेश्वर-सिद्धगारमज्जरी : १८ वीं शताब्दी के विश्वेश्वर ने राजा
राजशेखर और भृगारमजरी के प्रणय की कथा सिद्धगारमजरी लटक में वर्णित की।
सिद्धगारमजरी में कर्पूरमजरी के भाव और वर्णन की छाया स्पष्ट दिखायी देती है।

इन परवर्ती साहित्यकारों ने केवल कर्पूरमजरी का ही अनुसरण नहीं किया।
इस सन्दर्भ में विद्वत्शालात्रयिका भी दृष्टव्य है। कश्मीरी कवि शिल्पन की
कर्णमुन्दरी माटिका की कथावस्तु एवं वर्णन मैत्री आदि पर विद्वत्शालात्रयिका
का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।

(कर्णमुन्दरी) नायक स्वप्न में किरी घनज्यमुन्दरी की देखता है। वह
मुन्दरी गीम ही खली जाती है। राजा उसी का स्मरण करने अधीर होता है।

- | | |
|-----------------------|------------------------------|
| १. कर्पूरमजरी १।१६-१७ | १४. रम्भामजरी ५० १८-१।३१ |
| २. कर्पूरमजरी १-१८-१९ | २५. रम्भामजरी १-३३-३८ |
| ३. कर्पूरमजरी ५० २३ | ३४. रम्भामजरी ५० १६ |
| ४. कर्पूरमजरी ५० ३० | ४४. रम्भामजरी ५० १९२ व ५० २० |
| ५. कर्पूरमजरी ५० ३२ | ५४. रम्भामजरी ५० २० |

उमका मित्र विदूषक उसे मदनीयान चलने के लिए बहना है जिससे विरही राजा का मन स्थिर हो। प्रकृति बोधा का निरीक्षण करने हुए वे तरंगमाला पहुँचते हैं वहाँ पति पर उसी स्वप्नदृष्टा नायिका की प्रतिकृति चित्रित है। नायिका उस नायिका के मोन्दर के वर्णन में मग्न है इसी मग्न देखी अपनी मधो हारमला के माप प्रवेश करती है। राजा से यह पूछने पर कि वह किसके मुखों का गान कर रहा है—रानी का कहकर रानी को निशंक करती है। किन्तु वह चित्र स्पष्ट रूप से कर्ण-मुन्दरी का है। अतः रानी राजा की मन स्थिति समझ जाती है।

दूसरे अंक में विदूषक के कथन से ज्ञात होता है कि राजा युविका रानी को भगने में मग्न हो गया है। प्रमुख दृश्य में विरहाकुल राजा को तरंग-माला में मुन्दरी का चित्र देखकर मन बहलाने की सलाह विदूषक देता है। दोनों तरंगमाला में पहुँचते हैं। राजा उसे प्रयत्न देखने के लिए अन्तर्मुख है। वहाँ नायिका लीलावन के मरोवर में स्नान करती हुई दिखायी देती है। मञ्जनीमञ्जन किया जा वर्णन करते हैं। नायिका स्नान के पश्चात् लता गुहम में प्रवेश करती है और विदूषक उसका अनुसरण करते हैं। नायिका भी मदन-सरोय में राजा का स्मरण करने हुई वह विरहदाह को न सह सकने के कारण मूर्च्छित हो जाती है। गुहम में छिपा हुआ राजा वीर्य वहाँ पहुँचता है। चेतना-लब्ध नायिका एक नायक के मिलन की याताँ देखी को जान होती है। रानी की मना में नायिका रानी के आने के पूर्व ही वहाँ में प्रस्थान कर देती है।

तृतीय अंक में रानी कर्णमुन्दरी का वेश धारण कर तथा सखी हारमला कर्णमुन्दरी की छछी का रूप धारण कर राजा के मग्न उपस्थित होती है। राजा के मन का रहस्य जानने के बाद वह अपना वास्तविक रूप दिखाती है। राजा प्रपणवी की भाँति उनके चरणों पर अपना मन्दक झुकाने की कोशिश करता है किन्तु बुद्धा रानी भनमनाने हुई चली जाती है।

चतुर्थ अंक में नायिका कर्णमुन्दरी का विवाह नेपथ्य से अचूक कर, वरवेष में राजा की भी सुगोमल कर रानी दोनों का वधिग्रहण करती है। इसी समय राजा के दूत का आगमन होता है जो राजा के चरखीं होने की घोषणा करता है। भरतनाथ के पश्चात् पात्र चले जाते हैं।

इस नाटिक में यद्यपि खलाबली का अनुकरण है, (वामचरिता मायिका के वेश में राजा से मिलने जाती है। इस नाटिका में रानी कर्णमुन्दरी के वेश में) तथापि विद्वन्मनभजिका का प्रभाव अधिक लक्षित होता है।

परिचित भावगाम्य के घन निम्न है—

विद्वज्जालभजिता	वर्णमुन्दरी
<p>मनः विमोक्षितम् सर्वविदित्युगाधाय ज्ञानं विमोक्ष दुःखनामक मन्त्रदेव । दुःखाने—गरलापनाशी घनान्ते तन्निष्ठारकता निगम्य सनाहन-नानित येनारकितापी । देवी ध्यातव्य तपनं धनमाननन्तु रण-गुर गनपती गदु सौविदन्ती । १</p>	<p>मन्त्रोन्नी विमोक्षिता, नार मवा- दोन्नी न वम्य—दृष्टा मु- नेश-—पतिविदन्ती धातारं निगदिन नो दशिनः मन्त्रमः । वागाविदुपहामगा- विनग्या प्रमोक्षवि नाविदुपः । निगदिन परिवृत्त कि मु ज्ञानकेः ध्यामीदृगाधगाधमना- नारन्तमयधरीय विरगधेनि- विमुक्तस्तवा ।</p>
<p>पणध्यापमनगामननहमम ध्यापण मन्त्रगाम्य उन्नीध शमिष विद्वज्जालभजिता गमोमउन्नीध- पविगिध</p>	<p>इदो सौवागदवविदमहमममविष्ण विनाम गाविधनेन्नीधमुन्दरजण धत्यापणध परिवृत्त रण- धनुषा रिम्या विद्वज्जालभजिता धीमयीध</p>

रिती भी ववि का व्यक्तित्व जितना उच्च एवं मद्दुन है इसका महत्वपूर्ण तत्वेन हम बात में मिलता है कि उसने उत्तरवर्ती ववियों भयवा वाग्मरूपों पर अपनी जितनी तथा वंसी छप छोड़ी । उपर्युक्त ववा ने राजमेखर के नाट्य-गाह्य की महत्ता स्पष्ट हो जाती है ।

काव्यशास्त्रीय साहित्य

काव्यमीमांसा में सङ्कृत साहित्य भास्त्र की मुदीर्ष परम्परा के परिष्कृत एवं परिभाजित रूप का दर्शन होता है । पूर्ववर्ती शास्त्रों के विचार, उनका

१ विद्वज्जालभजिता १-२१, वर्णमुन्दरी १-३१ ।

२ विद्वज्जालभजिता १-१९, वर्णमुन्दरी १-४० ।

३ विद्वज्जालभजिता १-२२, वर्णमुन्दरी १-४५ ।

यथावसर समर्थन एवं खण्डन काव्यमीमांसा ग्रन्थ में विद्यमान है, किन्तु कवि-शिक्षा-सम्प्रदाय काव्यशास्त्र के लिए सर्वथा नवीन है। राजशेखर की इसी मौलिकता का प्रभाव परवर्ती आचार्यों पर स्पष्ट देखा जा सकता है। कतिपय आचार्यों ने इस सम्प्रदाय के कुछ विषय शब्दशः ग्रहण किये हैं।

चतुर्दश, पञ्चदश एवं षोडश अध्यायों में वर्णित कवि-समय को जिन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है, वे आचार्य हैं—१. जिनसेन, २. समर, ३. देवेश्वर, ४. केशव मिश्र, ५. हेमचन्द्र एवं ६. वाग्मट।

आचार्य हेमचन्द्र एवं आचार्य वाग्मट ने राजशेखर वर्णित अर्थव्याप्ति, हरण, देश-विभाग एवं काल-विभाग विषयों को शब्दशः उद्धृत करने में गौरव समझा है। परिशिष्ट में सलग्न सूची में यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी। यहाँ केवल अध्याय एवं पृष्ठों का निर्देश दिया जा रहा है।

विषय	काव्यमीमांसा राजशेखर	काव्यानुशासन- विवेक हेमचन्द्र	काव्यानुशासन- वृत्ति वाग्मट
काव्यार्थ व्याप्ति	अ० ८ पृ० ३५- ४१	अ० १ पृ० ५, ६, ७, ११	अ० १ पृ० ५, ६,
अर्थव्याप्ति	अ० ९ पृ० ४२- ४६	अ० ३ पृ० १२२, १२३	अ० ६ पृ० ६०- ६१
हरण	अ० ११-१२- १३ पृ० ५६ ६४	अ० १ पृ० ८-१०	अ० १ पृ० १२- १३
देश विभाग	अ० १० पृ० ८९ ९८	अ० ३ पृ० १२६- १३०	अ० १ पृ० ३-६
काल-विभाग	अ० १८ पृ० ९८ ११२	अ० ३ पृ० १३०, १३५	अ० ६ पृ० १५- ६७

राजशेखर एवं विश्वनाथ

काव्य-सुराज्य के अन्त-श्रवणों का निर्देश करने मन्दय राजशेखर ने राम की वाक्य की आना माना है। परवर्ती आचार्यों में विश्वनाथ भट्ट राजशेखर में व्यापारिक प्रभावित हुए। उन्होंने काव्य सतत में ही 'वाक्य रमात्मक वाक्यम्' कहकर रस की धनिवाजों को स्पष्ट किया है। राजशेखर द्वारा प्रणीत काव्यमीमांसा की समन्वयपूर्ण रचनाओं की अनुवृत्ति मन्दय के ग्रन्थ में उल्लेख होती है। आचार्य विश्वनाथ का नाम भी माहिन्द्राद्वय में समन्वयवाक्य प्रणाली की प्रशंसा करने के कारण उल्लेखनीय है। दोनों ही आचार्य राजशेखर के शिष्य हैं।

ही का स्थान ऊँचा उठरता है । परन्तु भर्तृमेष्ठ की एक मात्र कृति 'हयग्रीववध' अनुपलब्ध है । अतः सम्बृत साहित्य में हम उनका स्थान, अथवा राजशेखर में उनकी तुलना करने में अममर्थ है ।

भवभूति एवं राजशेखर : कहा जा चुका है कि राजशेखर अपने को भवभूति का अवतार मानते हैं । यह सत्य भी है क्योंकि 'बालरामायण' में महावीरचरित में ममानता रखने वाली इनकी अधिक पक्तियाँ उपलब्ध हैं कि लगता है कि भवभूति ही पुन राजशेखर के रूप में अवतरित हो गये हैं । कवि के काव्य-कौशल, अभिव्यञ्जना एवं शिल्प आदि पर भवभूति की छाप छाप दिखायी देती है ।

कालिदास एवं राजशेखर : राजशेखर ने कविवृत्तगुरु कालिदास के भावों को भी यथाम्थान ग्रहण किया है । जिनका निर्देश नाटक के प्रसंग में हो चुका है । कालिदास के काव्य में प्रायः कोमल तथा मलिन उपादानों की 'अभिव्यञ्जना' हुई है । प्रकृति-वर्णन में भी वे प्रकृति के मीमंसा रूप का ही चित्रण करते हैं । राजशेखर ने केवल मीमंसा का ही वर्णन नहीं किया अपितु वे प्रकृति के रौद्ररूप को भी झोंकी प्रस्तुत करते हैं । कालिदास व्यञ्जना-प्रिय है । राजशेखर अभिधा प्रेमी है । वे अपनी शाब्दी ध्वनि के ध्वनि मात्र में ही दुःख को नेत्रों से सामने उपस्थित कर देने की क्षमता रखते हैं ।

वाग्मीकि ने प्रेरणा पाकर, मेष्ठ की वक्त्रोक्ति को अंगीकृत कर तथा स्वयं को भवभूति में विलीन कर राजशेखर ने 'बालरामायण' की सज्जा की । इसके अनिर्दिष्ट नाटिका एवं मृदु नामक उपरूपक का भी उन्होंने प्रणयन किया ।

राजशेखर की उपलब्धि

सम्बृत-साहित्य में नाटिकाओं का शुभारम्भ श्रीहर्ष ने किया है । उनकी 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' परवर्ती नाटिकाकारों के लिए आदर्श बन गयी हैं किन्तु इन नाटिकाओं पर कालिदास के मातृविक्रान्तिमित्र की छाया स्पष्ट झलक रही है । इनके अध्ययन में विदित होता है कि अन्नपुर की प्रणयलीलाओं का उद्घाटन इनका प्रमुख लक्ष्य है । अतः अन्नपुर में सम्बन्धित पात्रों की सृष्टि एवं उनके कार्य नियत होते हैं । नायक-नायिका के अनिर्दिष्ट राजा-रानी के परिचारकगण, विदूषक, राज्य के कर्मचारी, मंत्री तथा स्त्री-पुरुषों में महादेवी की प्रमुख भूमिका के साथ दूतों, प्रतिहारों परिवारिका आदि का नियोजन किया जाता है । राजशेखर ने दम परिसरों का पालन किया है किन्तु प्रमथानुसार परम्परा में मौलिकता का भी आधिकार्यन किया है । हर्ष एवं कालिदास

ग्रन्थाय मे अलंकार-शास्त्र की पण्डित्य के समस्त प्रतिष्ठा, काव्य की पद्धति विद्या के रूप मे स्थापना, साहित्य की पञ्चमी विद्या मे गणना, काव्यपुरुष की अवतारणा, साहित्य विद्या-वधू द्वारा काव्य-पुरुष की खोज मे रीति-वृत्ति-प्रवृत्ति की गवेषणा, कवि की दिनचर्या, कवि-भेद, काव्यार्थ योनियो मे चार ग्रन्थ स्रोतों का प्रवेश, हरण एवं कविमय का विस्तृत विवेचन आदि समस्त विषय राजशेखर के उर्वर मस्तिष्क की उपज हैं । जिन विषयों का केवल सकेत-मात्र है, वे हैं— वैनोदिक एवं भौपनिषदिक प्रकरण । इनके सचेत मात्र से मौलिकता की प्रतीति होती है । इस प्रकार शास्त्रीय विमेषण मे राजशेखर ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

राजशेखर एक स्वतन्त्रचेता आचार्य थे । उन्होंने, भरत, कामन, उद्भट, रट्ट एवं आनन्दवर्धन की मान्यताओं को परिमाजित एवं प्रतिष्ठापित करने का अमसाध्य कार्य भी किया था । उनकी यह विशेषता उनकी समन्वयात्मक प्रणाली में दृष्टिगत होती है । आनन्दवर्धन ने प्रतिभा को ध्येस्वर माना है । वे कहते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों ही समान रूप से ध्येस्वर हैं । "प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथ समवेते ध्येस्यौ इति यायावरीय ।" इसी प्रकार रम के विषय मे पाल्यकीर्ति और अवन्तिमुन्दरी के विभिन्न मतों का उन्होंने मनुन समन्वय दिया है ।

कुछ विद्वान् एक लोक की, कुछ दो की, तीन की और कुछ तो सात से इक्कीस लोकों तक की बल्पना करते हैं । राजशेखर ने "नर्वमुपपन्नम्" कहकर सभी को स्वीकृति प्रदान की है । उनका जिस स्थल पर आचार्यों मे मतभेद है वहाँ वे स्पष्ट शब्दों मे अग्रहमति प्रकट करते हैं । वे किसी भी बात को अपनी तरफ़ुडि की बसौटी पर कमकर ही स्वीकार करते हैं ।

भरत मुनि को आचार्यत्व प्रदान करने वाला रम-सिद्धान्त है । किन्तु यह सिद्धान्त केवल नाट्य-रम से सम्बद्ध है । राजशेखर ने भरत मुनि के इस सूत्र पर रम-सम्प्रदाय का अव्य प्रसाद छोड़ करने की योजना बनायी । उन्होंने आचार्य भामह और दण्डी के आचार्यमय शरीर को काव्यपुरुष के रूप मे मूतं स्वरूप दिया है । वे कामन की रीति विषयक आन्यताओं मे महमत हैं तथापि उन्होंने रीति, प्रवृत्ति और वृत्ति के उद्गम की बल्पना प्रस्तुत कर कामन की रीति को और भी परिमाजित कर दिया है । साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र मे इसका महनीय कार्य

परिशिष्ट १

राजशेखर को पुनरुक्तियाँ

श्लोक	बान- रामायण	बाल- भारत	विद्वशाल- भजिवा	कपूर- मञ्जरी	काव्य- मीमांसा
१ अककणमकुण्डलम्			३११२	३१२६	
२. अनुकूल हिर्द्वेव	११५-६		४१२०-२१		
३. अयि पिबत चकोरा	५१७५		३११५		
४. आपन्नातिहर	१११८	११११			
५. आद्य बन्दो वेद-	१११८	११३			
६ उतालालक भजनानि	२१२३		२१५		
७. कण्ठे मौलिकदाम-		११२७	३११६		
८. कर्णे स्मेरशिरीषम्	५१२६				१८११११
९ गत स कालो	३१२				७१२१
१० गर्भग्रन्थीपु वीरघाम्	११२३		११२३		१८११०८
११. तद्वन्न यदि मुद्रिता-	२११७		१११८		
१२ तनुस्तना इव ककुमा			३१६		
१३ तरण्य दृशो मनाक्	३१२५		३१२७		
१४ दन्तोलूखनिभि	१०१५८	१११९			
१५ द्विर्लम्भांश्चि पुराण-			११११		१७११५
१६ धत्ते मरिचिग	७१३८, १०१				११६५
	८८				
१७ घृथा हि नाम नाट्यम्य	१११९-२०	१११३-१८			
१८. निर्यन्त्रागर जीवर्षाण-		११२७	२१२२		
१९. पातुधोन्नरमायनम्	१११७		११७		
२० पाणिप्रस्थर्षबन्धुल-	३१२९	११६५			
२१. प्रेयान् मे दन्तिदन्त-	८१११		६१२३		
२२. प्रथयति पात्रविशेषान्	११००	१११८			

२३. वभूव वाल्मीकि-	१११६	१११२	
२४. ब्रह्मोद्भ. शिवमस्तु	१११०	११५	
२५. मया मूर्ध्नि प्रहृते	६१११-		४१६
	१६		
२६. मयि शिशिरतरुः	११४-२७		४१५
२७. मूल बालघि वीरधाम्			४१५
२८. मादामि हे चरत	७१४५		१७१९६
२९. या स्त्रीणामपि	७१३९, १०१४६		
३०. यत्काल मगरेण	७१३९, ७१४३		१४१८०-
३१. यन्त्रावित-	३११४		८१
			१३१७१
३२. येमीमन्तितगाल-		११२	
३३. योगीन्द्रच्छन्दसा	११९	१११५	
३४. राजमूपभ्रतोयंजवा	२१७	२११३	१८१९९
३५. लम्पापीना किरल.	५१३५		
३६. वीराचण्डमिदण्ड	३१४८, ७१६८		
३७. धिय प्रमूले		११९	११८
३८. तमध्यायाम्याम्	११२८		८१६८
३९. सपदि लखीनिभूतम्	५१४१	११२४	
४०. मद्यश्चन्दनपक-	१०१४०	३१२	
४१. साम्य सम्प्रति	५१४०	११२५	१८१७७-
			१०९
४२. मूत्रधारचलद्-	५१६, ७१७७		
४३. सीघ्रादुद्विजते	५११०	३१२	
४४. हारोऽय केरल-		२११५ १११७	

२ अन्य ग्रन्थो मे राजजेलर का उल्लेख तथा उद्धरण .

(१) अभिनवभारती . अभिनव गुप्त

१ यथा बानरामायणे इत्यादिना ।

२ राजजेलरेण युक्तामित्यर्थ ।

३ जगुह्यय महम् इत्यादी

अ २ पृ० ३२०

घ २ पृ० २९५

ङ १ पृ० २९

(२) वशादपक : घनजय

१. अतद्भूत मिय. स्त्रोत्रम्	३-१५
२. घानन्दो यथा विद्वशालभजिकायाम्	४-५३

(३) दफोदितजीवित कुन्तक

१. अयि पित्रत चकोरा-	१८१
२. अस्मत् भाग्यविपर्ययात्	६७
३. अज्ञा नाशिशिवाभणि-	१९९
४. आन्दोल्यन्ते वति-	४८६
५. आयं प्याजिमहोत्सव-	१३३
६. आ ममारं कई	१९७
७. इत्युद्गते शशिन	२६४
८. इन्दुतिप्त इव	४९७
९. एकागाम्	७१, ३२१
१०. कर्पूर इव दाम्भीर्जप	४२३
११. गर्भघनयीषु धीरघाम्	३०१
१२. ताम्युलीनद्वभुम्भ	१८०
१३. दाहोम्भ प्रसूतिपत्र	७२, २४६
१४. नमस्वता वासितवल्प-	२५४
१५. निष्पर्याय निवेण-	१७६
१६. वद्धस्पशंस्त्व	२७६
१७. मध्येऽङ्कुरपत्तवा	७६
१८. पाडिभि मन वपु	७६
१९. मात्रिप्टीवृत्त	४३८
२०. मैयिली तस्य दारा	७७, ८२
२१. यस्वारोपण कर्मणि	२५३
२२. रुद्रादेस्तुलनम्	३१
२३. शाम्भवाणि चतुर्नव	२७९
२४. मद्य पुरीपरिमदे	४९
२५. गवन्धी रघु-	२०७
२६. सभूनिद्रुहिणान्वये	२००

२७. हे नामराज	१८८
२८. हेनाथमत	४४४
२९. शाश्वतार्थमिच्छुः—	८४
३०. गमेन भुग्धमनसा	४३८

(४) मरुत्तरीयशतकम्—भोजराज

१. मरुत्तरीय शतकम्—	७२१
२. मरुत्तरीय शतकम्.	४४४
३. मरुत्तरीय शतकम्	४४४
४. मरुत्तरीय शतकम्	३२४
५. मरुत्तरीय शतकम्	३३६
६. मरुत्तरीय शतकम्	४४४
७. मरुत्तरीय शतकम्	४४४
८. मरुत्तरीय शतकम्	११३
९. मरुत्तरीय शतकम्	११६
१०. मरुत्तरीय शतकम्	२४१
११. मरुत्तरीय शतकम्	६९३
१२. मरुत्तरीय शतकम्	३०६
१३. मरुत्तरीय शतकम्	१६५
१४. मरुत्तरीय शतकम्	४६३
१५. मरुत्तरीय शतकम्	३६९
१६. मरुत्तरीय शतकम्	१७५
१७. मरुत्तरीय शतकम्	७४
१८. मरुत्तरीय शतकम्	६३१

(५) शृङ्गारप्रकाश . भोजराज

१. शृङ्गारप्रकाशम् भोज श्रीर शौचित्य	१२७
२. शृङ्गारप्रकाशम् भोज and वक्रोक्ति	
३. शृङ्गारप्रकाशम् भोज's Conception of रमा's in the	
शृङ्गारप्रकाशम्	४९३
४. शृङ्गारप्रकाशम् भोज श्रीर मादयशाम्	६००

५.	वभूच वन्नीकिभवः Authors and works quoted in शृ. प्र. ७८५	
६.	निर्दोषदशमः Authors and works quoted in शृंगारप्रकाश १८२	
७	उक्तिविशेष वाक्यम्	१०५
८.	पर्यायशेषास्त-	१०७
९	वच्छेमी	२०१
१०.	केचित्	२९५
११	तथा हि	५४१

(५) औचित्यविचारचर्चा—शेमेन्द्र

१.	ज्यायान् धन्वी	१९१
२	वर्णादीदशनाकिन-	१५३
३	पीतम्य प्रणयेन	११८
४	माया मुचय-	९३
५	स्त्रीणा मध्ये मन्त्रिलम्	६३
६	विताचक चन्द्र	४३
७	एतस्या हसर-	३५
८	यत्पर्वतीहठ-	२७
९	समधी पुर-	१९
१०	माले शौर्यमहोत्पन्नस्य	२०

(६) कविकण्ठाभरण . शेमेन्द्र

१	नखदन्तितहरिद्राव	१०७
---	------------------	-----

(७) काव्यप्रकाश भम्मट

१	ये लवागिरिभेद्यना-	४१६८
२	अलामीन् फणिपाश-	५१११५
३	पूतलूकूर वनेमकूर-	७१३१०
४	आज्ञा शत्रुनिष्क्रामाणि-	७१२७९
५	राममन्मथशरणे	७१२५५
६	ममृणचरणपादम्	७१२२७
७	आपाचार्ये स्तिपुर-	७१२०२
८	वर्षूर इव दम्भोदयि	१०११०७
९	मह दिप्रहृतिताहि	१०१११२
१०	वपाने मार्जार	१०११३२
११	दशा दग्धम्	१०११३८

(८) अलंकारसर्वस्व : रय्यरु

१. इन्दुलिप्त इव	१९२
२. इन्दोर्लक्ष्म	२०८
३. कर्पूर इव	२३५
४. चकोर्यं एव	११९
५. दाहोऽम्भ. प्रमृतिम्पच	१०७
६. दृशा दग्धम्	२५८
७. न्यचतनुश्चित—	२९४
८. पृथ्वि स्थिरा भव	२०३
९. लोकोत्तरं चरित—	२०२

(९) काव्यानुशासन वाग्भट

१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थं योनि)	मध्याय	१	५,६
२. प्रकृति (अर्थव्याप्ति)	"	४	६०,६१
३. हरणम्	"	१	१२,१३
४. कविसमय	"	१	७ से १२
५. देश.	"	१	३-४
६. काल	"	४	६५,६७

(१०) काव्यानुशासन . हेमचन्द्र

१. व्युत्पत्ति (काव्यार्थयोनय)	"	१	५,२८
			३०,१६,१७
२. प्रकृति (अर्थव्याप्ति)	"	३	१२२,१२३
३. हरणम् (उपजीवन शिक्षा)	"	१	८,१०
४. कविसमय	"	१	११ से १६
५. देश	"		१२६,१३०
६. काल	"	३	१३०,१३५

(११) काव्यकल्पलता . शरिसिंह एव शमर

१. कविसमय	३०,३१
-----------	-------

(१२) अलंकारचिन्तामणि . जिनमेन

१. कविसमय	७,८
-----------	-----

(१३) काव्यकल्पलता—देवेश्वर

१. कविसमय	४०,४२
-----------	-------

(१४) साहित्यदर्पण - विश्वनाथ

१. सप्त. पुरीपरिमलेऽपि	३१९४
२. भो सकेश्वर	३१२४
३. आहारे विरति.	४१९०
४. श्रवणं. पेयमनेकं.	६१२०
५. कालरात्रिकरानेऽथम्	६१२०७
६. घत्रामीन् पणपाण-	६१२०८
७. चापाचार्यस्त्रिपुर-	७१८
८. उदम्बच्छन्ना भू	७१९९
९. माता शत्रुशिष्टामणि-	१०१३६,९०१५
१०. दशादश	१०१३६,९०१५
११. चकार्य एव	१०१६९
१२. इन्दुलिप्त इव	१०१५८
१३. पृथिवि स्थिरा भव	१०१६९
१४. तद्वन्न मदि	१०१८३

(१६) अलङ्कारमहोदधि लघ्वे प्रथमसूरि

१. माता शत्रुशिष्टा-	१५७
२. आहारे विरति	२६६
३. इन्दुलिप्त शत्रुशिष्टा	७०
४. इन्दुलिप्त इव	२८३
५. इन्दुलिप्त इव	२९९
६. इन्दुलिप्त इव	१३३
७. उदम्बच्छन्ना भू	७३३
८. कपाले भार्गव	७४८
९. चकार्य एव	७४८
१०. चापाचार्य	७५८
११. चित्रे चतुर्दश	१३७
१२. उदम्बच्छन्ना भू	१३८
१३. तद्वन्न मदि	१३८

१३.	दृशा दग्धम्	३०३
१४.	गाहन्ता महिषा	१३४
१५.	निर्माल्य नयनश्रिय.	९७
१६.	फूल्लूवकर कलमकूर	१७०
१७.	अचचन्द्रकोटिकर	१९५
१८.	श्यामा श्यामलोमान.	८४, १६१
१९.	सवधी रघु—	२४४
२०.	श्रोणीबन्ध—	३०२

(१५) अलंकार कोस्तुभ . विश्वेश्वर पण्डित

१.	अकुकुममचन्दनम्	३१३
२.	इन्दुलिप्ता इव	२८७
३.	दूरे किञ्चिद्	३९१
४.	दृशा दग्धम्	४०८
५.	पर जोण्हा	३२२
६.	यद्धोताजन—	३५२
७.	किसलयकरण—	३३२

(१६) कुबलयानन्द . धण्यदीक्षित

१.	इन्दोर्लदम	२३१
२.	दृशा दग्धम्	१७३
३.	श्रोणीबन्ध	१८०
४.	मुधावद्ध—	४६

(१७) चित्रमोमाता . धण्यदीक्षित

१.	मुधावद्ध—	१६३
२.	स. व पाषादिन्दु	२७६
३.	दाहोऽम्भः	३२०
४.	कपाले भार्जार	२५२
५.	अस्मद्वित्रम—	२४१
६.	इन्दुलिप्ता इव	

३. राजशेखर द्वारा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	वाक्यमीमांसा पृष्ठ संख्या
१ ऋग्वेद	—	६, २८
२. अग्निजान शाकुन्तलम्	कालिदास	१२, २४
३ रघुवशम्	कालिदास	१२, ४१, ७६, ८५
४ कुमारसंभवम्	कालिदास	१२, ४०, ४४, ४८, ८१, ८४, ९६
५. बेणी महारम्	भट्टनारायण	१९, ३२
६. एतरेय एव जलपथ		२५, ३५
७ निरुक्तम्		२८
८ किरातार्जुनीयम्	भारवि	३२, ५८, ७०, ८५
९ महानारायणोपनिषद्	—	३५
१०. सूर्यशतकम्	मयूरभट्ट	३५, ९५, ९९,
११. विजयमोर्षमीयम्	कालिदास	३५
१२ रामायणम् (विष्किन्वा- बाण्ड)	वाल्मीकि	३६
१३ जानकीहरणम्	कुमारदास	३६
१४ बाणपुराणम्	—	३६
१५ शिशुपालवधम्	बाण	३६, ४२, ४२, ४४, ६०, ८६
१६ भगवद्गीता	व्यास	३७
१७ महिम्न स्तोत्रम्		३७
१८ वामगुप्तम्	वाल्मीयन	३९, ६७
१९ मालतीमाधवम्	भवभूति	६८, ८६
२० अमरकान्तकम्	अमरक	४७
२१ वृन्दावन यमकवाच्यम्		५७
२२. नारदामुनि		५९
२३ गोवन्दो	वाकानिराज	६२
२४ विजयवा		६७
२५. कादम्बरी	बाणभट्ट	७६, ८८
२६. मेघदूतम्	कालिदास	८६, ९६
२७. ऐतिहीन महिना		९९

४. राजशेखर.के नाटकों के सुमापित

प्राकृत-सुभाषित

१. अण्णैण्णमितिदस्म विद्युणस्म मग्गरद्धमसामणेण पळ्ळ पणघण्णठि प्रेम्म ति छइल्ला भगनि ।
२. अण्ण णिमित्तमिह कि पि तमरिय मण्णे जेणवणाघो हिमहिहिण ओमनि ।
३. अहिदेवघ व्य णिवमइ तह विहु तारुण्णाए सच्छी ।
४. धारभरमणिज्जाइ कल्माणाड होनि ।
५. अहवा वा वण्णणा वडनावसी मघभारवई
६. अदेव देवउल, अनववगे लेहो, जदो न सीमदि सा ।
७. एद त सीमे मण्णो देमतरे वेज्जो ।
८. कच्च अज्ज वि सो ज्जेव मिरिताली पत्तमवघो ताघो ज्जेव पक्खरपनीघो ।
९. को अण्णो चदाहितो समुद्वडण विघडो ।
१०. कि तुम भज्जाजिदो विघ किपि त्तिपि कुम्भुरामलो चिद्धामि ।
११. कि ण् कखु अणभिण्णमि कदप्पवरिमाण । अ दाणि णव णव कोउह्वन कामिजणे ।
१२. कि गदे मलित्ते मेदुवघेण कि वा वुत्ते विवाहे नक्खत्तपरिक्खाए ।
१३. कि उल्लेत्तदि केत्तिरदलीए करिणुण्डादडविदो ।
१४. कि विघ मक्कडो वरिद्धाण वरणिज्ज पुच्छदि ।
१५. कय महाभापघेअज्जणज्जसिद्धि विघ चिंतोवणदा पिमगही ।
१६. तुम भण दाव उण अह भणिम्म । पडिम महप्पारमवरी ।
उर्व्विज्जईपच्छा तु वन्नकटी मुह मिहिनेदि ।
१७. ण हु गोवाणवनिभतरेण वनही समारोहो ।
१८. भुणिणे वि एवमुमरति, पादाहितो बहण पत्तिपपनि मव्व ।
१९. तुम ज्जेव्व मव्वदो माग उन्निवमि । हसो ज्जेव जनेहि दुडमुदेरहि ।
२०. पुराणपत्तमणिवनिघ सो पल्लवो गमुल्लमदि । ण घ.तुण्णपट्टिवण
घक्कसी वग्गलणतुडो मंघहग्गिणे मदनवेदारिघाण घहिरमदि ।
२१. नेअई कुमुमवामिदम्म गदिरम्म अण्णे मंघुणागे ।
२२. ता मम विच्छुरदि तुण्डरच्छ ।
२३. पारधरमवुविघ विघ मृवण्ण मे मावण ।
२४. मने वन्नपट्टीण गुराणइममेघो कुमुमेमु मट्ठरागघुणागेनि ।

- २६ ण हि मिण्हो जुत्ताजुत्तमनुग्घेदि ।
 २७. कथं विम सहप्रारलद्वीण कन्वठा कुटिदप्पणया होदि ।
 २८ तहा वि भगीघदि, सुदमतमखणं वखु वग्गमिद्वीण कारणम् ।
 २९ कथं विम जीमनादो किकनामादो सिरमुवण पावीघादि ।
 ३०. ण कन्धु मिम्वलणमग्गीम धण्णेण समिक्कपुनमिमावद्धणिज्जरा
 वज्जरड ।
 ३१ ण विण च्च मेहानिधाण विममति कुमुमाड ।
 ३२. ता विरपाडदव्वा जुप्पमग्गरी दुड नि कज्जिध ।
 ३३ पोम्मराधमणि एव्व एमावनि धव्वकरेदि ।
 ३४ गहु धणुप्पी डिधो सहप्रारसिट्ठगी रत्तमव्वम् मूधदि ।
 ३५ एमो धव्वरो गहम्म उव्वरि कुटिउव्वेधो ।
 ३६ कोन्विण वा च्चदे एमादिदक्खे धाविमट्ठकदोद्धा नीलुप्पलिपी चिट्ठदि ।
 ३७ वर तक्खालोवग्गदा तित्तिरी ण उण दिम्वहत्तिग्गदा मीरी ।
 ३८ महि कोवग्गे ण सव्वो रामभद्दो णमरे णमरे केवेयी ।
 ३९ हत्थे कक्कण कि दप्पणेण ।
 ४० धावन्नरम् भुरगभम्म मिग्गत्तणे कि माविग्गणो पुत्ठीघनि ।
 ४१ ण वत्थुरिप्पा बुग्गामे वणे वा विवरीणघदि, ग मुवण वग्गवहिम
 विणा वमीघदि ।
 ४२ णिमगवग्गम् वि मागुत्तम् सोहा समुम्मीवह भूमभेदि ।
 ४३ गहु विट्ठभूमि अन्तरेण वेगलिममणिसत्ताया गिप्पजदि ।
 ४४ दक्खिग्गमो ण मट्ठरिग्गड मक्खग्गा ।
 ४५ हरिसत्तुग्गीव दिण वणट्ठा य ।
 ४६ दग्गिन्नामिधयणीमु पुणो विवमई मग्गद्वधरहम्म ।
 ४७ गित्तणदावग्गी विरमउ वयत्तावट्ठवत्थरिमेण ।
 ४८ र्ही वा छट्ठणा ।
 ४९ छेमा पुणो वयट्ठवविमभावणिग्गा ।
 ५० जादिमो चित्तधरो तादिमी चित्तधम्मरघमाहो, जादिमो कई तादिमी
 वव्ववन्धण भति ।

संस्कृत-शुभाशित

१. अग्निप्रमदा हि पुण्यकारा वर्णादानाम् ।
२. दमवज्जणे पुमां कि यदर्थं वनट्ठयनम् ।

३. सविष्णुविग्रह एव वायुविकारम्भाः ।
४. धनिर्वेदः मिद्रेर्मूलम् ।
५. अनुकूलं हि देव सर्वम् स्वस्ति नरोति ।
६. अविमृश्यकारिता हि पुत्रः परं परिमवस्थानम् ।
७. यव न पुन सर्वत्र सर्वे गुणाः ।
८. सुप्ततप्तकृपिताना हि भावज्ञान इष्टव्यम् ।
९. मरु मरुमिद वीर्यते दुस्त्यजा प्रकृतिरिति ।
१०. हन्त हन्त नैकप्रकारो मदन-व्यापारः ।
११. न प्राणनिर्वाणेश्यनुचितभावो भवन्ति भृत्याः ।
१२. प्रतिशान्ते वस्तुनि साक्षिप्रत्ययपरतन्त्रा व्यवहाराः ।
१३. आत्मवध प्रथम पातकेषु ।
१४. असतामपि महापुरुषसुभूषा किमपि रामदुषा ।
१५. आयुधनिषेध्या रिपवो न मामभाष्याः ।
१६. न विना हिमानोमबन्धो मार्तण्डः ।
१७. निरकुशा कविवाचः ।
१८. स हि चन्द्रनक्षोऽनुभावो यदस्य प्रावाणोऽपि निस्त्वन्दने ।
१९. न च सधेहदेहो बीरकननिर्वाहः ।
२०. अनाकनितसारा हिबीरप्रशङ्ग-प्रभूतिः ।
२१. सेय कवीना वचनरामधेनुः । यदमनभूतमपि मृते ।
२२. द्विन्धस्य दुक्लिप्तितानि मुदेगुरुणाम् ।
२३. न हि तरुणि निरणम्यर्शादन्यो व्याधिरिन्दीवरवनम् ।
२४. काललाभो हि नय विदा प्रयोगग्राम बदलयनि श्रवणे परतन्त्रा च वास-
सिद्धिः ।
२५. ईर्ष्यामिद हि स्त्रीणा प्रवाणक प्रेमभरस्य ।
२६. हि हि दुष्पर कायुमेते क्रियसाध्य वेदग्राम्यः ।
२७. भयमपरः शनैः क्षारावमेकः ।
२८. देवि, देव गित्यर्थः ।
२९. न. शक्तिमानपि मृगयन्मूर्ति शिला षट्के पिनष्टि ।
३०. मुप्तस्यापि महान् निनद प्रतिबोधहेतुः ।
३१. ग्रहो सर्ववैराग्याऽध्वनमायः ।
३२. न अन्वदस्थानमणे. प्रयावो बदवो द्रवनि ।
३३. विपत्त्याम् अन्वदनिस्तरिणी मार्तण्डमण्डनमन्तराणि ।

- ३४ परिपालना हि भूतान् स्वामिनः स्मरत्यति न गुणग्रामः ।
 ३५ सर्वो गुणेषु रज्यते न शरीरेषु ।
 ३६ प्रवृष्ट हि तपः कामदुघम् ।
 ३७ आनिष्यते भ्रातृपात्रे कयोऽपि सौमित्रं चन्द्रमा ।
 ३८ एकविषयाभिलाषो हि वैरज्जन्द वन्दलयति ।
 ३९ अनूवानो हि मद्वृत्ते मा स्वयम्भूः सरस्वती ।
 ४० यत्परमं मदिरा विनैव मदनो यना ममोन्मादभूः ।
 ४१ ग्रहो महारमनामपि वंशवानुसृष्टीता वृत्तयः ।
 ४२ संगमे न च सतां प्रवृत्तयः ।
 ४३ शरीरधना हि राजानः ।
 ४४ किञ्च एकस्मिन्पराङ्मुखेऽपि तत्तत्तद्विचारिणोऽप्यनगच्छतः ।
 ४५ आहूतिमन् गृह्णन्ति पुण्याः ।
 ४६ न प्रेम नप्य बहुनेऽनरायम् ।
 ४७ वैषम्यमेव वा विष विपत्त्यः ।
 ४८ न चित्तशिक्षणं हि दाम्ना विना चकास्त्युद्योषी ।
 ४९ जेष्ठमुखा एव जेष्ठवाहा भवन्ति ।
 ५० को हिनाम धूतजितानामुद्रिकेन यौपूर्वेण ।

नाट्यकृतिषो भे प्रयुक्तं छन्दः

	बाल- रामायण	भाग- भारत	कर्पूर- वज्री	विद्विषाच- भविष्य	सख्या
१. शार्दूलविक्रीडित	२०८	४१	७४	३९	३१२
२. वसन्ततिलका	१६३	२५	२३	११	१२२
३. मनुष्युध	१२८	२५		३	१५६
४. लघुधरा	९४	१७	११	१०	१२७
५. मन्त्राकाम्ना	६९	५	५	३	८२
६. मालिनी	३८	५	७	१२	६३
७. प्रध्या	१६	२	३२	१२	६२
८. पूषी	॥	७	७	६	२७
९. रघोदत्ता	१	१२	९		२२
१०. इन्द्रध्वजा	१	१	४	५	१९
११. वसन्ध	१३	१	१	१	१६
१२. उपनाति	८		७		१५
१३. पुष्पिताषा	॥		२	२	९
१४. उपेन्द्रध्वजा	३	..	३	२	८
१५. स्वागता	१	..	४	१	६
१६. शान्तिनी	४	१	१	..	६
१७. मित्ररिणी	४	..	१	..	५

१८. हारिणी	..	२	१	..	१	४
१९. प्रहपिणी	..	४	४
२०. रुचिरा	..	३	३
२१. गीति	..	१	..	२	२	५
२२. उपगीति	..	१	..	१	१	३
२३. हरिगीति	१	१

भालभारत

छन्दो विवरण

छन्द का नाम	अंक १	अंक २
१. शार्दूलविकीरित ..	२, ५, ६, ११, १६, १९, २२, २३, २६, २७, २९, ३३, ३४, ३५, ३८, ५०, ५२, ५५, ६२, ६२, ७०, ७१, ७७, ७८, ८२, ८५ ।	२, ५, ८, १०, ११, १४, १७, २३, २७, २९, ३१, ३४, ३९, ४३, ५० ।
२. वसन्ततिलका ..	३७, ४१, ४४, ४७, ४९, ५३, ५७, ५९, ६८, ७२, ७४, ७६ ।	९, २२, २४, २५, २६, २८, ३०, ४१, ४५, ४७, ४९, ५३, ५४ ।
३. मनुष्टुभ् ..	१, ४, १०, १५, १८, ३६, ४०, ४३, ४६, ६१, ६४, ६७, ८१, ८६, ८८ ।	७, १२, १३, १६, १८, ३२, ३५, ३६, ४२, ४४ ।
४. रघोद्धता ..	८, २४, ३९, ४२, ४५, ४८, ५१, ५४, ६०, ६३, ६६, ६९ ।	..
५. शङ्करा ..	२५, ७३, ७५, ८४ ।	१, १५, ३६, ३८, ४६, ४८, ५१ ।
६. पृथ्वी ..	३१, ८९ ।	३, १९, २०, २१, ५२ ।
७. मालिनी ..	६, २१, ३२, ४६, ८०, ८७ ।	..
८. मन्दानान्ता ..	२८, ६५, ७९, ८३ ।	४० ।
९. उपेन्द्रवज्रा ..	९, २० ।	..
१०. शार्वा ..	१०, १४ ।	..
११. इन्द्रवज्रा ..	१७ ।	..
१२. हारिणी ..	३० ।	..
१३. वगस्प ..	१२ ।	..
१४. शादिनी ..	३ ।	..

[illegible]

१०. मन्दोद्भान्ता	२४, २५.	१०-	१
११. पुष्पिताम्रा	..	६, ४२.	..	५.	२
१२. गीति	..	४, ५.	३
१३. वक्रस्य	४
१४. उपगीति	१८.	..	५
१५. स्वापता	२६.	..	६
१६. हरिसीति	११.	७
१७. हारिली	८.	..	८
१८. उषेन्द्रवज्या	..	८.	२०.	..	९
	१०
	११
	१२
	१३
	१४
	१५
	१६
	१७
	१८
	१९
	२०
	२१
	२२
	२३
	२४
	२५
	२६
	२७
	२८
	२९
	३०
	३१
	३२
	३३
	३४
	३५
	३६
	३७
	३८
	३९
	४०
	४१
	४२
	४३
	४४
	४५
	४६
	४७
	४८
	४९
	५०
	५१
	५२
	५३
	५४
	५५
	५६
	५७
	५८
	५९
	६०
	६१
	६२
	६३
	६४
	६५
	६६
	६७
	६८
	६९
	७०
	७१
	७२
	७३
	७४
	७५
	७६
	७७
	७८
	७९
	८०
	८१
	८२
	८३
	८४
	८५
	८६
	८७
	८८
	८९
	९०
	९१
	९२
	९३
	९४
	९५
	९६
	९७
	९८
	९९
	१००

सामान्य १

छन्द का नाम	मं. १	मं. २	मं. ३	मं. ४	कुल
१. गार्तुलविभीषित	१, १३, १६, १७, १८, २०, २६, २९.	१, ३, ८, २७, २८, २९.	१, ३, २५, २७, २८, २९.	५, १, २२, २३.	२४
२. मन्दोद्भान्ता	१०, २३.	२, २३, ३०.	५
३. वसन्ततिलका	१४, १९, २१, २४, २५, २७.	४, ५, ६, २६.	१०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, २२.	५, ८, २९.	२३
४. सगंधा	४, १५, २६.	१०, २८, ३१, ३२, ४०.	१९, २८, २९, ३०.	३०.	२

राजशेखर की सूक्तियाँ

(गुभागिन पन्था में)

शिव-विष्णु प्रार्थना

वद्वडापंजट मन्त्रमुकुटं वरुचन्द्रमन्दारयो
पणे धाम च दाम च तिमिरगतकुन्देनुनीर्वाधयो ।
तन्त्रद्वाराद्वारयाङ्गसगविषटं धीरष्ट वीरुष्टयो—
बन्धे मन्दिमहोशताभ्यंगिपन्नामाद्भुतं वपु ॥

(१)

शिव-नृत्य

धाम्याङ्गभराणि भामिचलननमस्त्रुमंभुम्मीनमानि
मुदयत्ताराणि रिष्टमद्वरिगधरानर श्रेणिगीर्णदं दूतानि ।
दिक्कीर्णाश्रयणि द्वयदमरचमूषत्रचचद्वियन्ति ।
व्यस्तन्तु व्यापदं वात्रिपुरविजयिनम्याङ्गवा रम्भणानि ॥

(२)

शिवभक्त-शोभी चन्द्र

त य. पायादिन्दुर्नवविममनावोटिकुटिमः
रमरारेयो मूर्ध्नि ज्वनननपिशो भाति निहितः ।
रवन्मन्दारिण्या. प्रनिद्रिवससिक्तेन पदता
नपानेनामुक्तः स्पर्ष्टिचपवनेनाङ्कुर इव ॥

(३)

गौरी (विवाह के अवसर पर)

गोनासायनियोत्रिनामदरजाः गर्पाय बद्धोपधिः ।
कण्ठस्याय विषाय वीर्यमहतः पाणी मणीन् विभ्रतो ॥
भर्तुर्भूतगणाय योवज्ररतीनिदिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षात्वद्रिगुना विवाहममये प्रीता च भीता च यः ॥

(४)

श्री राम

मानेष्टकनुत्तप्रकाण्ड निलहस्तेलोत्तरक्षामणि
विश्वामित्र महामुने निरुपधिः शिष्यो रघुग्रामणो ।
रामस्तान्द्रित ताडय विमपर प्रत्यक्षनारायण
कौशल्यानयनोन्मथो विजयते भूषणपस्यात्मजः ॥

(५)

लक्ष्मी

- प्रवीरहृठभोग्यापि जयति धीमंहासती ।
कृत्स्नत्रैलोक्यवासापि कृष्णोर. स्थलशायिनी ॥१॥ (६)
- विष्णुवधोगृहे लक्ष्मीरस्ति कौस्तुभदीपिके ।
पुनातुनिवसन्ती वो दूढदो स्तम्भतोरणे ॥२॥ (७)

लक्ष्मीभृङ्गार

- मिथ्याकण्डूनिताचीकृन्मल सरणिर्ये जातो मरमा
न्येनिद्रा नाटमट्म शवनफणिफणैलक्षिता न श्रुतारच ।
ये च ध्यानानुबन्धच्छनमुकुलदृशा वेद्यमा नैव दृष्टा ।
स्तो लक्ष्मी नमैयन्तो निधुवनविधय पान्तु वो माघवस्य ॥ (८)

कविप्रशंसा

- मरस्वतीपवित्राणा जातिस्तत्र न देहिनाम् ।
व्यासस्पर्धी भुक्तालोऽऽभूद्द्रोणो भारते कवि ॥ (९)
- हृता शिखिनि गौणाद्या स्तोक शेषाऽपि साक्या ।
गुरुरीद्रेन्दुनेत्रेव तंके पूज्यतमाऽभवत् ॥ (१०)
- स्वस्ति पाणिनयो तस्मै यस्य रत्नप्रसादत ।
भादौ व्याकरण बाध्यमन् जाम्बवती जयम् ॥ (११)
- भाम नाटकचम्रेऽपि च्छैकै क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वजवाप्तवदत्तस्य दाहकौभून् न पावत् ॥ (१२)
- तो भूद्रककपावारी रम्यी रामिनोमिलौ
बाध्य यथाऽंघोराभीरप्यनारीभरतोरामम् ॥ (१३)
- पृथिव्या ग्रथिता गाथा सातवाहनभूभुजा ।
व्यदपुस्तेतु विस्तारमहो वित्र परम्परा । (१४)
- मरस्वतीव शार्गाटी विजयाहा जयत्यमो ।
या वैदर्भगिरा वाम वानिदामाश्रितन्तरम् ॥ (१५)
- भादौ गणपति धन्दे महामोर्दविषादिनम् ।
विद्याधरमणैर्यस्य पूज्यते वष्टयजिनम् ॥ (१६)
- दूरादपि सता चित्रे विगिन्नाश्रयंमञ्जरीम्
कुलजेगारवर्माऽभ्या चकाराश्रयमञ्जरीम् ॥ (१७)
- मनुप्राप्तिनि मन्दर्बो गोतन्दमम कुन ।
यथाधेनापर्वशाय्य यद् वाग्दर्शा नागनाम् ॥ (१८)

- सयोऽम्भयन्त्रयो देशास्त्रयो वेशास्त्रयो गुणाः ।
 त्रयो दण्डप्रवन्धराश्च त्रिषु सांकेषु विधुनाः ॥ (१९)
 मायुरात्रसमो जज्ञे नान्यः वत्तचुटिः कविः ।
 उन्मत्त गमुत्तस्युः शनि वा तुहिनांशकः ॥ (२०)
 जानकीहरणं वक्तुं रघुवने स्थिते सति ।
 कविः कुमारदामश्च रावणश्च यदि क्षमः ॥ (२१)
 पार्थिव्य मनसि स्थानं लेभे नपु मुमद्रया ।
 रथोना च वचोवृत्तिचातुर्येण मुमद्रया ॥ (२२)
 शीलामट्टारिरावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि ॥ (२३)
 के वैवटनितम्बेन गिरा गुम्फेन रजिता ।
 निन्दन्ति निजवान्तावा न मौढ्यमधुर वचः ॥ (२४)
 वातंजरगतिरश्चक्रे भौमटः पचवाटकीम् ।
 प्रायः प्रवन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशावनम् ॥ (२५)
 महो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातंरदिवाकरः ।
 श्रीहृदंस्या भवत्सभ्यः समो वाणमयूरयो ॥ (२६)
 हरे कविमृज्जगता यता श्रवणयोचरम् ।
 विपविदेव मामूरी मामूरी वाक् निकृन्तति ॥ (२७)
 मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे ।
 इनीव स हृतो धात्ता कविरत्नाकरोऽपटः ॥ (२८)
 वक्तुं त्रिलोचनादभ्यो न पार्थविक्रम क्षमः ।
 तदर्थः शक्यते शृष्टुं लोचनद्वयिभिः कथम् ॥ (२९)
 द्विमग्याने निपुणता स ता चक्रे धनञ्जयः ।
 यया जात फलं तस्य सता चक्रे धनञ्जयः ॥ (३०)
 सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानाच विसासभू ।
 प्रभुदेवी कविवर्षाटी गताग्रि हृदि तिष्ठति ॥ (३१)
 वाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदत्रयम् ।
 प्रायः कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र वारणम् ॥ (३२)
 भासो रामितसौमिकौ वररुचिः श्री साहस्रकः कवि
 र्माधो भारविकानिदासतरणा स्तन्ध सुबन्धुश्चपः ।
 दण्डी वाच-दिवाकरौ वणपति वान्तश्चरत्नाकरः ।
 गिह्वा यम्य सरस्वती यदि भवेत्ते तस्य सर्वोऽप्यमी ॥ (३३)

- एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न वेमचित् ।
 भृङ्गारे सनितोद्गारे कालिदासवयो किम् ॥ (३४)
- सहस्रचरितारब्धाद्भुतकादम्बरीकथा ।
 बाणस्य बाण्यनाथेव स्वच्छन्दा भ्रमति श्रितौ ॥ (३५)
- कृत्स्न् प्रबोधकुट्टाणी भारवेरिव भारवे ।
 माघेनैव च माघेन कस्य न जायते ॥ (३६)
- वज्रोक्त्या मेष्ठराजस्य बह्व्या मृण्मयताम् ।
 भाविदा इव धुन्वन्ति मूर्धनि कविकुञ्जरा ॥ (३७)
- ध्वनिनातिगभीरेण नाभ्यस्तत्त्वनिवेशिना ।
 भावन्दर्पणं कस्य नामोदानन्दवर्धन ॥ (३८)
- शाबावरकुलश्रेणेर्हारीत्यष्टेश्वमण्डनम् ।
 मुक्कण्ठगन्धर्वाचरस्तरणं स्तरणो यथा ॥ (३९)
- मकालजनदरलोकेरिवज्रात्मदृष्टंस्त्रि ।
 जात कादम्बरीरामो नाटके प्रवर कवि ॥ (४०)
- ग्रथालजलदेन्दो सा हृद्या बचनवन्दिका ।
 नित्य कविकवीर्ष्या पीयते न च ह्रीयते ॥ (४१)
- नदीना मेकलमुता नृपाणा रणविग्रह ।
 कवीना च मुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डलम् ॥ (४२)

सत्पुण्य प्रशंसा

- उदन्वच्छन्ना धू त च निधिरपा योजनगतं
 सदा पान्य पूपा गन्धपरिमाण गणयति ।
 इति प्रायो भावा स्फुरदवधिमुद्रामुत्तिना.
 सता प्रशोन्मेष पुनरयमसीमा विजयने ॥ (४३)
- नून दुग्धाब्धिमन्बोत्पाविमौ मुजन्दुर्जनी ।
 विस्त्रिबन्धो भोदर पूर्व. नानकूटस्य चेपर । (४४)

श्री

- दृशा दृष्ट्य भवतिज जीवयन्ति दर्शय मा ।
 किष्कादस्य अपिनीगता स्तुते वाममोचना. ॥ (४५)

सतीवर्णन

- ग्राम्युत्थानमुपायने गृह्यन्तौ तद्भाष्ये नम्रता
 नन्दादापिनृष्टिगमनविप्रिम्बन्तोपवर्षा स्वयम् । (४६)

मुपेत तस्य भयोत्त तत्प्रथमतो जह्यान्व मय्यामिति
 प्राच्यं पुत्रि निवेदिता कुनयधूमिज्जन्मधर्मा धर्मा ॥ (४७)
 निर्यामा दयिने ननान्दपु नता श्वधूपु भक्ता भव
 स्निग्धा बन्धुपु यत्नया परिहने स्मेरा सप्तस्त्रीध्वनि ।
 पादमिषजने मनसंबचना गिन्ता च तद्देहिपु
 स्त्रीणां सबनवं ननधु तदिद वानोपधं ननुपु ॥ (४८)

पश्चिमी प्रदेश की स्त्री

यंत मचरितु तरङ्गरत्नधनेशमालोकिन्
 रम्यं स्वातुमनादराकिनमनोमूद्रं च सवापिनुम् ।
 मन्वग्योऽजयिनीमनोविद्वदिन् ह्यं च सङ्कारने ।
 प्रयङ्गापेनगुन्दं च न जनो जानाति रन्तु पुर ॥ (४९)
 प्रपञ्चनकानानन्दे पाचासीरेविवर्मणि ।
 तर्कान्तमोक्षं सधने मम कुगुमज्जर्ब ॥ (५०)
 चरोर्य एव यनुराधेन्द्रिवापानकर्मणि ।
 प्रावमय एष निपुणाः स्त्रियः पुग्नतमंणि ॥ (५१)
 तादृक्कृत्यनतराङ्गन गण्डमेख-
 मानाभितम्बिदरदोमिनतारहारम् ।
 आधोणि-गुत्प-वमिण्डमिनोत्तरीय
 वैशं ममस्यत सहोदयमुन्दरीणाम् ॥ (५२)

उत्तर-पूर्व की स्त्री

महाद्वन्दनकुचापितगूळहार-
 मीमन्तकुम्भितिचयस्फुटवाटूमूल ।
 दुर्वाप्रकाण्डरचिरामु गुरदयोगो
 गीडाङ्गनापु चिरमेय चकान्ति वेषः ॥ (५३)

दक्षिणात्य स्त्री

भामूलतो बलितकुन्तल चारुवूड
 धूर्गानिकप्रकरलाञ्छितभालभाग ।
 कुरानिवेशनिविडीकृतनीविरेप
 वेषविचर जयनि कुन्तलकामिनीनाम् ॥ (५४)
 नेवयात्राशरोपैस्तयम्बरस्थापि तादवी ।
 धूनता द्रविडस्त्रीणा द्वितीय नामकार्मुकम् ॥ (५५)

नायिका
(विषिदुषारङ्ग-वीवता)

पद्म्या मृक्तास्तरसमय मथिता लोचनाभ्या
शोणीनिम्नं त्यजति तनुता सेवते मध्यमाय ।
पत्ते वलः कुचमधिवतामद्वितीयं च वस्त्रम्
तद्वाद्याभा गुणविनिमय वरिष्ठो यौवनेन ॥ (५५)

युवती

तरलीवाङ्मनि म्पूरदमनसावश्य-जलधी
प्रथिम्न प्रागन्म्यं स्तनजघनमुन्मुडयति च ।
दृशांतीतारम्भा स्फुटमपवदन्ते वरपता—
महो मारहाध्यास्त्वर्षमनि पाण्ड-परिवय ॥ (५६)

मुग्धा

ध्रुवमुवघिनटीषु वन्द्यपरमा
बहुदिततनुचर्मैर्भषणि काञ्च्य ।
इह हरिषदृश कर्मैर्दीपै
विदधति मीति कनदामिश्रय हरयत् ॥ (५७)

ललित विरहिणी

घाहारे विरति समस्तविषयशान्ते निवृत्ति परा
भाग्यं नयन घटनदपर ध्वञ्चनान मन ।
मोन वेदमिदं च ब्रूयन्मित्रं यद्विधवाभारि ते
मङ्गुमा लघि योगिनी निमनि भो किं वा विषोदिव्यनि । (५८)
मत्तालोदनपावपाण्डुवदन यन्नेद्योर्दुर्दिन
वष्ट, पाणिनिपेवणाञ्च यदप्यं मवान्-मद्याङ्गुनि ।
मीरी प्रुध्यन्तु वनं यदि न मे तन्वोपि चित्ते युवा
धिर्यिधुः स्वा मरुपाशुपंतन-मग्रीवर्षेण यन्निद्रय ॥ (५९)

नायिकायमन

निनन्दगुर्वा बहूश श्रमेण
विधाय मोक्षानन्देषु वारिन् ।
बायोवरावन्दिनवामपानि
रुधाय हृदये वरपाङ्गो ॥

(६०)

विरहिणी रोदन

मुक्तमङ्गलं कुसुमविजिह्वान्पञ्च चूर्णाकृताया
 म्मन्ये भुग्वां प्रहरति हठात्पत्रिणा वारणेन ।
 वारां पूरुः कथमितरथा स्फारनेत्रप्रणाभी
 वज्रोदाहस्तिवस्तिविपिने भारणी-साम्यमेति ॥ (११)
 पद्ममन्त्रे स्वनिवा, वपोनकनके तोलं सुटस्त, शय
 धारामास्तरलोच्छन्नतनुवणाः पीनस्ननाम्फाननाद् ।
 कस्माद् ब्रूहि तवाम्बु बभ्रुविगमन्मुक्तावतीविभ्रम
 विभ्राना निपतन्ति बाष्पपयसा प्रस्यन्दिनां विन्दवः ॥ (१२)

उपालम्भ

चन्द्रोपासम्भ

प्रियविरहमहोष्णान्मुमुक्षुरामङ्गनेता-
 मयि हतकहिमाशो मा स्पृश श्रीङ्गयाणि ।
 इह हि तव सुष्ठु प्लोषभाव ममन्ते
 हरजरटमृणाली-काण्डमुग्धा मयूरा ॥ (१३)
 मूर्तिदुर्गसमुद्रतो भगवतः धीरोन्तुभी मौरी
 सौहार्दं कुमुदाकरेषु किरणा पीयूषधाराविर ।
 स्पर्शा ते वदनाम्बुर्नर्मगुग्धा तत्स्वाशुचूषामणे
 ह्यो चन्द्र कथं न मुञ्चमि मयि ज्वाणामुचो वेदनाः ॥ (१४)

भदनोपासम्भ

धनुःश्याममी शरा मममि मे मन्ता, मम पञ्च ते
 निर्दोषं किरह्यामिना वपुरिदं तीरेव माघं मम ।
 बरु नाम निराधुषोपि धवना जेतुं न शक्यो ज्यो
 दु यो स्वामहमेतः एव मरुतो मोघः मुख जीवतु ॥ (१५)

चन्द्र

(चन्द्रजया)

सिधामनङ्गुरचोरगजान्तिभाष-
 मिन्दोर्वितोरय ननुदरिभूतनस्य ।
 देतान्तरप्रनविनीर्गति यत्र मृतो-
 नूनं मिथ मनि मिनीति विनीर्गतिर्गति ॥ (१६)

चन्द्राभास

यातस्यास्तमनन्तर दिवङ्गतो वेशेन रागान्वित
स्वैर शीतरुर, करं कमलिनीमानिद्विगतु योजयन् ।
शीतस्पर्शमवाप्य सप्रति तथा गुप्ते मुखाम्भोर हे
हामेनैव कुमुदनीव नितया वैनश्यपाशकृतः ॥ (७४)

मिथकचन्द्र

चिताचक्र चन्द्र, कुसुमघनुषो दग्धवपुषः
कलङ्कस्तस्याय वहति मनिनाङ्गार तुलनाम् ।
प्रयैतस्य ज्योतिर्दरदलितवर्णं प्रवल
मरुदिभर्भम्मेव प्रसरति विकीर्ण दिशि दिशि । (७५)

बहुरूपकचन्द्र

फेन क्षीराम्बुराशेरयमुदयगिरेस्तुवशृगातपत्र
पूर्वस्या भालदेवो तिलक एव दिशो दर्पणो यामिनीनाम् ।
वापीनां राजहम, परिलमिनसट केजरीकावनाना-
माकाशम्याहहास कुमुदवनचयाञ्जोवशख, शशाकः ॥ (७६)

चन्द्रोदय

यस्तौलोवयजित स्मरस्य किमपि श्रीजातडाग महद्
परमाभोगभूतो भुव प्रकटिताकारापणो दर्पण ।
सोय सुन्दरि मन्दराद्रिभाषित-क्षीरोदसारोच्चय
इक्ष्णु कुंभमपवपिण्डवदहृष्टाय समुन्दच्छति ॥ (७७)

अमावेकद्विप्रभृतिपरिपाट्या प्रकटयन्
वत्सा स्वैर स्वैर नवकमलकन्दीकुरम्ब ।
पुरःप्रीणा प्रेयोविरहहृदोदीपितदृशा
कटाक्षेभ्यो त्रिभ्यन्निभृत इव चन्द्रोभ्यदयते ॥ (७८)

पर्णो नागरखण्डमार्द्रगुभवं पुगीकृत्य पानय-
वर्षुरस्य च यत्र कोऽपि वनुरस्ताम्बूनयोगवम ।
देवा केरल एष बेलिमदन देवस्य भृंगारिण
स्त दृष्टा कुरु कोमलाणि मण्डले द्वाषीयमी लोचने ॥ (७९)

वाक्मत्वाभसमुद्वैरभिनयैर्नित्यं रमोन्तामनो
बाभादगूय, प्रणयन्ति यत्र मदवन्नीडा महानाट्यम् ।
अग्रान्ध्रान्तव दक्षिणेन त इमे योशकरीयोक्तमा
मृपानामपि वाग्निप्रणयिना दीपान्तर्गर्भ धिनाः ॥ (८०)

येनैव सागरमहं लघु लङ्घयामि
 किं सेतुना सभरकर्मणि वो नयामि ॥ (८७)
 नीनेन सैन्यपतिता प्रभुताङ्गान्ते
 मुक्तस्तथा किलनिस्त्राध्वनिरेष रौद्रः ।
 स्त्राष्टापि बाष्पति सगोजभवः थयामि
 शङ्के यथा करयुगेन मुधा पिथानुम् ॥ (८८)

ऋतुचक्रवाल

घसन्त का आरम्भ

गर्भग्रन्थिषु धीरघा मुमनसो मध्येद्वुर पत्नवा
 वाञ्छामाक्षपरिग्रह पितृवधूकण्ठोदरे पञ्चमः ।
 किं च स्त्रीणि जयन्ति जिष्णुर्दिवसैर्दिवैर्मनोजन्मवो
 देवस्यापि चिरोज्जितं यदि भवेदभ्यासवश्य धनु ॥ (८९)

घसन्त.

जम्बूनां कुमुभोदरेष्वतिरमादाघट्टपानोन्मवाः
 कीरा पववफलाशया मधुकरो श्वुम्बन्ति मुञ्चन्ति च ।
 एतेषामपि पश्य किंशुनतरो गवैर्गमन्नस्त्रिषा
 पुष्पभ्रान्तिभिरापरान्ति सहसा चक्षुषु भृङ्गाङ्गना ॥ (९०)
 ये दोलाकेलिकाराः किमपि भृगूणा मयुनन्मुच्छिरो ये
 सद्यः शू गारदीक्षाव्यतिशरगुरवो ये च सोऽनवशेषि ।
 ते कण्ठे लोनयन्त परभृतवयसा पञ्चम राशराज ।
 यान्ति स्वैर समीरा. स्मरविजय-महामाशिणो दक्षिणात्मा ॥ (९१)

लसत्पथिक

मय्याधे कृत्वाशक्तस्य रथिरं दष्टस्य सानामव
 सर्वं नैतदिहाम्नि तत्त्वमसौ पायस्तपस्वी मृतः ।
 आ ज्ञानं मधुलम्पटैर्दण्डुरैरारब्धबोलाहने
 नूनं साहसिणेन भूतमनुजे दृष्टिः ममारोपिता ॥ (९२)

धीरमवेक्ष

जलाद्रं सय्यानं विमरिमनयं. केनिषलयाः
 शिरीषैस्तत विष्वज्जलमयी हाग्रथना ।
 शुचावेणाक्षीणा मनयज्रगात्र इष तनवो
 विना तन्त्रं मन्त्ररनिगमणमृत्युञ्जयविधिः ॥ (९३)

ये दोनकेलिकारा, त्रिपणि मृगदृशा मन्वृतन्नुच्छिद्ये ये
मत्र शृंगारदीध्याव्यनिकरगुरवां ये च लोकतयेऽपि ।
ते नष्टे लोऽप्यन्तः परमूनवयमा पञ्चम रागराज
वान्ति स्वरममोरा स्मरविजयमहामाश्रितो राशिणात्मा ॥ (१००)

मदन

मुधामूतेर्वन्धुमंधुमह्वर पञ्चमरवि-
दिभन्नीता बह्वी कुवमयदृशा नर्मणि मूढः ।
मरैव शृंगारी हृदयवमति पञ्चविशिष्टः,
मया स्वाहून् कुर्वन्धुमन्विकारान् विजयते ॥ (१०१)

मदनशीर्ष

मुगगुरवलानां वनिदीध्याप्रदाने
परममुह्यदनङ्गो गेहिपीपन्तमस्य ।
मपि दुसुमपूपत्कंदैवदेवस्य जेता
जयनि मुगनलीला नाटिनामूवधारः ॥ (१०२)

मदनसेख

ताढीदन मदरढोगमिद मदेपा
मुद्रान्तनाष्टुपनचन्दनपङ्कमूर्ति ।
मद्वन्धनं विमरता तनूनन्धुमिव
बम्पाशिवदेप गनिगानदनदूलेख ॥ (१०३)

पाणिप्रद्वन्द्वनो विगीर्णशिरम, स्वेदाम्बुभग्नशिर
सत्कृत्वाष्टनितेशतो मन्ति ते निचितग्रीवि रमा ।
बैविश्यापुनक्त ताच्छनभूत लब्धेन वामेन वा
व्यासेव वययन्ति पदमनहसो सेवार्थरक्षेणव ॥ (१०४)

मदनोपालम्भ

प्रापुष्टश्चाश्रमशीशरा मनसि ते ममा मम पञ्च ते
निर्दग्धु विरहाग्निना सपुरिद नरेव भार्य ममा
मष्टं वाम निरादुधोसि भवता जेनून शनयो जनो
दु त्वी स्यामवमेव एव गतलो लोक मुष जीवतु ॥ (१०५)

कटाक्ष

प्रणालीधीषंस्य प्रमृमरतरङ्गस्य मूढ
मटाक्षव्यासेषा शिञ्जफरफगप्रनिश्रुव ।

सुधाया. सर्वैस्व कुसुमधनुपोस्मान् प्रतिमध्वे
नव नेत्राद्वैत कुवलयदृश. सनिदधति ॥

(१०६)

विलोकन

भवनभुवि गृजन्तस्तारहारावतारान्
दिशि दिशि विदिशन्त. केतकाना कुटुम्बम् ।
वियति च रचयन्तश्चन्द्रिका मुग्धमुग्धा
प्रतिनयननिपाता सुभ्रूवो विभ्रमन्ति ॥

(१०७)

स्वप्न

क्व पेय ज्योत्स्नाम्भो वदन त्रिमवस्तीसरणिभि
मृणासीतन्तुभ्य मिचयरचना कुत भवन्तु ।
क्व वा पागीमेयो बत वकुलदाम्ना परिमत.
क्व स्वप्न साक्षात्कुवलयदृश कल्पयतु ताम् ॥

(१०८)

गामकाभिलाषा

न नीलाब्ज चक्षु मरसिस्त्रहमेतन्न वदन
न बन्धूकस्यैव मुकुतमधरस्तद्गुतिधर ।
ममाप्येषा भ्रान्ति प्रथममभवद्भृङ्ग किमुने
कृत दलैरेभ्यो विरम विरमेत्यञ्जलिरयम् ॥

(१०९)

शुभकीर्तन

तद्रूपं यदि मृदिता शशिकया हा हेम सा चेद्यति
स्तत्त्वक्षुभंदि हारित कुवनमैस्तज्ज्वेतिस्मत का सुधा ।
क्षिप्रकन्दर्पधनध्रुवो च यदि ते हि वा बहु धूमहे
वत्सल्य पुनस्त-वस्तुविमुख मर्गत्रयी वेषत ॥

(११०)

नायक आगमन

द्वारगतं काप्यवगम्य कान्तमुद्यम्य वक्त्र मित्रयाञ्जलेन ।
विमुञ्चती मण्डनकर्मदीर्घ यथायथात्मानमन्वचकार ॥
काप्यागत वीक्ष्य मनोधिनाय समुत्थिता मादरमासेनाय ।
करेण जिञ्जवद्वलयेन तत्पमास्फालयन्ती वनमाजुताव ॥

(१११)

(११२)

नायिका-गमन

नितम्बगुर्वो दनुश श्रमेण विभ्रम्य मोगातपदेयु वावित् ।
वाञ्छीकरागम्यनयामपाणि-क्याय हृष्यं वनयागरोद् ॥

(११३)

ध्रुः

महोद्यमो मन्मथसावष्टि रत्नानां विभ्रमवर्जितम् ।
गमादङ्गद्वाराङ्गपत्तनं शोभनमन्त्रना भूतनुषाणि दृष्टिम् ॥ (११४)

मध्य-भाग

बुधरत्नमहिम्ना ध्योविभारप्रथिम्ना
विहितिनिविहरीडाग्या दृष्टी मृदुपण्या ।
विश्वमुदगतमर्थेनिमार्गेण धामा
ध्रुवदृष्टिर्विष वर्त्तन्ति शोभनो मध्यभागाः ॥ (११५)

रत्न

गजम्मानो गुह्यावनि जनिगुजगन्म च गत
प्रकृष्टो माय्मा च रत्न इति गमातावृष्टिनी ।
मिथः मीमासाद्ये मदिरयनयोर्मन्त्रभूतो
गविरुधानून मदिर हि नमसा कटिना ॥ (११६)

वेत्ता

कण्ठे मीतिवमानिना मन्त्रनटे वार्त्तमध्यं रत्न
माष्टं पादममृष्टे वन्दयिता धामो मृणालीवता ।
तन्वी मलमिथं पराग्नि मृदिनी मीतागुरे विघ्ननी
मीतामोषधियेतेव गतिना ध्योमाप्रमारोह ॥ (११७)

जलशोभा

मीक्षुं रनातामृताणि स्मररभगरमभ्यानुत्तुर्त्तुर्त्तुः
गन्तुं केशपाशादपुष्टमुरभिणा धूषधूमोदयमेव ।
ताम्बूलोत्तंगरेखामपि विग्नयितुं धीनपुष्टेधरोष्टे
तीरोत्तीर्णमिरष्य क्षणमुपविशन्नुर्वन्निजेनीमृष्टे ॥ (११८)

बन्दुवशोभा

धमन्-मणिगुप्त-प्रचुरचारु-चारत्रम
मण्यक्षणिनमेवमास्वलितनारुहारच्छटम् ।
इदं तरनवदूषण यन्निविशेषवाचानितं
यनो हवति मुधुव विमपि बन्दुवशीलितम् ॥ (११९)
धरया स्वेदाम्बुविन्दुभ्युत्तमितस्तथा व्यक्त-वचनेन्दुकाने
पर्यापात्तन्दुवस्य ग्रहणनयनना केलिवाचालिताया ।

उत्पातोत्ताल-तानवम-नमितदृगस्तताडनोत्तानत्तानी
लीलाध्यामोनिता स्म. प्रतिपदममुना कन्दुरप्रीडितेन ॥ (१२०)

चैलाञ्चनेन चयहारनताप्रकाण्डे-

वैणीगुणेन च वसद्धतयीकृतेन ।

स्वेच्छाहितप्रमरक प्रमिमण्डीनीभि-

रुण्य रस रयवतीव चिर नतध्रु ॥

(१२१)

मिश्रामणिरितोष्णस्वितलकयथय मेदनी

मिनोगमिषितगुम्फनास्नरतर्बोणवान्ता सत्र ।

इनशुभुरितमन्त्रा द्युष्टितहारमुत्ता-फलै

रित. श्रवणपागत कमलपद्मपाप्मे ध्युतय् ॥

(१२२)

वनविहार

उज्जैन्य स्वर्णराञ्चोर्मणिनि रजनया चण्डकन्यागमय्या ।

तन्वत्यस्तारहाराग्विचकित-वनिवापडित्त-मुद्रावलीभि ।

कि चाक्षोर-प्रकातैररणमणिमयान् मत्पञ्चमोवनमा-

भूतकीर्णा कामवर्णारिब हृदि गुह्यतो वम्पमाना वभूवुः ॥ (१२३)

उद्वेग-कथन

गौद्यादुडितने त्वज्ज्युषवन द्वेष्टि प्रभार्मगद्वी

हारातृत्तमयि चित्रकेनिगदयो वेश विष मन्वने ।

पाप्मे केवलमर्जनीकिमनयप्रस्तारिगद्वाने

नरत्वोवनन-स्वदाहृतिरमायतेन चित्तेन सा ॥

(१२४)

तनुता

दीप्तालीना इवमनमग्न इवधुपी तिस्रंरात्रे

तस्या गुप्यत्तवरगुमनपाण्डुरा गण्डभित्ति ।

तद्वावाणा विमिव हि यद्गुह्यते दुर्नयत्

येवामये प्रतिपदुडित्ता चन्दनेग्राप्यनन्दी ॥

(१२५)

विनाशरथा

मापोम्भ प्रमुनिम्यथ प्रचरवान् वाप्य शणागोविन ।

प्रज्ज्वातजनिर्दीप्तजित्तिरिवा पार्श्वेष्टि सध्वं कुरु

वि धावन् वयवामि रातिमयिवा स्वदामेवानायेन

रुण्णरुणित्पद्मकमलपाप्याग्निं विरतिरति ॥

(१२६)

प्रियसम्बोधन

निलिम्पत्येतस्मिन्-मत्तय रजसाद्रंशं महमा
 दिसा चक्र चन्द्रे सुकृतमिदमस्या मृगदृशः ।
 दशोवाण पाणौ वदनमस्रव कण्ठकुहरे
 हृदित्वं ह्रीः पृष्ठे वचसि च नुना एवमवतः ॥ (१३३)
 चन्द्र चन्दनकंदमेन तिष्ठति सा मार्ष्टि दृष्टाघरा
 वन्त निन्दति वचन मन्मथमत्तो भक्ताग्रहस्ताङ्गुलि ।
 काम पुष्पगर किलेति सुमनोपयं तुल्यैर्नय य
 तत्तुला सा सुभय त्वया वरतनुर्वातूनाम् अभिता ॥ (१३४)

पोषित

केयूरोकृतकङ्कशावगिर्यौ कर्णावतग्रीव
 व्यातोऽक्षालकपट्टनि पयि पुरो बद्धाश्चरति पुच्छनि ।
 यावत्कञ्चिदुदरमात्महमितुस्तावत् एवैत्यथ
 प्रोडावक्रितकण्ठनाममङ्गना के केनं भिला रसै ॥ (१३५)

सर्वोपदेश

दृष्ट मणमलाक्षिभिर्निभयित धैतासिरुधेर्निभि
 न्यस्त चेतमि सञ्जनै मुक्ताभि बाष्पेषु मथारितम् ।
 उर्ध्वानं कुक्कुले प्रसस्तिविगडै गीतश्च वारुपदा-
 दानैर्निजितवैरिवीर सत्रस्रचन्द्रावदान यश ॥ (१३६)
 ना चन्द्रादपि वादनादपि दरव्याकोपकुन्दादपि
 क्षीरान्देरपि क्षेपतोपि फणिसम्बन्धीमहामादपि ।
 कर्माटीतितदन्तपत्रमहतांशत्वनमुद्गोर्निनी
 कीर्तिस्ते ध्रुववीर्यनिजितरिपोर्वोरजय आम्पति ॥ (१३७)

संकीर्ण

आश्रयेय प्रथम क्रमेण विविधे कृत्ये घनस्वार्थ
 केतिद्युर्नविदो यश प्रियममे कान्तापुन पुच्छति ।
 घनमार्गाभिमुखमन्मथपरमस्वरीप्रवददत्तया
 स्त्रीर प्रीतिरिवारावाय निहिन स्वेदागुणं कटः ॥ (१३८)

सम्प्राप्त

प्राप्तो पद्ममनारमण्युत्पारि स्व वर्जनात् शिवा
 ज्ञानान्तररत्नानिचर्जनं गिगी ध्येतिजगद शिरः ।

मिथ्या सेडि मृणालकोटिरभसादष्टादुर शूकरो
मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छयामहावदंमम ॥ (१३९)

प्रदोष

सैरुध्रीकरवृष्ट्यदृक्करतारध्वनिदूतो
दूनीमूत्रित-सन्धिविग्रहविविः सोम्सासतीलाचयः ।
बारस्त्री-जनसंख्यमानशयन- संनडेपुण्यायुष-
धीखण्डद्वयपोतगौडमलिनो रम्य धाणोवर्तते ॥ (१४०)

भोषायसी

भिग्दान. सुन्दरीणा पतिपु रपमय हर्म्यपारावनाना
वाचालत्वं दधान- कवितृषु च गुण प्रातिमं सदधान- ।
प्रातस्त्यस्नूर्यंपोषः स्थगयति यथन मासत प्रामुत्प्रा
दस्वल्पादुत्थितानां नरवरकरिषा शृङ्खलाभिश्चिज्जितेन ॥ (१४१)

प्रिय-रमरच

नागवल्गिरधिरौहतु पूय
रात्रिरेणतिलकेन ममेतु ।
स्वामसी भजति कोकिनकण्ठी
वाचमर्चंतु कथे सुवृत्तार्थ- ॥ (१४२)

धृतिमुख

वीणया च निनदैव च वेणी
केजया च कलकण्ठकिरा च ।
शीतवृत्तैश्च रणितैश्च बधूना
भुञ्जते श्रुतिसुखानि युवान ॥ (१४३)

तडाग

एतन्मानिनि मानसा मुरखरो नितूनहेयाम्बुज
पार्थव्या प्रियपूजनाथंममुतो कङ्कसत्तिन्विता ।
अस्मान्वित्तशिखण्डिभिश्चपरमे ब्रह्मण्युपादीयते
स्नानोत्तीर्णवृषाङ्क-अस्मरजरा सनात्पवित्र पयः ॥ (१४४)

उपालम्भ

अध्वयमाय चरणौ विरहाय दारा
दम्ययंताय वचन च कपुर्जराय
एतानि मे विदधतस्तव सर्वदैव
प्राप्तत्वेया न यदि किं न परिश्रमोपि ॥ (१४५)

धन्य

शिलापट्टोद्घृष्टा मलयजरमानेषमुधगा-
 स्फुरद्भ्रामोदा दरदलित—वर्पूरमुद्द. ।
 हन. वम्बुच्छेदच्छविमिरहिवन्ती-किमनयै-
 नियोवन्ते केपि त्रमुकफलपाणीन् मुकृन्तिन. ॥

(११६)

राजशेखर की पूर्वकवियों को श्रद्धाञ्जलि

कवि-प्रशस्ति

राजशेखर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का न केवल अध्ययन किया था अपितु उनके गुणगोपों का सम्यक् परीक्षण भी किया था । पूर्ववर्ती कवियों के प्रति उन्होंने जो मादर धडाक़ानि प्रगट की है वह कविप्रशस्तिरूपा में प्रस्तुत है—

१—शेष

गरुडनी-गविनाथा जानिम्यत्र न कारणम् ।

व्यागम्यार्थं कुतश्चिद्भूदोषो भारते कवि ॥

२—गुणाश्च

हृता श्रित्यिनि शोभाइया स्मोक्तेष्वपि सा कथा ।

मुरलीदेन्दुसेखरे मोक्षे पूज्यतमाभवत् ॥

३—पाणिनि

नव. पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।

आदौ व्याकरण काव्यमनु जाम्बवनीजयम् ॥

४—भास

भासनाटक चित्रेऽपि चट्टकैः क्षिप्तो परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽमूढ पावक ॥

५—रामिलतोमिल

तो हृदककथाकारी रम्योरामिलमोमिलौ

काव्य ययोर्द्वयोरासीदर्थनारीश्वरोपमम् ॥

६—विजया

सरस्वतोष कर्णाटी विजयाङ्गा जयत्यसौ ।

दा बंदधमिरा वास. नानिदासादनन्तरम् ॥

७—गणपति

यस्यो गणपति धन्दे महामोदविद्यायिनम् ।

विद्याधरगणयस्य पूज्यते कण्ठगात्रिनम् ॥

८—कुलशेखर वर्मा

वृत्रादपि सताचिते लिखित्वाऽऽश्चर्यमञ्जरीम् ।
कुलशेखरवर्माऽऽभ्या चकाराश्चर्य-मञ्जरीम् ॥

९—गोनन्दन

अनुप्रासिनि सदर्थं गोनन्दसमं कुतः ।
यथार्थनामतैवान्य यज्ञावदति चाग्नाम् ॥

१०—दण्डी

स्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणा ।
स्रयो दण्डिप्रवन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विधुता ॥

११—मायुराज

मायुराजममो जज्ञे नान्य बलशूरि कवि ।
उदन्वतं ममुत्तस्यु कति वा तुहिनाशच ॥

१२—कुमारदास

जानकीहरणं वर्तुं रघुवशे स्थिते सति ।
कवि कुमारदामश्च रावणश्च यदि क्षमी ॥

१३—सुभद्रा

पार्यस्य मनसि स्थानं लेभे तद्यु सुभद्रया ।
कवीनां च वचोवृत्ति-चातुर्येण सुभद्रया ॥

१४—शीलामट्टारिका

शब्दार्थयोः समो गुम्फ पाञ्चाली रीतिरुच्यते ।
शीलामट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥

१५—विकटनितम्ब

के विकटनितम्बेन गिरा गुम्फेन रञ्जिता ।
निन्दन्ति निजकान्ताता न मीम्यमधुरं यव ॥

१६—मीमट

कामञ्जरीपतिशक्ते भीमट पञ्चनाटश्रीम् ।
प्राप प्रबन्धराज्यं तेषु स्वप्नदशाननम् ।

१७—मनोज्ञदिवाकर

ग्रहो प्रभासो वाम्देव्या यन्वाष्टानदिवाकर
भोहृन्वाभधन् गम्य तमो बाणमगूरवो

१८—मायूरमह

दपं कविभुवङ्गाना यता श्रवणगोचरम् ।
विपविद्येव मायूरी मायूरी वाङ् निवृत्नति ॥

१९—रत्नाकर

मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा द्रमे
इतीव स कृतो घात्रा नवी रत्नाकरोत्तर ॥

२०—त्रिलोचन

कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्यविजय शम् ।
तदर्थः शयने इष्टं लोचनद्वयि नयम् ॥

२१—धनंजय

इति सगुणानि निपुणता न सा चने धनञ्जय ।
यथा जान कस तस्य माता चने धनञ्जय ॥

२२—द्रमुदेवी

मूषनीना स्मरवेनीना बमाना ध विनागभू ।
द्रमुदेवी नविनादी मन्त्राणि हृदि तिष्ठति ॥

२३—कालिदास

एकोऽपि जीवते ह्यन कालिदासो न वेनविद् ।
भृङ्गारे मलिनाङ्गारे कालिदासप्रयी तिमू ॥

२४—बाणदा

- (१) महर्षिचरिता माधव धृतराष्ट्रवरीरपदा ।
बाणम्य बाणदायैव स्वयन्दरा धर्माणि शिरो ॥
- (२) बाणैव हृदि मधेन यन्मन्त्राणि वक्ष्यम ।
मधेन कविपुण्यादां धारा तत्र वारणम् ॥

२५—बाण

कृत्स्नगोष्ठान् बाणी भारवैरिव भारते ।
माधेनैव ध धर्मेन वयं वयं न ज्ञाय ॥

२६—महर्षि

महर्षि कः श्रवणवर्ध भवतीति तद्वत्तर ।
त्रिपुलो बाणम्य मन्त्राणि तद्वत्तर वयि ॥

स्नाता. स्वर्गतर्ङ्गिणीमपि मदा पूता पुनन्तिवयो ।

व्युत्पत्त्या परया रसोपनिषदां रामायणस्यास्य ते ॥

बहुक्ति-मुद्रा मुहूर्तवीथी

नखारमो यच्चुभवंचुलुक्प. ।

तथाऽमृतस्यन्दि च यद्-बचोर्वे

रामायणं तन् कवितृन् पुनानि ॥

३७—वररक्षि

यथायंता कथं माम्नि याऽमुद् वररक्षेहि ।

सदृशत कण्ठाभरणं म मदारोहणप्रिय. ॥

३८—प्रद्युम्न

प्रद्युम्नान्नापरस्येह नाटके पटवो गिरः ।

प्रद्युम्नान्नापरस्येह धोण्या ध्रुपि शराक्षरा ।

३९—शचल

कविरमर कविरचल कविरभिनन्दश्च कामिदामश्च ।

अन्ये नवय नपयश्चापन-मात्र पर दक्षिणि ॥

४०—नानाकवयः

इह कामिदास—भर्तृमेष्टावतामरस्यवर्षभारवय. ।

हरिचन्द्र चन्द्रकृपती परीक्षिताविह विशालाशाम् ॥

भारती रामिनमीमितो वररक्षि श्रीमाहूमाङ्ग. कवि

मैष्टो भागविकातिदाम-तरला स्वन्द सुबन्धुश्चय ।

दण्डी बाणशिवारुणे वणपनि कान्तश्च रत्नाकर

मित्रा यस्य तरस्वनी यदि भवेत् के तस्य सर्वेऽपि ते ॥

राजशेखर-प्रशस्तयः

पातु शोत्ररमायेन रचयितुं वाचं गता मम्मता ।
 व्युत्पत्तिं परमाभवाप्तुमर्वाधि मब्धु रमन्तेनम ।
 भोक्नु स्वादुफलं च जीविनत्तरोर्यश्चस्ति ते दौनुवः
 तद् भानं शृणु राजशेखरकवे मूर्खनी मुधास्पन्दनी ॥
 ममाग्निगुणशालिन्य प्रमन्नपरिपक्वमा ।
 यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिषं वृत्तप ॥
 यायावर प्राज्ञवरो गुणगौराजविल भूरिभवाजवर्षे ।
 नृत्त्यत्पुद्गार भणिते रमण्या नटीष्व यम्पोहरमा पदधी ॥
 म मूर्तीं प्रवामीद्गुणगण इवाकालव्रजद
 मुरानन्द मोघपि श्रवणपुटगेयेन वचसा ।
 न चाभ्ये गत्यन्ते तन्मकविराजप्रभृतयो
 महाभागस्तस्मिन्त्यमत्रनि याशवरकुले ॥
 भावन्तार्तिहर पराक्रमघ्नत सौजन्यवाराणिधि
 म्प्रामी मय्यगुधाप्रकाशजगन्मृषान्तं कवीनां गुरु ।
 वर्यं वा गुणानन्दोद्गणनिरे वि तस्य माध्वादेवो
 देवो यस्य महेश्वराननृषति जिप्सो रश्मिप्रावणी ॥

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

- अप्पपदीक्षित .. चित्रगीमाना—काव्यमाला सीरीज, १९४१ (३८)
- अभिनवगुप्त .. अभिनवभारती—दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली १९६१
- भानन्दवर्धन .. ध्वन्यालोक—चौखम्बा मसूत सीरीज प्राक्सि, वाराणसी, १९४०
- कविकर्णपूर .. अनकारकौस्तुभ—राजशाही, १९२६
- कुन्तक .. वक्रोक्तिजीवित—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५५
- केशवमिश्र .. अलङ्कारशेखर—काशी मसूत सीरीज प्राक्सि, बनारस, १९१७
- क्षेमेन्द्र .. औचित्यविचारवर्षा—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४
- .. कविकण्ठाभरण—मोतीलाल बनारसीदास, १९६७
- .. सुवृत्ततिलक—
- दण्डी .. काव्यादर्श—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८
- धनजय .. दशरूपक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५५
- १९५५
- नरेन्द्रप्रभसूरी .. अलङ्कारमहोदधि—ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बङ्गाल, १८४२
- भरत .. नाट्यशास्त्र—मायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बङ्गाल, १९३४
- भामह .. काव्यालङ्कार—बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, १९५६
- भोजराज .. सरस्वती कण्ठाभरण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४

- शृंगारप्रकाश—पुनर्वसु, मद्रास, १९६३
- यमद .. काव्यप्रकाश—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,
१९६०
- राजशेखर .. काव्यमोमांसा—प्रोरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा,
१९२४
- रघुना .. अलंकारबन्ध संजीवनी—मोतीमाल बनारसी
दास, १९६५
- शामन .. काव्यालंकारसूत्र वृत्ति—काव्यमाला सीरीज, १९२६
- विद्यानाथ .. प्रतापसूत्रमूषण—गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस,
बम्बई, १९०९
- विद्यानाथ .. साहित्यदर्पण—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
- विश्वेश्वर .. अलंकारकौस्तुभ—काव्यमाला संस्करण,
१९३४
- हेमचन्द्र .. काव्यानुशासन—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९००
- गद्यानुशासन
- वाग्भट .. वाच्यानुशासनविवेक.

हास्य-काव्य

- वाचिदास .. अधिष्ठानशास्त्रम्—चौखम्बा संग्रह सीरीज
आश्रित, वाराणसी, १९५५
- मानविकानिमित्त (नाटिका)—चौखम्बा सीरीज,
आश्रित, वाराणसी, १९५१
- श्री हर्ष .. रत्नावली (नाटिका)—चौखम्बा संग्रह सीरीज
बनारस, १९५३
- मित्रवर्मिन (नाटिका)—चौखम्बा संग्रह,
वाराणसी, १९५३
- भट्टकृति .. उदारराजचरित—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
- महावीरचरित—चौखम्बा विद्याभवन, बनारस,
१९५५
- माधवीमाला (प्रकरण)—निर्णयसागर प्रेस,
बम्बई, १९३६
- राजशेखर .. वाचस्पत्य—बनारस, १९१९

- बालभारत—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
 विद्याशालाभञ्जिका (नाटिका)—चौखम्बा विद्या-
 भवन, वाराणसी, १९६४
 विह्वल .. कर्णमुन्दरी (नाटिका)—निर्णयसागर प्रेस,
 बम्बई, १८८८

सट्टक

- राजशेखर .. कर्पूरमञ्जरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
 कर्पूरमञ्जरी—आर्यभूषण प्रेस, पूना, १९६०
 कर्पूरमञ्जरी—हार्पर्ड ओरियण्टल सीरीज, १९०१
 कर्पूरमञ्जरी—युनिवर्सिटी प्रॉफ कलकत्ता, १९३९
 धनस्याम .. प्रानन्दमुन्दरी—मोतीबाल बनारसीदास, १९४५
 विश्वेश्वर .. शृंगारमञ्जरी— निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
 प्रसन्नचन्द्र .. रत्नामञ्जरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८८९
 रत्नदान .. चन्द्रलेखा

धर्म-ग्रन्थ

- धर्मवेद .. भारत मुद्रणालय, सवारा, १९४०
 याज्ञवल्क्यस्मृति .. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
 बीधायन धर्मसूत्र .. चौखम्बा सम्स्कृत सीरीज, १९३४
 वैखानस गृह्यसूत्र .. " " " "

गद्य-काव्य

- बाणभट्ट .. हर्षचरित—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४९
 सोह्रदम .. उदयमुन्दरी-कथा
 .. यशस्तिलकचम्पू—तारा यन्त्रालय, वाराणसी,
 १९६०
 धीमेन्द्र .. बृहत्कवामञ्जरी—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०१

अन्य

- अमरगिह .. अमरकोश, पूना, १९१३
 आपटे वामन मदाशिव .. राजशेखर हिज साइफ एण्ड राईटिंग—आर्यभूषण
 प्रेस, पूना, १८८६
 बरो ए० .. भवभूति एण्ड हिज ज्येज टन सम्स्कृत लिटरेचर—
 बलवत्ता, १७७८

राजशेखर

- डे० एम० के० एण्ट दाग } दि हिन्दू ऑफ संसृत निटरेवर—कलकत्ता,
गुप्ता एम० एन० } १९६४
- भा-गगानाय .. कविरहस्य—हिन्दुस्थानी अरादमी, इलाहाबाद
१९५०
- कनीट ऑफ जॉन .. इडियन एण्टीक्वेरी, १८८७
- कीलहान एफ० .. एपिग्राफिका इण्डिका, १८८९
- कृष्णमाचारी एम० .. दि हिन्दू ऑफ कानामिक्कन मम्भुत निटरेवर, मद्रास,
१९३७
- बाणे पी० बी० .. एन इण्ट्रोडक्शन टू माहित्यदर्पण
- मूलर एफ० एचम० .. इण्डिया क्वॉट रैन इट टीच दग ? लन्दन, १८८३
- मिराशी बी० बी० .. पाठक कमेमोरेसन बान्यूम
- पीटमैन एण्ड नरब .. इण्ट्रोडक्शन टू बन्धनभदेवाज मुभायिनावली, बाम्बे
मम्भुत मीरीड, १८८६
- विमन एच० एन० .. मिनेक्ट एग्मिमन ऑफ दि थियेटर ऑफ दि हिन्दूज,
वा० ३, लन्दन, १८७१
- भा० गगानाय .. कविरहस्य—हिन्दुस्थानी अरादमी, इलाहाबाद,
१९५०
- गणीत रत्नाकर—आनन्दाधर्य मुद्रणालय, पुण्य-
गतन, १९४२